इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे " डी० फिल० "
की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध

द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख

(एक पुरालेखीय–पुरालिपीय एवं अन्तःसांस्कृतिक अध्ययन
विशेषकर अरामी पाठ के संबंध में)

THE BILINGUAL INSCRIPTIONS OF ASHOKA

(An Epigraphic-Palæographic and Transcultural Study,
with special reference to the Aramaic Version)

शोधकर्ता : शिलानन्द हेमराज

निर्देशक : प्रोफेसर जे ० एस ० नेगी
(भूतपूर्व प्राचीन इतिहास विभागाध्यक्ष)

इलाहाबाद 2000 सामान्य सवत्

' शोधकार्य तभी अनिवार्य माना जाता है , जब कोई इतिहासकार अपने युग की घटनाओं का प्रथम मौलिक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास करता हो । अन्यथा पुराने विवरणों को सगृहीत करना ही पर्याप्त माना जाता है । फिर भी , यदि कोई व्यक्ति पुरानी बातों के विषय मे पुन लिखना चाहता है , तो उसे नवीन और सुरुचिपूर्ण ढग से अपनी सामग्री प्रस्तुत करनी होगी । यथा–सम्भव उसे विषय–वस्तु की नयी व्याख्या भी करनी होगी । '

(*प्लिनिउस् मिनौर्*, पत्र , 5 8 12) [1]

---

(1) अर्थात् प्लिनि माइनर् (Pliny Minor) के पांचवे पत्र मे से उल्लेख ।

समर्पण DEDICATION

प्रस्तुत शोध–प्रबंध के 'प्रज्वलन' का श्रेय पूज्य आचार्य–जी **प्रोफेसर जे.एस. नेगी** *, इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्राचीन इतिहास विभाग के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष को प्राप्त है । उन्होंने इस अनुसंधान के लिए शिखी–शिखा को प्रज्वलित किया है।*

शोधकर्ता में अवश्य पहले से ही कुछ क्षमताएं विद्यमान थीं । अपने पुरालेखीय–पुरालिपीय अध्ययन एवं भाषाई शास्त्रानुशीलन के द्वारा उसने दीपाधार तैयार रखने का प्रयास किया था, लेकिन यदि इस शोध–प्रबंध के पूज्य निर्देशक–जी ने निर्देशन–कार्य स्वीकार कर दीपिका को प्रज्वलित नहीं किया होता और दीप–शिखा को नैराश्य के झोंकों से सुरक्षित नहीं रखा होता, तो शोध–विषय की परिकल्पना तक नहीं की जा सकती थी ।

वास्तव में, लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के संस्थापक एवं पाली त्रिपिटक–विद्या के शिरोमणि **प्रोफेसर सी० डी० चटर्जी** *ने अरामी अशोकीय अभिलेखों के प्रति शोधकर्ता की प्रथम जिज्ञासा जगायी थी ।*

सन् 1983 में, अपने महाप्रस्थान के थोड़े ही दिन पहले, उन्होंने उसी विषय पर अनुसंधान करनेवाले, खरोष्ठी के उत्कृष्ट भाषाविद् **प्रोफेसर बी० एन० मुखर्जी** *से शोधकर्ता का सम्पर्क कराया था ।*

अत प्राचीन भारतीय संस्कृति–विज्ञान के उन प्रखर त्रिरत्नों ने सम्पूर्ण शोध–यात्रा के लिए प्रकाश–स्तम्भ का शुभ कार्य किया । उनके गुरु–चरणों में यह शोध–प्रबंध एक परिशोधन के रूप में ही समर्पित है ।

शोधकर्ता इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष , पुस्तकाध्यक्ष एवं समस्त प्राध्यापक–गण के प्रति आभार प्रकट करता है । सत्यनिकेतन धर्मविज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य–जी के प्रति भी वह विशेष ऋणी है , क्योंकि उनसे शोध करने की सुविधा प्राप्त हुई थी ।

सामान्य विषय - सूची GENERAL TABLE OF CONTENTS

प्रथम खण्ड

VOLUME I

विषय - सूची (प्रथम खण्ड) TABLE OF CONTENTS (VOLUME I)

(पृ० 192 मे प्रथम खण्ड का अन्त ;
द्वितीय खण्ड पृ० 193 से आरम्भ)

0 विषय–प्रवेशक अध्याय INTRODUCTORY CHAPTER

00 मंगलाचरण AUSPICIOUS BEGINNING

यदि देवतुल्य जनों के प्रिय राजा अशोक की बात मानी जाए , तो इस शोध–प्रबध के शुभारम्भ के लिए ' मगलाचरण ' इस रूप में होना चाहिए कि हम सर्वधर्म–मगल की कामना करें और सर्वलोक–मगल हेतु आचरण करने का सकल्प करें । जैसे प्रियदर्शी राजा अशोक के नवम शिलालेख के मूल प्राकृत पाठ में अकित है (1) **' त कतय्वमेव तु मंगलम् '** – अर्थात् ' मगलाचरण अवश्य करना चाहिए ' । लेकिन इस शुभ **मंगलम्** को यह नया अर्थ दिया गया है ' सेवकों के प्रति उचित व्यवहार , गुरुओं का आदर , प्राणियों की अहिसा और श्रमणों तथा ब्राह्मणों को दान । यह सब कार्य और इस प्रकार के अन्य कार्य धर्म के मगलाचरण कहलाते है । '

इसलिए अशोकीय अभिलेखों के सबध में यदि कोई व्यक्ति सार्थक बातें लिखना चाहे , तो वह तटस्थ रहकर अपने अध्ययन को केवल बौधिक स्तर तक सीमित न रखे । उसे अपनी लेखनी की कथनी में करनी भी जोडनी चाहिए । वर्तमान नवाधुनिक युग के समाज के लाभार्थ वह अपनी प्रस्तुति को प्रासगिक बनाने का प्रयास करे । इस प्रकार , अशोकाभिलेख–सबधी यह शोधलेख न केवल शोधकर्ता के लिए वरन् शोध–पाठक के लिए भी एक गभीर चुनौती है ।

01 मुख्य शीर्षक का स्पष्टीकरण CLARIFYING THE MAIN TITLE

प्रस्तुत शोध–प्रबंध का अध्येय विषय है ' द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख ' । यह शोध–शीर्षक प्राचीन अभिलेखों में से किसी सुनिश्चित सामग्री की ओर संकेत करता है । व्यापक रूप से ' अशोकीय अभिलेख ' वे ही अभिलेख है , जिनका सामान्य संवत्सर के पूर्व तीसरी

---

(1) इस शोध मे मूल पाठ और अनुवाद के उल्लेख प्राय: *राजबली पाण्डेय* , **अशोक के अभिलेख** , वाराण्रसी ,1965 ,अथवा NARESH PRASAD RASTOGI , Inscriptions of Asoka , Varanasi,1990 , के संस्करणो के आधार पर किये जाएंगे ।

शताब्दी में[1] मौर्य सम्राट अशोक के द्वारा अभिलेखन कराया गया है । साधारणत उनके अभिलेख एक ही भाषा में अभिव्यक्त होने के कारण एकभाषिक होते है , किन्तु कुछ अभिलेखों में अन्य भाषा का प्रयोग हुआ । इसलिए ' द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख ' ऐसे अशोकीय अभिलेख हैं , जो एकभाषीय नहीं होते हैं । अब क्रमबद्ध इस परिभाषा का स्पष्टीकरण करें ।

011 एकभाषीय अशोकीय अभिलेख MONOLINGUAL ASHOKAN INSCRIPTIONS

सम्राट अशोक के अधिकतर अभिलेख एकभाषिक होते हैं । वे स्थानीय बोलियों अथवा विभाषाओं की कुछ विशिष्टताओं के साथ अभिव्यक्त होते हुऐ भी एक प्रशासकीय प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध हुए । अधिकाश अशोकीय अभिलेखों की प्राकृत भाषा को ब्राह्मी लिपि में अकित किया गया है । अपवाद के तौर पर मौर्य साम्राज्य के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में स्थित शहबाजगढी एव मानसेहरा की शिलाओं पर उसी प्राकृत भाषा को खरोष्ठी लिपि में अभिलिखित किया गया है । फिर भी वे खरोष्ठी–लिपीय अभिलेख भी ' एकभाषीय ' कहला सकते हैं , क्योंकि उनके औपचारिक अभिलेखन के लिए राजधानी पाटलिपुत्र से प्रसारित उसी प्राकृत भाषा में इसका प्रारूप तैयार किया गया । एकभाषीय , अर्थात् प्राकृत–भाषीय , अशोकीय अभिलेखों की निम्न सूची से[2] मालूम हो जाता है कि विभिन्न सस्करणों में अब तक ब्राह्मी लिपि में लगभग 148 अभिलेख तथा खरोष्ठी लिपि में 28 अभिलेख प्राप्त हुए है। आगे किसी भी समय एक अतिरिक्त अभिलेख की सम्प्राप्ति की खुशखबरी आ सकती है ।

---

(1) अन्तर्राष्ट्रीय बहुधर्मीय संदर्भ मे ' B.C.' (ईस्वी पूर्व) के स्थान पर ' B.C.E.' (= Before Common Era, अर्थात् सामान्य सवत् पूर्व) का प्रयोग करना उचित है। वास्तव मे श्री ' ईसा ' (सुमुकुन्द) का जन्म–वर्ष तथा–कथित ' A.D.' (ईस्वी सन्) का आरम्भिक वर्ष नही है , क्योकि उनका जन्म इससे कम–से–कम चार वर्ष पूर्व हुआ । पश्चिमी शिष्यो ने गुरुजयंती की तिथि को रोम नगर की संस्थापना के 750वे वर्ष मे 25 दिसंबर मान लिया । लेकिन एक रोमन मठाध्यक्ष दिओनीसिउस् अेक्सिगुउस् (Dionysius Exiguus) ने सन् 533 में इसे कहीं गलत आधार पर चार वर्ष अधिक गिनकर ' ईस्वी सवत् ' का प्रचलन आरम्भ किया । " The Christian era, supposed to have had its starting point in the year of Jesus 'birth , is based on a miscalculation ... scholars prefer a date ca. 6 B.C." (J.FITZMYER ," A History of Israel (From Pompey to Bar Cochba)" ,in <u>The New Jerome Biblical Commentary</u>, Bangalore ,1990(G.Br.1989),p.1247). सौभाग्य की बात है कि शोधकार्य तृतीय सहस्राब्दी सा०सं० के आरम्भ मे सन् 2000 , अर्थात् प्रतीकात्मक सुगुरु–जयंती–वर्ष मे सम्पन्न हो सका ।

(2) अभिलेखो की गणना का मुख्य आधार *श्रीराम गोयल*, **प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह** , खण्ड 1 , जयपुर , 1982,पृ० 9–10 ; सूची के परिवर्धन के लिए देखें : *विश्व स्वरूप सहाय*, **भारतीय पुरालेखों का अध्ययन** , दिल्ली , 1993 ,D.C. SIRCAR , <u>Ashokan Studies</u>, Calcutta ,1979 ; I.K. SARMA & J. VARAPRASADA RAO, Early Brahmi Inscriptions from Sannati, New Delhi , 1993.

एकभाषीय / प्राकृत अभिलेख (Monolingual/Prakrit Inscriptions)

(क) ब्राह्मी लिपि में (in Brahmi script) .

(1) मुख्य शिलालेख (Major Rock Inscriptions) :

प्राप्ति–स्थान अथवा सस्करण	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	
	अभिलेख–क्रमसंख्या														
1 गिरनार	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	= 14
2 कालसी	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	= 14
3 एर्रगुडी	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	= 14
4 धौली	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+				+	= 11
5 जौगड	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+				+	= 11
6 सोपारा								+	+						= 2
7 सन्नथी												+		+	= 2
															68

(2) लघु शिलालेख (Minor Rock Inscriptions)

	प्रथम	द्वितीय(अतिरिक्त पंक्तियां)	
1 रूपनाथ	+		= 1
2 सहसराम	+		= 1
3 बैराट	+		= 1
4 गुजर्रा	+		= 1
5 मास्की	+		= 1
6 ब्रह्मगिरि	+	+	= 2
7 सिद्धपुर	+	+	= 2
8 जटिंग–रामेश्वर	+	+	= 2
9 गवीमठ	+		= 1
10 पालकीगुण्डु	+		= 1
11 राजुल–मण्डगिरी	+	+	= 2
12 अहरौरा	+		= 1
13 नईदिल्ली–बहापुर	+		= 1
14 बुधनी–पानगुरारिया	+		= 1
15 एर्रगुडी	+	+	= 2
16 नित्तूर	+	+	= 2
17 उडेगोलम	+	+	= 2
			24

(3) पृथक् कलिंग शिलालेख (Separate Kalinga Rock Inscriptions) :

	प्रथम	द्वितीय	
1 धौली	+	+	= 2
2 जौगड	+	+	= 2
3 सन्नथी	+	+	= 2
			6

(4) शिलाफलक लेख (Stone-slab Inscription) :

1 भाब्रु / कलकत्ता–बैराट	+	= 1

(5) मुख्य स्तम्भ–लेख (Major Pillar Inscriptions) :

	अभिलेख–क्रमसख्या 1	2	3	4	5	6	7	
1 देहली–मेरठ	+	+	+	+	+	+		= 6
2 लौरिया–अरराज	+	+	+	+	+	+		= 6
3 लौरिया–नन्दनगढ	+	+	+	+	+	+		= 6
4 रामपुरवा	+	+	+	+	+	+		= 6
5 प्रयाग–कोसम	+	+	+	+	+	+		= 6
6 देहली–टोपरा	+	+	+	+	+	+	+	= 7
7 तख्त–इ–बाहि						+		= 1
8. (वाराणसी)		अप्राप्य						?
9 (पाटलिपुत्र)		अप्राप्य						?
								38

(6) लघु स्तम्भ–लेख (Minor Pillar Inscriptions) :

	संघभेद लेख	रानी लेख	यात्रा–स्मारक लेख	
1 प्रयाग–कोसम	+	+		= 2
2 सांची	+			= 1
3 सारनाथ	+			= 1
4 रुम्मिनदेई			+	= 1
5 निगाली–सागर / निगलीवा			+	= 1
6 अमरावती			+	= 1
				7

(7) गुहा–लेख (Cave Inscriptions) :

अभिलेख–क्रमसख्या	1	2	3	4	
1 बराबर	+	+	+		= 3
2 बुधनी–पानगुरारिया				+	= 1
					4

ब्राह्मी लिपि के प्राकृत अभिलेखों की कुल सख्या 148

(ख) खरोष्ठी लिपि में (in Kharosthi script) :

(1) मुख्य शिलालेख (Major Rock Inscriptions)

प्राप्ति–स्थान अथवा संस्करण :	अभिलेख–क्रमसंख्या : 1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	
1 शहबाज गढी	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	= 14
2 मानसेहरा	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	= 14
															28

खरोष्ठी लिपि में प्राकृत अभिलेखो की कुल सख्या 28

ऊपर दी गई एकभाषीय अभिलेखों की तालिका में सभी अभिलेख पूर्ण रूप से एकलिपीय नही कहे जा सकते है । यद्यपि अब तक प्राप्त हुए सभी लघु शिलालेख ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हुए , फिर भी ब्रह्मगिरि , सिद्धपुर एव जटिग–रामेश्वर सस्करणों के द्वितीय अभिलेख में अन्तिम शब्द ' लिपिकरेण '(अर्थात् , लिपिकार के द्वारा) खारोष्ठी लिपि में अकित हुआ ।

इस के अतिरिक्त , एर्रगुडी सस्करण के प्रथम एव द्वितीय अभिलेख में ब्राह्मी लिपि को सर्प–लेखन अथवा बलीवर्द (बोस्ट्रफीडॅन् , boustrophedon) शैली में – बायें से दायें , फिर दायें से बायें – अकित किया गया है ।[1] यह लिपि की आरम्भिक अविकसित स्थिति का सकेत माना जा सकता है , लेकिन अधिक सभव है कि किसी अनाभ्यस्त लिपिकार पर खारोष्ठी लिपि का प्रभाव पड़ा हो । खारोष्ठी लिपि तो (अरामी लिपि के सदृश !) दायें से बायें को लिखी जाती है । हो सकता है कि लिपिकार स्वय उस ' पश्चिमोत्तर प्रदेश ' का रहने वाला हो , जहा पहले फारसी शासन के समय व्यावसायिक लिपिक अधिकतर अरामी लिपि का प्रयोग किया करते थे ।

012 द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख BILINGUAL ASHOKAN INSCRIPTIONS

एकभाषीय / प्राकृत अभिलेखों के अतिरिक्त कुछ अन्य अशोकीय अभिलेख है , जिन्हें ' द्वि–भाषीय ' कह सकते है – क्योंकि वे , चाहे सयुक्त रूप में (एक ही शिलापट्ट पर) क्रमश यूनानी और अरामी लिपि में , अथवा अलग रूप में यूनानी या अरामी लिपि में अभिलिखित हैं , और सब मिलाकर उनके लिए मुख्यत दो भाषाओं , अर्थात् यूनानी एव अरामी भाषाओं का प्रयोग हुआ । इस परिभाषा के अनुसार द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों की निम्न सूची दी जा सकती है । ऊपर दी गई सूची के लगभग 176 एकभाषीय अभिलेखों की सख्या की तुलना में द्विभाषीय अभिलेखों की सख्या बहुत कम है । अब तक केवल 9 द्विभाषीय अभिलेख गिने जा सकते हैं ।

---

(1)इसकी तेईस पक्तियों में से आठ पक्तिया (2 , 4 , 6 , 9 , 11 , 13 , 14 और 23) दायें से बाये को खोदी गई हैं और शेष पंक्तियां यथा–सामान्य , अर्थात् बाये से दाये हैं । यदि हम 8वी और 14वीं पंक्तियों को छोड दे , तो पहली पद्रह पक्तिया गो–मूत्रिका (बरदमूतान) शैली मे है (दे० *राधाकुमुद मुखर्जी* , **अशोक** , दिल्ली ,1965 ,पृ० 230) । यूनानी शब्द ' बौस्–स्त्रोफैदोन् ' का शाब्दिक अर्थ है ' जैसे हल जोतनेवाले बैल खेत के छोड पर मुडकर लौटते है (दे० *एस० एन० राय* , **भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख** , इलाहाबाद , 1994 , पृ० 60–66) ।

द्विभाषीय / यूनानी–अरामी अभिलेख (Bilingual/Greek-Aramaic Inscriptions)

(क)– द्विलिपीय अभिलेख (Biscriptual or Double-Script Inscription) :

शर–इ–कुन शिलालेख	1 (ऊपर) यूनानी लिपि में	+	= 1
	2 (नीचे) अरामी लिपि में	+	= 1
			2

(ख)– एकलिपीय अभिलेख (Single-Script Inscriptions) :

(1) यूनानी लिपि में

कन्दहार शिलाखण्डलेख	1 बारहवें मुख्य शिलालेख का अश	+	= 1
	2 तेरहवें मुख्य शिलालेख का अश	+	= 1
			2

(2) अरामी लिपि में .

1 तक्षशिला स्तम्भलेख	+	= 1
2 कन्दहार शिलाखण्डलेख	+	= 1
3 पुल–इ–दरुन्त शिलाफलक–लेख	+	= 1
4 लघमान प्रथम शिलालेख	+	= 1
5 लघमान द्वितीय शिलालेख	+	= 1
		5

द्विलिपीय अथवा एकलिपीय द्विभाषीय अभिलेखों की कुल सख्या 9

वस्तुत केवल शर–इ–कुन का शिलालेख सही अर्थ में 'द्विभाषीय' कहला सकता है , क्योंकि उसमें अलग रूप से दो भिन्न भाषाओं एव लिपियों का प्रयोग हुआ उपरले भाग में यूनानी भाषा और लिपि का लेख है , जब कि निचले भाग में अरामी भाषा और लिपि का लेख है । फिर भी दोनों को अलग गिना जाए , क्योंकि वे किसी मूल प्रारूप के दो स्वतन्त्र अनुवाद–जैसे लगते हैं ।

यहाँ चर्चित दूसरे अभिलेख निस्सन्देह ' एकलिपीय ' होते हैं , अर्थात् उनकी लिपि चाहे यूनानी है अथवा अरामी है ; लेकिन दोनों लिपिया एक–साथ नहीं मिलतीं । फिर भी वे

अभिलेख भी शुद्ध रूप से ' एकभाषीय ' नहीं माने जा सकते है । पहली बात तो यह है कि वे किसी मूल प्राकृत प्रारूप से अनूदित हुए अथवा कम-से-कम ऐसे प्रारूप के आधार पर पुनरुक्त हुए । अत उनकी भाषा मूल प्राकृत प्रारूप से प्रभावित हुई , यहा तक कि कुछ प्राकृत शब्द ही उनमें लिप्यन्तरित रूप में प्रयुक्त हुए , जैसे यूनानी कन्दहार शिलाखण्ड-लेख में **पिओदंस्सेस्** (प्रियदर्शी) , **ब्रमेनैस्** (ब्राहमण) और **स्रमेनैस्** (श्रमण) । अरामी कन्दहार शिलाखण्ड-लेख तथा पुल-इ-दरुन्त शिलाफलक-लेख में भी ऐसे कुछ मूल प्राकृत शब्द उल्लिखित है , जिनको पहचानना कठिन है , क्योंकि उन शब्दों के स्वरवर्ण अरामी लिपि में लिप्यन्तरित नही किये गये है , केवल उनके व्यजन ही अरामी लिपि में लिप्यम्तरित दिखाई देते है – उदाहरणार्थ , प्राकृत ' प्रिय-द्रशि ' को अरामी में **प्र्य्द्र्श्** लिखा गया है ।

दूसरी बात यह है कि उन अरामी अभिलेखों में कुछ प्राचीन ईरानी शब्दों का भी समावेश है , जैसे अरामी तक्षशिला स्तम्भलेख में ' हु-पत्यास्ति ' (सुश्रुषा , आज्ञाकारिता)। लघमान के प्रथम और द्वितीय अरामी शिलालेखों में प्राचीन ईरानी आगत शब्दों (loanwords) के बाहुल्य के कारण प्राय एक सम्मिश्रित सकर भाषा (hybrid language) उभड़ आती है । इस प्रकार न केवल शर-इ-कुन के द्विलिपीय यूनानी-अरामी शिलालेख में दो ही भाषाए (यूनानी और अरामी) लिपिबद्ध हुई , वरन् अन्य यूनानी-लिपीय अथवा अरामी-लिपीय अभिलेखों में भी मात्र किसी एक भाषा उत्कीर्ण नहीं की गई । अत समस्त अशोकीय अभिलेखों की अभिसूची में उन सभी यूनानी-लिपीय अथवा अरामी-लिपीय अभिलेखों को अलग ' द्विभाषीय अभिलेख ' नामक वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है ।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि मुख्य शोध-शीर्षक ' द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख ' को बहुवचन अर्थ में ही समझना चाहिए , जैसे अग्रेजी में स्पष्ट है " The Bilingual Inscriptions of Ashoka " । इस बहुवचन के प्रयोग के औचित्य का तीसरा कारण है स्वयं विद्वानों द्वारा अपनाया गया प्रचलन । उदाहरणार्थ , भाषाविद् एच. हुम्बख् तक्षशिला के अरामी स्तम्भलेख को एक ' अरामीय-ईरानी अभिलेख ' कहते है , जब कि शर-इ-कुन के यूनानी-अरामी शिलालेख को वह द्विभाषीय (वास्तव में , त्रिभाषीय) ' यूनानी + अरामीय-ईरानी

अभिलेख ' और कन्दहार शिलाखण्ड एव पुल–इ–दरुन्त शिलाफलक के अरामी अभिलेखों को ' अरामीय–प्राकृत + अरामीय–ईरानी अभिलेख ' मानते है ।[1] एक अन्य भाषाविद् एस० शाकेद् भी कन्दहार एव पुल–इ–दरुन्त के अरामी अभिलेखों को विशिष्ट प्रकार के ' अरामी–प्राकृत द्विभाषीय अभिलेख ' मानते है , क्योंकि दोनों भाषाओं – अरामी तथा प्राकृत – को अलग खाण्डों पर नहीं , वरन् मिश्रित रूप से और एक ही अरामी लिपि में लिखा गया है ।[2]

निष्कर्ष यह है कि यद्यपि मुख्य शोध–शीर्षक में ' द्विभाषीय अभिलेख ' का बहुवचन प्रयोग पूर्ण रूप से सतोषजनक नहीं है , फिर भी व्यापक प्रचलन को देखते हुए अशोकीय अभिलेखों में ' द्विभाषीय / मुख्यत यूनानी–अरामी अभिलेख ' नामक वर्ग को स्थापित किया जा सकता है । इस प्रकार प्रस्तुत शोध–प्रबध का प्रत्यक्ष विषय भी स्पष्ट हो जाता है केवल उन अशोकीय अभिलेखों का अध्ययन किया जा रहा है , जो ' एकभाषीय ' नहीं , वरन् किसी न किसी अर्थ में ' द्विभाषीय ' है , अर्थात् जो मूल प्राकृत के आधार पर बहुभाषीय सदर्भ में मुख्यत यूनानी और/अथवा अरामी भाषा में और निश्चित रूप से यूनानी और/अथवा अरामी लिपि में लिपिबद्ध किये गये ।

02 इस अध्ययन की विशिष्टता SPECIFICITY OF THIS STUDY

शोध–उपशीर्षक के अनुसार द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों के इस अध्ययन में ' विशेषकर अरामी पाठ ' पर ध्यान दिया जाता है । द्विभाषीय अभिलेखों की सूची में कुल मिलाकर ' 9 '

---

(1) एच० हुम्बख् अपनी रचनाओ मे उन अभिलेखों को जर्मन भाषा मे क्रमश ये विस्तृत नाम देते है " die aramäo-iranische Inschrift " (= Taxila) , " die griechisch-aramäoiranische Bilingue " (= Shar-i-kuna) , " das Fragment einer aramäoindisch-aramäoiranischen Bilingue " (= Pul-i-darunta); अग्रेजी मे उनका एक लेख है : H.HUMBACH," Aramaeo-Iranian and Pahlavi" ,<u>Acta Iranica</u>, Ist series,vol.2,Leiden,1974, 237-243

(2) देखिए S.SHAKED," Notes on the New Aśoka Inscription from Kandahar" , <u>Journal of the Royal Asiatic Society</u>,1969 . " The two bilingual Aramaic-Prākrit Aśokan inscriptions so far known " (p.121); " Both These inscriptions are bilingual , but they do not belong to the common type of bilingual documents, in which the text of each language is separately inscribed on a different part of the stone's surface. Here the two languages are mixed; each short section in one language is followed by one in the other language. The two languages involved,both written in Aramaic characters, are Aramaic and Middle Indian (Prākrit)" (p.118) .

अभिलेख गिने गये है । उनमें से अरामी लिपि में अभिलिखित अभिलेखों की सख्या ' 6 ' है , जब कि यूनानी लिपि में केवल ' 3 ' अभिलेख है । वास्तव में केवल दो अलग यूनानी पाठ है , क्योंकि कन्दहार के यूनानी सस्करण में दो ही सयुक्त अश है , अर्थात् दो अभिलेख एक ही शिलाखण्ड में अकित है । इस तरह , सख्या की दृष्टि से अरामी पाठ अधिक महत्वपूर्ण है । अपेक्षाकृत इसका महत्व इसलिए भी अधिक है , क्योंकि अरामी पाठ अस्पप्ट है और इसके अर्थ–निर्धारण में अत्यधिक समस्याए है । अत इसके सबध में शोध–अनुसधान की आवश्यकता बनी रहती है ।

021 अरामी पाठ का विशिष्ट अध्ययन SPECIAL STUDY OF THE ARAMAIC VERSION

एकलिपीय द्विभाषीय अभिलेखों में पाच अभिलेख है , जिनमें अरामी लिपि में , और व्यापक अर्थ में अरामी भाषा में ही , पाठ उपलब्ध है – अर्थात् तक्षशिला , कन्दहार , पुल–इ–दरुन्त , लघमान प्रथम और लघमान द्वितीय के अरामी पाठ । द्विलिपीय–द्विभापीय अभिलेखों में अब तक केवल एक ही विशिप्ट अरामी पाठ उपलब्ध है – अर्थात् शर–इ–कुन के निचले खण्ड का अरामी पाठ । शर–इ–कुन का अरामी पाठ इसलिए विशिष्ट है , क्योंकि उसकी अरामी भाषा अपेक्षाकृत विस्तृत , शुद्ध और निश्चित है । साथ–साथ शर–इ–कुन के उपरले खण्ड में यूनानी पाठ उपलब्ध है , जिससे उस अनुमानित मूल प्राकृत प्रारूप को स्थापित किया जा सकता है जो दोनों यूनानी एव अरामी पाठ का वास्तविक आधार है । उसकी सहायता से शब्दों के सादर्भिक अर्थ निर्धारित किया जा सकता है । इस प्रकार अरामी पाठ के साथ सलग्न यूनानी पाठ के कारण तथा प्राकृत प्रारूप की प्राक्कल्पनात्मक उपस्थिति के कारण एक विशिष्ट अध्ययन अपने आप से सम्भाव्य हो जाता है । अरामी पाठ के सबध में तदर्थ तुलनात्मक भाषाई अध्ययन , अथवा विस्तृत रूप में अन्त सास्कृतिक अध्ययन , न केवल स्वयमेव कृत्य और सम्भव है , वरन् अवश्यम्भावी है । द्विभाषीय अभिलेखों के विषय में समाकलित अध्ययन हेतु आरामी पाठ का विशेष अनुशीलन अनिवार्य है ।

इस शोध में हमारा ध्यान यदि अरामी पाठ पर केन्द्रित रहता है , तो उस ' विशिष्ट अध्ययन ' के कारण शोध–प्रणाली के संबध में यह प्रश्न उठ सकता है क्या प्रस्तुत शोध का उपागम मुख्यत एक भाषाई प्रक्रिया बन जाएगा ? प्राचीन इतिहास संबंधी शोध में क्या भाषाई समस्याओं पर इतना बल

देना उचित है ? इसलिए इस शोध–कार्य के आरम्भ में शोध–प्रणाली की विशिष्टता का उद्दर्शन करना परम आवश्यक है ।

022 शोध की विशिष्ट प्रणाली SPECIAL RESEARCH METHODOLOGY

प्रस्तावित ' विशिष्ट अध्ययन ' भाषाई विश्लेषणों की सीमित परिधि में परिक्रमा नहीं करता रहेगा । जब इस शोध–प्रबंध का विषय निर्धारित किया गया , तब शोधकर्ता से यह अपेक्षा की जा रही थी कि वह एक विशाल भूमि–क्षेत्र में खोद–खोद कर अपना अनुसधान करेगा । इस अध्ययन को प्राचीन इतिहास की एक विषय–वस्तु के रूप में ही अभिव्यक्त किया जा रहा है । इसकी सकल्पना इतिहास–विषयक थी । इसलिए यथासम्भव इसकी कार्यान्वियन के लिए भी इतिहास सबंधित प्रणाली अपनायी जानेवाली है ।

निस्सदेह प्रस्तुत अभिलेखों में प्राचीन भाषाओं का प्रयोग हुआ , लेकिन यह कहना तर्कसगत नहीं है कि केवल कोई भाषाविद् उनकी छानबीन करने के योग्य है । मान लें कि प्राचीन काल में नहीं , वरन् इस तीसरी सहस्राब्दी के दिनों में अशोक–जैसे किसी उदारचरित व्यक्ति ने आधुनिक साधनों से कुछ ऐसी उच्च कोटि की धर्मनीति के ' अभिलेख ' प्रकाशित किये होते , तो उनका अध्ययन शायद भाषा एव साहित्य के अन्वेषकों द्वारा ही किया जा सकता । किन्तु प्राचीन भारतीय राजसिंह , प्रियदर्शी अशोक के अभिलेखों के प्रथम अन्वेषकों में विशेषकर इतिहासज्ञ ही हुए । फिर भी समझदार पाठक को यहा समझाने की आवश्यकता नहीं है कि 'इतिहास ' को व्यापक अर्थ में समझना चाहिए । प्राचीन लिखित सामग्री के विषय में उस इतिहास की सहायक विद्याओं , जैसे पुरालेख–विद्या (epigraphy) और पुरालिपि–विद्या (palaeography) की ऐतिहासिक प्रणाली पर्याप्त नहीं है , अपितु ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान , समाज–विज्ञान और धर्म–दर्शन से प्रणीत एक समाकलित अन्त शास्त्रीय उपागम अपनाने की आवश्यकता है । इतिहास के क्षेत में से ही एक उदाहरण लें ब्रूस् ट्रिगर[1] जैसे पुरातत्वज्ञ (archaeologist) मानते है कि इतिहास की विशुद्ध वैज्ञानिक प्रणालि भ्रामक हो सकती है , जब तक सामाजिक और

---

(1) BRUCE TRIGGER , Time and Traditions (Essays in Archaeological Interpretation), Edinburgh ,1978,p.35: " Historians use social science theories to interpret their data... Tracing and explaining the actual course of cultural development in all its complexity is the fundamental aim of archaeology ' .

सास्कृतिक पक्ष पर (और कहना चाहिए आर्थिक पक्ष पर भी) ध्यान नही दिया जाता है ।

इस अध्ययन में अभिलेखों में अभिव्यक्त शब्दों एव विचारों की सामाजिक–सास्कृतिक पृष्ठभूमि पर भी ध्यान देना चाहिए । जिस ऐतिहासिक परिस्थिति में अशोकीय अभिलेखों का उद्भव हुआ, उसे 'अन्त सास्कृतिक आदान–प्रदान' (transcultural interchange) का ज्वलत उदाहरण माना गया है । ऐतिहासिक खोज के इस बहु–पक्षीय प्रयास में वस्तुपरक दृष्टिकोण बनाये रखने के सयमित अभ्यास की नितात आवश्यकता है । किसी धार्मिक पथ–सप्रदाय की मान्यता और सदस्यता के कारण अथवा जाति या वर्ग–विशेष की शुभ–चिन्ता के कारण वैज्ञानिक प्रकिया पर प्रभाव या दबाव न पडे। यथासम्भव सार्वभौम , सर्वसमावेशी (all-inclusive) सदर्भ में बहुविध सम्भावनाओं पर विचार कर पूर्णत विवृतमना (open-minded) एव सत्यनिष्ट निष्कर्ष पर पहुँचने की चेष्टा की जाए ।

मानव–इतिहास के किसी अध्याय के अध्ययन से वर्तमान मानव लाभान्वित होता है । सुघटना–कुघटना के अनुभवों से आधुनिक मानव–समाज कृत्य–अकृत्य की दीक्षा पा कर सर्वांग विकास के पथ पर एक और कदम बढाने के लिए प्रेरित हो जाता है ।

03 इस अध्ययन की रूपरेखा OUTLINE OF THIS STUDY

पूर्वोक्त विशिष्ट प्रणाली से यदि प्राचीन अशोकीय अभिलेखों का स्मयक् सत्य–अध्ययन किया जाए , तो उन विशेष द्विभाषीय अभिलेखों पर भिन्न–भिन्न कोण से ही अनेक बार दृष्टि डालनी पडेगी । जिस सत्य–धर्म का प्रचार–प्रसार उन अभिलेखों द्वारा किया जा रहा था , उसे समझना के लिए ' **पंच–चक्षु** ' का प्रयोग करना चाहिए । बारहवी सदी के अन्त में , वैयाकरण मोग्गलान द्वारा रचित ' अभिधानप्पदीपिका ' नामक पाली कोश , पद 835 में सत्यानुभूति के लिए उन पॉच चक्षु–दृष्टियों को क्रमश ' मास–चक्षु , दिव्य–चक्षु , प्रज्ञान–चक्षु , समन्त–चक्षु और बुद्ध–चक्षु ' कहा गया है । सरल शब्दों में कहे , तो सामान्य परिस्थिति का अवलोकन करने के लिए सासारिक देह–चक्षु अथवा लौकिक दृष्टि चाहिए । अधिक जानकारी के लिए चैतिक दिव्य–चक्षु अथवा तेज मनो–दृष्टि चाहिए । गहराई तक विश्लेषण करने के लिए प्रज्ञा–चक्षु अथवा भेदक

दृष्टि चाहिए । सम्पूर्णता के सर्वावलोकन के लिए समन्त–चक्षु अथवा समग्र दृष्टि चाहिए । अन्त में सिद्धि–ज्ञान की प्राप्ति के लिए सबोधि का बुद्ध–चक्षु अथवा अलौकिक आध्यात्मिक दृष्टि चाहिए । इस सरलीकृत शब्दावली को हम यहा अपने अध्ययन के उपागम के लिए अनुकूल बना कर अपना सकते है । इसमें ' पच–चक्षु ' की पद्धति के अनुसार द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का पॉच बार अवलोकन होगा । इस प्रकार अध्ययन के पॉच भागों की एक रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है ।

031 प्रथम भाग

- द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का परिचायक सदर्भीकरण

  (Informative Contextualization of the Bilingual Ashokan Inscriptions)

- ताथ्यिक उपागम (Factual Approach)

- मौर्य–वशी सम्राट अशोक के शासनकाल से उपलब्ध अभिलिखित

  सामग्री का ' **देह–चक्षु** ' से अवलोकन ।

शोध–प्रबध के आरम्भ में द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का वर्णनात्मक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है । स्थितिगत परिचय देने के लिए स्थान–विशेष या काल–विशेष सस्थापित किया गया है । सामाजिक एव प्रशासनिक सदर्भ पर प्रकाश डाला गया है । साथ–ही–साथ सास्कृतिक और धार्मिक परिप्रेक्ष्य के सम्भव प्रभावों पर भी विचार किया गया है ।

032 द्वितीय भाग

- द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का पुरालेखीय अध्ययन

  (Epigraphic Study of the Bilingual Ashokan Inscriptions)

- प्रकार्यिक उपागम (Functional Approach)

- देव–प्रिय अशोक द्वारा आज्ञापित–विज्ञापित अभिलेखों के

  लेखन–स्वरूप का ' **दिव्य–चक्षु** ' से अवलोकन ।

शोध–प्रबध के द्वितीय भाग में पुरालेख–विद्या की दृष्टि से अरामी–यूनानी अभिलेखों का मूल्याकन किया गया है । इसके लिए पुरालेख–विद्या के सामान्य सिद्धातों को स्वीकारा गया है ।

सभी प्रकार के अशोकीय अभिलेखों के पुरालेखीय स्वरूप का व्यापक चित्रण कर कुछ समताओं–विषमताओं की ओर सकेत किया गया है । इसके पश्चात् अलग रूप से अरामी भाषा तथा यूनानी भाषा के सबध में पुरालेखीय खोज के वर्तमान परिणामों की विस्तृत जानकारी दी गई । उन्ही उपलब्धियों के बल पर द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों की प्रत्याशित पुरालेखीय समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव दिया गया है ।

033 तृतीय भाग

- द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का पुरालिपीय अध्ययन

  (Palaeographic Study of the Bilingual Ashokan Inscriptions)

- वैश्लेषिक उपागम (Analytical Approach)

- प्रियदर्शी अशोक के लिपिकारों द्वारा अकित अक्षरों के सार–

  आकार का ' **प्रज्ञा–चक्षु** ' से अवलोकन ।

तृतीय भाग में द्विभाषीय अभिलेखों की मुख्य भाषाओं – क्रमश अरामी तथा यूनानी – के लिए प्रयुक्त लिपियों का पुरालिपीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है । यहा भी पुरालिपि–विद्या के सामान्य सिद्धातों को अपनाया गया है । एकभाषीय अभिलेखों के लिए प्रयुक्त प्रमुख लिपि ' ब्राह्मी ' से उन लिपियों की भिन्नता दिखाई गई । सम्पर्क–लिपि अरामी की उत्पत्ति और उसके विकास का उदाहरण–सहित चित्रण किया गया । इस प्रसग में 'खारोष्ठी ' लिपि का प्रश्न भी उठा । अरामी लिपि के विशिष्ट पूर्वीय प्रयोग के सबध में भी कुछ तथ्य सहायक सिद्ध हुए । इस गभीर पुरालिपीय सर्वेक्षण के परिणामस्वरूप अरामी लिपि में लिपिबद्ध अभिलेखों के सबध में कुछ ठोस अनुप्रयुक्त सिद्धात ठहराये जा सके ।

उसी प्रकार यूनानी लिपि की उत्पत्ति और उसके विकास के विवरण के पश्चात् कुछ ऐसे तथ्य सामने आये , जो यूनानी लिपि में लिपिबद्ध अभिलेखों पर लागू किये जा सके ।

034 चतुर्थ भाग

- द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का तुलनात्मक–व्याख्यात्मक पाठ–निर्णय

  (Comparative and Interpretative Reading of the Bilingual Ashokan Inscriptions)

- आनुमानिक उपागम (Inferential Approach)

- बौद्ध उपासक अशोक की ओर से उत्कीर्ण स्वीकारोक्ति के

  पुनर्स्थापित बहुभाषीय पाठ का ' समन्त–चक्षु ' से अवलोकन ।

इस शोध–प्रबध का चौथा भाग सब से महत्पूर्ण है । अब पिछले पुरालेखीय–पुरालिपीय अध्ययन की सहायता से द्विभाषीय अभिलेखों का तुलानात्मक मूल–पाठ निर्धारण एव अर्थ–निरूपण करना शेष है । यह ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान का दुसाध्य प्रकरण है । इसमें तीन या चार भाषाओं का समावेश है, अथात् प्राकृत, यूनानी और ईरानी–मिश्रित अरामी ।

अभिलेखों के मौलिक प्रवर्तन के सम्भावित कालक्रम के अनुसार, और सम्राट अशोक की व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर, उनके अन्तर्निहित विषय का प्रबोधन इस प्रगामी क्रम से[(1)] प्रस्तुत किया गया है

1 यूनानी कन्दहार का द्वितीय अश (= अशोक के हृदय–परिवर्तन का आरभिक साक्ष्य)

2 शर–इ–कुन का यूनानी पाठ

3 शर–इ–कुन का अरामी पाठ

4 अरामी तक्षशिला

5 यूनानी कन्दहार का प्रथम अश

6 अरामी लघमान का प्रथम अभिलेख

7 अरामी लघमान का द्वितीय अभिलेख

8 अरामी पुल–इ–दरुन्त

9 अरामी कन्दहार (= उत्तराधिकारियों के लिए अशोक का अन्तिम सदेश)

---

(1) शोधकर्ता ने उसी क्रम से अंग्रेजी मे अनुसंधान–प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था, दे० " Importance of the Greek-Aramaic Inscriptions of Emperor Ashoka for an Intercultural Study of Sacred Scriptures and of the Bible in particular", Paper presented at Society of Biblical Literature International Meeting, Louvain, Belgium, 7-10 August 1994.

035 पंचम भाग • द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का अन्त सास्कृतिक अध्ययन

(Transcultural Study of the Bilingual Ashokan Inscriptions)

• आध्यात्मिक उपागम (Spiritual Approach)

• धर्मचकवर्ती अशोक द्वारा प्रसारित जनहितकारी वचन–सारणी

का ' बुद्ध–चक्षु ' से अवलोकन ।

अभिलेखों के पाठों के पुन–पुन अवलोकन का प्रतिफल पाचवें भाग में मिलता है । विभिन्न भाषाओं की वचन–सारणी अथवा शब्दवली में एक ही अशोकीय विचार–धारा की अपनी पहचान होती है । यहाँ धर्मराज धर्माशोक के अपने विशिष्ट लोक–धर्मदर्शन की अभिव्यक्ति हुई । फिर भी द्विभाषीय–बहुभाषीय अभिलेखों में सास्कृतिक आदान–प्रदान के सार्थक तत्व विद्यमान हैं । इस भाषाई सेतुकरण का पूर्ण प्रमाण द्विभाषीय शब्दसूची के रूप में दिया गया है इसमें अरामी लिपि तथा यूनानी लिपि में अकित द्विभाषीय अभिलेखों के सभी शब्दों की सटिप्पन सूची तैयार की गई है । कुछ प्रमुख शब्दों के सबध में – जैसे अरामी में ' सत्य ' और यूनानी में ' प्रेम ' के सबध में – , ये टिप्पणिया इतनी अधिक विस्तृत हो गई हैं कि वे अपने आप में अलग विषय बन सकती थीं । उनमें ऐसी उदार अवधारणा आविर्भूत होती है , जो आधुनिक सदर्भ में सर्वधर्म–समभाव को ही सम्पुष्ट करती है।

यद्यपि इस शोध–प्रबध का प्रत्यक्ष अभिप्राय प्राचीन इतिहास के अशोकीय सदर्भ तक सीमित है , फिर भी वह एक आधारभूत अर्थगर्भ सदर्भ है , जिससे उदारचरित् अन्त सास्कृतिक सद्भावना जन्म लेती है । इसलिए मानव–धर्म के सस्थापनार्थ द्विभाषीय अभिलेखों को उत्कीर्ण करा कर सम्राट अशोक ने विश्वधर्म–सगम की ओर प्रवर्तन का महान कार्य किया । इस प्रकार उन्होंने प्राचीन धर्म–साहित्य के ऐसे तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रेरणा–स्रोत उपलब्ध कराया , जो आचारहीन विविचार मात्र न रहे । उन्होंने आचार–व्यवहार के लिए प्रकाश–स्तम्भ खड़ा किया , मनुष्यता हेतु दृष्टि प्रदान की । सचमुच , उन्होंने ' चक्षु–दान ' का उपकार

किया , जैसे उस स्तम्भ पर , जो आज प्रयाग सगम–स्थल पर ही खड़ा है , अब तक लेख्यकृत है ' धर्म क्या है ? – धर्म यह है अल्प–पाप , बहु–कल्याण , दया , दान , सत्य और शौच । **चक्षु–दान** भी मेरे द्वारा विविध प्रकार का दिया गया है । ' यह प्रयाग–कोसम के द्वितीय मुख्य स्तम्भ–लेख का उल्लेख है । शोधकर्ता अपने को सौभाग्यशाली मानता है कि वह स्वय त्रिवेणी सगम के पास ही अपने चक्षुओं से उस पाठ की मूल अक्षर–आकृतियों को पहचान सका । प्रथम पक्ति में ये मूल प्राकृत शब्द स्पष्ट ब्राह्मी अक्षरों में अकित हैं

=	**किय चु धंमे ति**	और धर्म क्या है ?
=	**अपासिनवे**	1 अल्प–पाप ,
=	**बहु–कयाने**	2 बहु–कल्याण ,
=	**दया**	3 दया ,
=	**दाने**	4 दान ,
=	**सचे**	5 सत्य
=	**सोचये**	6 (और) शौच ।

उसी प्रथम पक्ति के अन्त में तथा द्वितीय पक्ति के आरम्भ में ये अक्षर मिलते हैं

=	**चक्षु–दाने पि मे**	चक्षु–दान भी मेरे द्वारा
=	**बहु–विधे दिंने**	बहुत प्रकार से दिया गया ।

इस चक्षु–दान द्वारा चक्षु–दाता अशोक अपनी प्रिय प्रजा को धर्माचरण की ओर प्रवृत्त करना चाहते थे । इसलिए उन्होंने अपने अभिलेख के अन्त में ये शब्द भी खुदवाये ' यह धर्माभिलेख मैंने इसलिए उत्कीर्ण करवाया कि लोग उसके अनुसार आचरण करें । जो इस प्रकार आचरण करेगा वह सुकृति ही करेगा । ' काश इस धर्मसदेश की प्रति यूनानी–अरामी रूपान्तर में भी सुरक्षित होती , फिर भी इसका सारतत्व प्रस्तुत द्विभाषीय अभिलेखों में सन्निहित है । अन्तत महत्व इस बात की नहीं है कि अन्य भाषा–सस्कृति में अनुवाद कैसा बना , वरन् मानव–मात्र अपने मानव–धर्म का कैसा पालन करे । ' पच–चक्षु ' से अवलोकन करने का यही परमोद्देश्य है कि सत्याचरण के लिए हमें प्रेरणा प्राप्त हो । अन्तःकरण में दृष्टि–दान मिले , जिससे बहुकल्याण के लिए अधिक सत्कर्म करें !

04 इस अध्ययन के लिए अभिप्रेरण MOTIVATION FOR THIS STUDY

कुशल शासक होने के नाते राजा अशोक अवश्य सुव्यवस्थित शासन–अनुशासन स्थापित करना चाहते थे , लेकिन उन्होंने केवल राजनीतिक उद्देश्य से अपने अभिलेख नही लिखवाये । पिता के सदृश अपनी प्रजा से प्रेम कर वह जनता के हित–सुख के लिए चिन्तित थे । उनके अभिलेखीय प्रयोग के पीछे एक सच्चे ' आर्यपुत्र ' का निष्काम प्रयोजन था । अत उन प्राचीन अभिलेखों की वाणी में हमें एक मानव–हृदय की धड़क सुनने की कोशिश करनी चाहिए । प्रस्तुत शोध का प्रयोज्य उद्देश्य केवल तदर्थ सामग्री संकलित करना तथा उसका पाठालोचनात्मक विश्लेषण करना नही है । सम्राट अशोक कोई कल्पनात्मक आदर्शवादी नहीं है , वह ऐतिहासिक सत्यवादी पुरुप है । उनके आदेश–पत्रों में उद्घोषित सदेश सद्व्यवहार के लिए प्रेरक उद्गार हैं । उनके लेखों में हम भारतीय आत्मा की उत्प्रेरणा से उद्दिष्ट उस नव–सबोधि पहचान सकते है , जो ' बहुजन सुखाय बहुजन हिताय ' जैसे समाज–दर्शन के रूप में उद्भासित हुई ।

उस स्तर पर शोध करने के लिए वृत्तिक सक्षमता (professional competence) पर्याप्त नही है । इस अनुसधान की साधना में आन्तरिक अक्षर–ज्ञान की आवश्यकता भी है , जिससे हृदय–पट पर अकित आत्मिक सदेश की तह तक पहुच सकें । अशोक हमसे कुछ कहना चाहते है जिसे वह शायद लिखित शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहे है । अध्यात्म के क्षेत्र में एक ऐसा सप्रेषण है , जो काल और स्थान , धर्म ओर सस्कृति , भाषा और लिपि की सीमाओं से परे मानव–हृदयों को जोड़ सकता है। उस सूक्ष्म अन्त ज्ञान के लिए शोधकर्ता को सवेदनशील होना चाहिए । यद्यपि कोई भी शोधक ' सत्यम् शिवम् सुन्दरम् ' की किसी भी अभिव्यक्ति में स्वभावत अपने स्वधर्म के इष्ट–गुरू की वाणी प्रतिध्वनित अनुभव कर रहा हो , तौभी उसे सभी प्रकार का पूर्वाग्रह छोड़कर पूर्ण सत्य के लिए ग्रहणशील होना चाहिए ।

इसके साथ–साथ बाह्य स्थिति–सस्थितियों पर भी दृष्टि रखनी है । मौलिक लिखित सदेश यथार्थ जीवन से सबध रखता है । मानव–समाज में येन–केन–प्रकारेण अव्यवस्था की कुस्थिति भी है , जो अन्याय और दुराचार से संपोषित रहती है । इसके विप्रीत अशोकीय अभिलेखों में न्याय–धर्म और .

सदाचरण हेतु ऐसी सुस्पष्ट एव सशक्त सूक्तिया सचारित हुई ,जो व्यावहारिक विश्वबन्धुत्व–भगिनीत्व के सस्थापनार्थ सामाजिक सरचना के नव–निर्माण में प्रभावी बनी रहती हैं ।

ऐसा नही कि इस शोधकर्ता में वैज्ञानिक शोधान्वेषण के सभी भीतरी और बाहरी गुण विद्यमान हो । लेकिन विषय की उत्कृष्टता के कारण वह कुछ आश्वस्त बन जाता है । निवृत्ति और प्रवृत्ति की सत्यशिक्षा शोध–विषय में ही निहित है । उसे उद्घाटित करने के लिए शोध–अन्वेषक सचेत रहे , तो वह अपने गन्तव्य स्थान तक पहुचने की आशा कर सकता है । फिर भी शोध–दोषों के लिए वह विनम्र क्षमा–प्रार्थी है । सतोष केवल इस बात का है कि ये दोष आलोच्य होते हुए भी अज्ञानकृत हैं , और इसलिए साध्य भी हैं । जैसे पूज्य महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने ' सत्यार्थ प्रकाश ' नामक वेद–परायण ग्रथ की भूमिका में लिखते हैं ' मुख्य प्रयोजन सत्य–सत्य अर्थ का प्रकाश करना है विद्वान आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें , पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें । न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है । **यत्तदग्रे विषमिव परिणामे ऽमृतोपमम्** – यह गीता (अ० 18 , श्लोक 37) का वचन है । इसका अभिप्राय यह है कि जो–जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं , वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते है । '[(1)]

अस्तु , इस शोध–प्रबध के जटिल विश्लेषणों का वास्तविक अभिप्राय अभिलेखीय सदेश पर केन्द्रित है । इसकी सार्थकता विषय–बोध का प्रकाशनात्मक उद्देश्य ही है जिससे अभिलिखित सत्य–सदेश व्यक्तिगत सुनीति और सामाजिक संप्रीति के लिए प्रासगिक प्रेरणास्रोत बने ।

05 इस अध्ययन की नवीनता NOVELTY OF THIS STUDY

' पच–चक्षु ' से – अर्थात् सादर्भिक , पुरालेखीय , पुरालिपीय व्याख्यात्मक और अन्तःसास्कृतिक दृष्टि से – द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का,और विशेषकर उनके ब्रामी पाठ का, उद्घाटनात्मक अध्ययन करना अपने आप में एक नवीनता है । वैसा तो अशोकीय अभिलेखों के सबध में विपुल

---

(1) *महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती* , **सत्यार्थ प्रकाश** , नई दिल्ली,1975(शताब्दी संस्करण), पृ . 2–3 ।

ग्रथ–भण्डार उपलब्ध है । सब से अधिक भारतीय वैज्ञानिकों ने ही उनका महत्व समझकर उन्हे अपनी गवेषणा का प्रिय विषय बनाया । लेकिन यह सराहनीय कार्य प्राय ' विभाषीय ', अर्थात् प्राकृत अभिलेखों तक सीमित रहा । ' द्विभाषीय ' अरामी–यूनानी अभिलेखों पर कम विद्वानो ने ध्यान दिया । एक महान अपवाद है प्रोफेसर बी० एन०• मुखर्जी [(1)] । उन्होंने अलग रूप से द्विभाषीय अभिलेखों का ब्योरेवार अध्ययन किया और उच्चस्तरीय व्याख्यात्मक टिप्पण के साथ कुछ नवीन पाठ–निर्णय के सुझाव दिये। उन्होंने आगे के अन्वेषकों के लिए एक ठोस आधार रखा – यद्यपि उनकी विद्वता की बराबरी करने के लिए विरले ही कोई खड़ा हो सकेगा ।

यह शोध–कार्य एक कदम आगे निकलने की नम्र चेष्टा है । इस गभीर तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्राचीन यूनानी तथा इब्रानी–अरामी सत्–साहित्य से अच्छा–खासा सम्पर्क होना चाहिए । फिर भी विश्व–भ्रमण करने की इतनी आवश्यकता नहीं है , जितनी भारतीय सस्कृति से सीधे सम्पर्क रखने की । जो खोजी इस विश्व–नीडम् भारतवर्ष की पुण्यभूमि पर ही तीर्थाटन कर रहा/रही हो , वही शोध–विषय के सबध मे नयी खोज करने की अधिक योग्यता रखता/रखती है । अत इस शोधकर्ता ने अपने शोध–कर्म द्वारा माँ–भारती के प्रति थोड़ी–सी मात्रा में उऋण हो जाने की कोशिश की है । उसी आदरभाव से प्रेरित होकर उसने हिन्दी माध्यम में अपनी खोज प्रस्तुत [(2)] करने का प्रयास भी किया है । सम्पर्क–भाषा के प्रयोग से गूढ विषय–वस्तु कुछ अधिक सुगम्य हो जाती है , लेकिन यदि इस कृति में कृत्रिमता या क्लिष्टता का आभास हो तो दीन क्षमा–याचना है ।

किसी हद तक शोधकर्ता एक नवीन प्रकिया (innovation) आरम्भ करने का दावा कर सकता है । इस अध्ययन में देवनागरी लिपि की विशिष्ट लिप्यन्तरण–पद्धति अपनायी गई है , जिसका मूल 'आविष्कार ' करने का श्रेय लखनऊ–स्थित ' भुवन वाणी ट्रस्ट ' के दिवागत सस्थापक–प्रतिष्ठापक

---

(1) B.N MUKHERJEE, Studies in the Aramaic Edicts of Asoka , Calcutta , 1981 .

(2) वास्तव मे , यदि कोई विद्वान हिन्दी में लिखे , तो यह आत्मगौरव की बात है कि वह – अभारतीय के सामने भी – हिन्दी का प्रयोग करने के लिए क्षमा–याचना न करे । उदाहरणार्थ , जब डॉ० आर० डी० रानडे ने (अंग्रेजी में सही !) यूनानी तथा संस्कृत भाषाओ का तुलनात्मक अध्ययन किया , तब उन्होंने बिना हिचकिचाहट सस्कृत का उल्लेख करने के लिए देवनागरी का प्रयोग ही किया । उनका तर्क था ' If European scholars cannot read Devanagari fluently, why , they must cultivate the habit of reading the same. Do not Indian scholars at first find it difficult to read the German or the Greek alphabet ? European scholars must pay the price of learning a new alphabet ' (R.D.RANADE, Essays and Reflections. Bombay ,1964,p.31).

श्री नन्दकुमार अवस्थी (पद्मश्री) को देना चाहिए । उन्ही के चरणो में शोधकर्ता को लिपियों की 'दीक्षा ' प्राप्त हुई , जिससे वह भुवन वाणी टस्ट के उत्कृष्ट प्रकाशनों में यूनानी तथा इब्रानी–अरामी सद्ग्रथो का 'लिप्यन्तरणकार ' (transliterator) ठहराया गया । उस लिप्यन्तरण–कार्य के अनुभव के आधार पर इस शोध–कार्य में प्रयुक्त लिप्यन्तरण–पद्धति का स्वरूप भी बना।

सभी भाषाओं के लिए एक ही परिवर्धित देवनागरी लिपि को जोड–लिपि के रूप में प्रयोग करने से उन भाषाओ की समानताए अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं । विभिन्न लिपियों में अभिलिखित प्रसकल्पित विचारो का आदान–प्रदान दिखाने में अधिक सुगमता मिलती है । विभिन्न अभिलेखों अथवा धर्मलेखों का तुलनात्मक उल्लेख करने मे भी सुविधा आती है । किसी पाठ विशेष का स्थिति–सदर्भ भिन्न हो सकता है, लेकिन धार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति मे पाठों का कोई समान सादर्भिक अर्थ हो सकता है । शास्त्रार्थ–मीमासा (हर्मिन्यूटिक्स् Hermeneutics)का आधार विश्वव्याप्त है । सादर्भिक (con-textual) भिन्नता मे मीमासक सह–पाठगत (co-textual) समानता ढूँढ ली जा सकती है [1] । यह पुराना सिद्वात ही है **एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति** । विभिन्न मत और पथ के प्रवक्ता भिन्न शब्दा मे अन्तत एक ही मूल सत्य का अनु–नाद अथवा अनु–वाद करते हैं । इसलिए अलग–अलग ' वाद ' के अनुयायियों में सह–वाद , सवाद (dialogue) भी सभव है ।

06 लिप्यन्तरण–पद्धति SYSTEM OF TRANSLITERATION

निम्न तालिकाओं में परिवर्धित देवनागरी लिपि के माध्यम से उन अक्षरों का उच्चारण–बोध दिया जा रहा है , जो द्विभाषीय अभिलेखों में चाहे अरामी अथवा यूनानी लिपि में अकित हुए ।

061 अरामी वर्णमाला ARAMAIC ALPHABET

अरामी लिपि में केवल स्वर–रहित व्यजनात्मक वर्णमाला है , जैसे निम्न तालिका से स्पष्ट है

---

(1) उदाहरणार्थ , बाइबिल–अर्थनिरूपण के संबंध में व्यापक पाठगत सदर्भ पर ध्यान दिलाने के लिए एक नई पत्रिका का आरम्भ हुआ Biblical Interpretation – A Journal of Contemporary Approaches (Vol.I= 1993)। इसमे पाठ–पठन के व्यापकतर अर्थ ढूंढने के लिए एक नये उपागम की मांग की जाती है ' . comparative textual study in a religiously pluralistic context ... to find hermeneutical links with various non-biblical scriptures and Asian sapiential traditions .. a new understanding of textuality . . subsuming Asian stories into the biblical story ' (R.S SUGIRTHARAJAH , " The Bible and its Asian readers " , Ibid. ,pp.54-66) । ' इष्टि ' अथवा स्व–धर्मग्रथ की आस्था मे सर्व–धर्मग्रंथ के प्रति आदर–युक्त ' दृष्टि ' होनी चाहिए । शोधकर्ता ने इस दिशा मे कुछ प्रयास किया था , देखिए ग्रंथसूची SHARMA, HARSHDEV और CALLEWAERT, WINAND के नाम पर ।

अरामी वर्णमाला ARAMAIC ALPHABET

क्रमश अरामी लिपि के 22 व्यजनों के (1) अभिलिखित आकार (अशोकीय अभिलेखो के अनुमानित–सरलीकृत रूप), (2) शास्त्रीय इब्रानी–अरामी प्रयोग में आधुनिक मुद्रित आकार, (3) नाम और (4) उच्चारण ।

𐡀	א	आलेफ़्	अक्षरारंभ में किसी स्वर का आधार अ् ; स्वरांत में अनुच्चरित
𐡁	ב	बेथ्	स्वर के बाद भ् ; अन्यथा मध्यबिंदु–सहित בּ = ब् अथवा ब्ब्
𐡂	ג	गीमेल्	स्वर के बाद घ् ; अन्यथा मध्यबिंदु–सहित גּ = ग् अथवा ग्ग्
𐡃	ד	दालेथ्	स्वर के बाद ध् ; अन्यथा मध्यबिंदु–सहित דּ = द् अथवा द्द्
𐡄	ה	हे	ह् ; शब्दांत में अनुच्चरित, किन्तु मध्यबिंदु–सहित הּ = ह्
𐡅	ו	वाव्	व् ; मध्यबिंदु–सहित וּ = व्व् अथवा ऊ/ू ; ऊपरी बिंदु–सहित וֹ = ो
𐡆	ז	ज़ैयिन्	ज़् ; मध्यबिंदु–सहित זּ = ज़्ज़्
𐡇	ח	ख़ेथ्	ख़् (गहरे कंठ से संघर्षी उच्चारण)
𐡈	ט	टेथ्	ट् ; मध्यबिंदु–सहित טּ = ट्ट्
𐡉	י	योध्	य् अथवा ि/ी/े/ै ; मध्यबिंदु–सहित יּ = य्य्
𐡊	כ	कफ़्	(अन्त्यस्थ ך) स्वर के बाद ख् ; मध्यबिंदु–सहित כּ = क् अथवा क्क्
𐡋	ל	लामेध्	ल् ; मध्यबिंदु–सहित לּ = ल्ल्
𐡌	מ	मेम्	(अन्त्यस्थ ם) म् ; मध्यबिंदु के साथ מּ = म्म्
𐡍	נ	नून्	(अन्त्यस्थ ן) न् ; मध्यबिंदु–सहित נּ = न्न्
𐡎	ס	सामेख्	स् (स् के समान उच्चरित) ; मध्यबिंदु–सहित סּ = स्स्
𐡏	ע	अ़यिन्	अ़् (मध्य कंठ से उच्चरित क्षीण ऊष्मवर्ण)
𐡐	פ	पे	(अन्त्यस्थ ף) स्वर के बाद फ़् ; मध्यबिंदु–सहित פּ = प् अथवा प्प्
𐡑	צ	स़ाधे	(अन्त्यस्थ ץ) स़् (तीव्र दन्त्य स्) ; मध्यबिंदु–सहित צּ = स़्स़्
𐡒	ק	क़ोफ़्	क़् ; मध्यबिंदु–सहित קּ = क़्क़्
𐡓	ר	रेश्	र्
𐡔	ש	सीन्/शीन्	बिंदु बाएं שׂ = स् / दाएं שׁ = श् ; मध्यबिंदु–सहित שּ = स्स्/श्श्
𐡕	ת	ताव्	स्वर के बाद थ् ; अन्यथा मध्यबिंदु–सहित תּ = त् अथवा त्त्

अरामी व्यजनो मे चार व्यजन ' आलिफ़् , हे , वाव् और योध् ' स्वभावत स्वरात्मक होते हैं । लिपिकों ने उन चार व्यजनों को कमश ' आ , ए , ऊ और ई ' के लिए स्वराधार बना दिया है । इस प्रकार स्वरात्मक व्यजन कभी उन दीर्घ स्वरों के सकेत हो सकते हैं । फिर भी , जब तक स्वरो के लिए अपने-अपने अलग चिह्न उपलब्ध नही होते , तब तक यह डर बना रहता है कि अनभ्यस्त पाठक केवल व्यजनों में लिखे गये पाठ को गलत न पढे । इसलिए सामान्य सवत् की पाचवीं-छठी सदी में लिपिकों ने सभी स्वरों के सही उच्चारण के लिए व्यजनों के ऊपर-नीचे , सामने या बीच में छोटी-छोटी बिदु-मात्राए लिखना आरम्भ किया । किन्तु पाठ में पहले से प्रयुक्त स्वाधार-वाले व्यजनो को ज्यों-का-त्यों रहने दिया गया है । इस प्रकार उन नयी मात्राओं के साथ ये व्यजन कभी अनुपूरक स्वर-सकेत बन जाते हैं , उदाहरणार्थ पूर्ण लिखावट में ए-मात्रा के साथ कभी अनुपूरक योध् भी बना रहता है । मुद्रित इब्रानी-अरामी लिपि में प्रयुक्त सहायक मात्राए और उनके देवनागरी समरूप इस प्रकार दिखाये जा सकते हैं , कमश (1) मूल रूप , (2) नाम , (3)देव-नागरी लिप्यन्तरण , (4) उच्चारण और (5) अनुपूरक व्यजन-सहित स्वर-चिह्न ।

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
◻꞉	श्वा-नाख़्	हलन्त का चिह्न	व्यंजन का प्रयत्न मात्र	
	श्वा-नाअ़्	ऊपरी न्यूनकोण	अतिह्रस्व अ-स्वर	
◻	पथख़्	हलन्त-विहीन व्यंजन	अ	
◻	ख़ाटेफ़्-पथख़्	ऊपरी अर्ध-चन्द्र	ह्रस्व अ	
◻	क़ार्मेस् राख़ाभ्	मात्रा ा	आ	◻ ◻
	क़ार्मेस्-ख़ाटूफ़्	मात्रा ॆ	ह्रस्व ओ	
◻	ख़ाटेफ़्-क़ार्मेस्	मात्रा ॆ	ह्रस्व आ	
◻	ख़ीरेक़्	मात्रा ि / ी	इ / ई	◻
◻	सेरे	मात्रा	ए	◻ ◻
◻	सेघोल्	मात्रा	ह्रस्व ए	◻
◻	ख़ाटेफ़् सेघोल्	मात्रा	ह्रस्व अ	
◻	क़िब्बूस्	मात्रा ु / ू	उ / ऊ	◻
	शूरेक़्	मात्रा ू	ऊ	
◻	ख़ोलेम्	मात्रा ो	ओ	◻

अतिरिक्त चिह्न: शब्द में स्वर का कोई भी स्वराघात — मुख्यतः ꞌ द्वारा चिन्हित।

062 यूनानी वर्णमाला GREEK ALPHABET

यूनानी वर्णमाला सम्भवत अरामी वर्णमाला के किसी पूर्वरूप से उत्पन्न हुई , जिसे यूनानी भाषा के स्वन–गुण के अनुकूल बनाया गया । प्राचीन यूनानी लिपि में केवल वृहदक्षरो (capitals) का प्रयोग होता था । बहुत समय के बाद (अशोक के बाद ही) घसीटी लिपि के आधार पर छोटे अक्षरों (minuscules) के रूप भी बने । नवी सदी सा०स० से वे शास्त्रीय यूनानी के हस्तलेखों में स्थायी आकार में प्रयुक्त होने लगे । यद्यपि मूल अभिलेखों की प्राचीन यूनानी लिपि में केवल बड़े अक्षर ही दिखाई देते थे , फिर भी आधुनिक सस्करणों में वाक्य–रचना के स्पष्टीकरण तथा स्वराघात–सहित शुद्ध उच्चारण के लिए मूल यूनानी पाठ को छोटे अक्षरों के साथ उतारने का प्रचलन है । अशोक के यूनानी अभिलेखों को भी उसी परिमार्जित रूप से वैज्ञानिक प्रकाशनों में प्रस्तुत किया जाता है । उसी शुद्धीकृत पाठ के आधार पर यहा परिवर्धित देवनागरी लिपि मे यूनानी शब्दो का लिप्यन्तरण किया गया है ।

प्राचीन यूनानी लिपि के विकास के आरम्भिक चरण मे ही लिपिकारों ने पूर्वरचित व्यजनो के अतिरिक्त अपनी यूनानी भाषा के स्वरों के लिए अलग–अलग स्वरवर्ण भी बनाये थे , इसलिए ,उसमें व्यजनात्मक अरामी लिपि के समान स्वर–मात्राओं को जोड़ने की आवश्यकता नही पड़ी । फिर भी , यूनानी भाषा के चढ़ते–उतरते स्वराघात के कारण , अथवा व्यजनात–स्वरात अक्षरों में स्वरो के बदलते प्रयोग के कारण , अथवा द्वि–वर्णों की एक–स्वर सधि या अर्ध–वर्णो के सम्मिलन के कारण , उच्चारण में स्पष्ट भेद सुनाई देते हैं। विकसित यूनानी लिपि मे उन छोटे–छोटे भेदों को दिखाने के लिए अतिरिक्त चिह्नो को जोड़ा गया । प्रस्तुत लिप्यन्तरण–पद्धति में उच्चारण के भेदो पर ध्यान दिया गया है , उदाहर्णार्थ , स्वरान्त अक्षर में यूनानी ε (अॅ–प्सिलॉन्) का उच्चारण ' अे ' (अर्थात् ए) होता है , जब कि व्यजनान्त अक्षर में ' अॅ ' (अर्थात् ह्रस्व ए) ।

यूनानी वर्णमाला GREEK ALPHABET

नीचे दी गई लिप्यन्तरण–तालिका में क्रमश (1) अशोकीय अभिलखो में प्रयुक्त सरलीकृत यूनानी वर्ण–आकार दिये गये , (2) शास्त्रीय यूनानी के मुद्रित सस्करणों के बड़े–छोटे वर्ण , (3) नाम और (4) मुख्य उच्चारण तथा उच्चारण–भेद का स्पष्टीकरण

A	A	α	अल्फ़	अ/	व्यंजन के बाद हलन्त-विहीन व्यंजन अ-सहित उच्चरित स्वराघात के अनुसार अ का अं अ_ अँ उच्चारण आरम्भिक अ सप्राण श्वसन-चिह्न से युक्त : ह हं ह_ हँ पाद-ञिओत से अ...ह...में उच्चारण-भेद नहीं
B	B	β	बेत	ब्	
Γ	Γ	γ	गंम्म	ग्	अन्य कण्ठ्य वर्ण के सामने ङ् उच्चारण, उद॰ γγ=ङ्ग्
Δ	Δ	δ	देल्त	द्	
E	E	ε	ऍ-प्सिलोन्	ऍ/	व्यंजनान्त अक्षर में ऍ का ऍ (ह्रस्व ए) उच्चारण स्वराघात के अनुसार ऍ/ऍ का ऍं ऍ_ / ऍं ऍ_ उच्चारण ऍ/ऍ सप्राण श्वसन-चिह्न से युक्त: हे हें हे_ / हें हें हे_
I	Z	ζ	ज़ेत	ज़्	
H	H	η	ऍत	ऍ/	ऍ (अर्थात् ऐ) का एक-स्वरक उच्चारण करें स्वराघात के अनुसार ऍ का ऍं ऍ_ ऍँ उच्चारण ऍ सप्राण श्वसन-चिह्न से युक्त : हे हें हे_ हेँ पाद-ञिओत से ऍ...हे...में उच्चारण-भेद नहीं
Θ	Θ	ϑ	थेत	थ्	
I	I	ι	ञिओत (योत)	ञि/	स्वराघात के अनुसार ञि का ञिं ञि_ ञिँ उच्चारण ञि सप्राण श्वसन-चिह्न से युक्त : हि हिं हि_ हीँ स्वर के बाद ञि का य् उच्चारण: अय् ऍय् ओय् ऊय् पाद-ञिओत (या वृहदक्षर में संलग्न ञिओत) अनुच्चरित
K	K	κ	कंप्प	क्	
Λ	Λ	λ	लंम्बद	ल्	
M	M	μ	मूँ	म्	
N	N	ν	नूँ	न्	
Ξ	Ξ	ξ	क्सीँ	क्स्	
O	O	ο	ओ-मिक्रोन्	ओ/	ह्रस्व ओ का उच्चारण स्वराघात के अनुसार ओ का ओं ओ_ उच्चारण ओ सप्राण श्वसन-चिह्न से युक्त : हो हों हो_
Π	Π	π	पीँ	प्	
P	P	ρ	र्होँ	र्	
Σ	Σ	σ	सिंग्म	स्	अन्त्यस्थ ς
T	T	τ	तव्	त्	
Y	Y	υ	ऊ-प्सिलोन्	ऊ/	ओष्ठ्य ऊ कभी तालव्य ञि से मिश्रित उच्चारण स्वराघात के अनुसार ऊ का ऊं ऊ_ ऊँ उच्चारण ऊ सप्राण श्वसन-चिह्न से युक्त : हू हूं हू_ हूँ स्वर के बाद ऊ का व् उच्चारण : अव् ऍव् ओव् ऍव् द्विस्वर ओव् का एकस्वरक उच्चारण भी (ऊ के समान)
Φ	Φ	φ	फ़ीँ	फ़्	
X	X	χ	ख़ीँ	ख़्	अरामी ख़ेथ् के समान नहीं, वरन् कोमल तालु से उच्चारण
Y	Ψ	ψ	प्सीँ	प्स्	
Ω	Ω	ω	ओँ-मेग	ओ/	स्वराघात के अनुसार ओ का ओं ओ_ ओँ उच्चारण ओ सप्राण श्वसन-चिह्न से युक्त : हो हों हो_ होँ पाद-ञिओत से ओ...हो...में उच्चारण-भेद नहीं

लिप्यन्तरण में कुछ और विशेषताए हैं ,जो किसी–किसी को अनावश्यक जटिलताए लगती होगी। फिर भी शुद्ध पाठ की प्रस्तुति में उनका महत्व है । कोई पूछ सकता है ऊपर के उदाहरण मे ' ए ' के स्थान पर ' अे ' क्यों लिखा गया था ? इसका कारण यह है कि वर्तमान यूनानी लिपि मे आरम्भिक स्वर के साथ अनिवार्यत एक ' श्वसन चिह्न ' लिखा जाता है । दो प्रकार का श्वसन (aspiration) होता है (1) अप्राण श्वसन चिह्न ' ᾿ ', जैसे ε के साथ ' ἐ ' (जिसके लिए लिप्यन्तरण–पद्धति में हलन्त–सहित ' अ् ' के साथ ' ए ' की मात्रा लिखना अधिक सुविधाजनक है = ' अे ') और (2) सप्राण श्वसन–चिह्न ' ῾ ', जैसे उसी ε के साथ ' ἑ ' (जिसका लिप्यन्तरण सामान्य हलन्त–सहित ' ह् ' के साथ ' ए ' की मात्रा लिखने से होता है = ' हे ')।

यूनानी लिपि मे दीर्घ ' आ–ई–ऊ ' के लिए अलग स्वर–वर्ण नहीं है । परन्तु स्वरो के उच्चारण में प्राचीन भारोपीय स्वराघात की प्रणाली (जो वेद–पाठ में भी सुरक्षित है) प्रभावी बनी रही । इसके तीन भेद है (1) उदात्त ' ´ ' , जब स्वर ऊपर चढ ता है – उदाहरणार्थ α (अल्फ) के साथ ' ά ' = अ॑, (2) अनुदात्त ' ` ', जब स्वर नीचे उतरता है – उद० ' ὰ ' = अ॒, (3) स्वरित ' ῀ ', जब स्वर ऊपर चढकर तुरन्त नीचे उतरने से मध्यम रह जाता है – उद० ' ᾶ ' = आ̂ । उस स्वरित स्वराघात के कारण लघु स्वर ' अ–इ–उ ' अपने आप दीर्घ बन जाते है । स्वराघात के चिह्न केवल उत्तर–क्लासिकी युग से यूनानी लिपि मे प्रविष्ट हुए ; फिर भी अशोक के यूनानी अभिलेखों के लिप्यन्तरण में स्वरित–वाले दीर्घ स्वर को दिखाना ही होगा । सिद्धातत सभी स्वराघात–हीन स्वरों को अनुदात्त स्वराघात के समान निम्न स्वर से पढना चाहिए । उसका सकेत देना तभी सार्थक है , जब बहु–अक्षरीय शब्द में किसी–एक अक्षर पर बलाघात–सा पड ता है ।

ध्यान दें कि यहा आधुनिक यूनानी की उच्चारण–पद्धति का अनुसरण नहीं किया जा रहा है। यथासम्भव श्रेण्य यूनानी के उस उच्चारण को लिप्यन्तरित किया गया है , जो सोलहवीं सदी सा०स० से देसिदेरिउस् एरस्मुस् के प्रभाव के कारण यूरोपीय विश्वविद्यालयों में स्वीकारा गया [1]।

---

(1) दे० K.FEYERABEND, Handy Dictionary of the Greek and English Languages, Philadelphia, 1918, p.VI: " The chief champion for a more correct rendering of Greek sounds was the famous Desiderius Erasmus...His Dialogue on the right pronunciation of the Latin and Greek languages, 1528, furnished for the first time scientific arguments for the fact that the phonetic system of the period of Plato must have been widely different from that of the Byzantines " .

063 लिप्यंकन के अन्य संकेत–चिह्न OTHER TRANSCRIPTIONAL MARKS

इस आनुसधानिक लिप्यन्तरण में कुछ अन्य सकेत–चिह्नो का प्रयोग हुआ । अन्तर्राष्ट्रीय स्वन–वर्णमाला (International Phonetic Alphabet) के समान परिवर्धित देवनागरी लिपि सभी बहुभाषीय उच्चारण के लिप्यकन के लिए उपयुक्त है । अग्रेजी–जैसी आधुनिक भाषा को यहा ' विश्व नागरी ' के माध्यम से शुद्ध रूप से लिप्यन्तरित–उच्चारणान्तरित करने का प्रयास किया गया । इसके लिए अरामी एव यूनानी पाठ के लिप्यन्तरण में प्रयुक्त किये गये कई–एक चिह्नों को पुन प्रयोग में लाया गया है उदाहरणार्थ , अग्रेज़ी की लघुतम पूर्वश्रुति अथवा ' आक्षरिक व्यजन ' (syllabic consonant[1]) के लिए इब्रानी–अरामी लिप्यन्तरण का लघुतम अतिह्रस्व स्वर ' अ ' (मात्रा मे ' ˇ ') लाभकारी सिद्ध हुआ , उद० टेबॅल् (table) । ह्रस्व ' ए ' को लहरदार मात्रा ' ॅ ' से दर्शाया गया , उद० बॅड् (bed) , और ह्रस्व ' ओ ' को भी लहरदार चिह्न ' ॉ / ॉ ' से , उद० ऑबे (obey) मे । इसी प्रकार अन्य भाषाओं में से उल्लिखित शब्दों अथवा नामों का यथासम्भव शुद्ध लिप्यन्तरण किया गया – यद्यपि कोई भी लिप्यन्तरण–पद्धति पूर्णत सतोषजनक नही है ।

प्रस्तुत पाठ–अनुसधान में अर्थानुसार स्पष्टीकरण के लिए निम्न सहायक चिह्न भी उपयोगी हैं

□ – □ योजक चिह्न , उद० सयुक्त शब्दों का विभाजन दर्शाने के लिए ।

□ ' □ लोप चिह्न , उद० यूनानी में अन्य शब्द के सामने प्रथम शब्द के अन्तिम वर्ण का लुप्त हो जाना ।

□ ऽ □ अवग्रह चिह्न , उद० यूनानी में अन्य शब्द के बाद द्वितीय शब्द के प्रथम वर्ण का लुप्त हो जाना ।

(□) लघु कोष्टक , उद० मूल में उपलब्ध व्याख्यात्मक वाक्याश के लिए ।

[□] गुरू कोष्टक , उद० मूल में अप्राप्य लुप्ति के सुधार हेतु पुनःस्थापित वर्ण के लिए ।

---

(1) DANIEL JONES & A.C.GIMSON, Everyman's English Pronouncing Dictionary, London, 1977 (14th ed.), pp XIX & XXVII .

o	कुण्डल चिह्न , उद० अस्पष्ट मूल पाठ में अनुमानित वर्ण के ऊपर ।

?	प्रश्न चिह्न , उद० सदिग्ध पाठ में वैकल्पिक वर्ण के ऊपर ।

विषय–वस्तु के अनुसार अत्यधिक प्रयोग के कारण द्विभाषीय अभिलेखों का इस प्रकार उल्लेख हुआ

(1) अरामी लिपि के अभिलेखों के सक्षिप्त सकेत–चिह्न

त० = तक्षशिला

पु० = पुल–इ–दरुन्त

श० अ० = शर–इ–कुन (अरामी खण्ड)

क० अ० = कन्दहार (अरामी प्रतिरूप)

ल० प्र० = लघमान का प्रथम प्रतिरूप

ल० द्वि० = लघमान का द्वितीय प्रतिरूप

(2) यूनानी लिपि के अभिलेखों के सक्षिप्त सकेत–चिह्न

श० यू० = शर–इ–कुन (यूनानी खण्ड)

क० यू० = कन्दहार (यूनानी प्रतिरूप)

1 द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का परिचायक संदर्भीकरण

INFORMATIVE CONTEXTUALIZATION OF THE BILINGUAL ASHOKAN INSCRIPTIONS

10 प्रथम भाग का आरम्भ BEGINNING THE FIRST PART

द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों के इस अध्ययन के प्रथम भाग में ' **देह–चक्षु** ' से उनका बाह्य अवलोकन ही किया जाएगा । इसके लिए उपलब्ध अभिलिखित सामग्री का तथ्यात्मक सर्वेक्षण करना होगा । अभिलेखन–काल और स्थान निर्धारित कर अभिलेखों को मौर्य–वंशी सम्राट अशोक के शासन–काल और शासन–क्षेत्र मे परिसीमित करना होगा । उन्हे सामाजिक एव सास्कृतिक सदर्भ में पुन–स्थापित करना भी पड़ेगा । द्विभाषीय अभिलेखों के सबध मे सभी तथ्यों का इस प्रकार परिचायक वर्णन करने के लिए एक व्यापक ताथ्यिक (factual) उपागम पर्याप्त है ।

11 संप्राप्ति–स्थलों की सामान्य संस्थिति GENERAL LOCATION OF THE FIND-SPOTS

सभी द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख मौर्य साम्राज्य के उत्तर–पश्चिमी सीमान्त–क्षेत्र से प्राप्त हुए। इस अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है कि सप्राप्ति के सीमित भूमिक्षेत्र को विशाल सम्पर्क–क्षेत्र में सस्थापित किया जाए । उस विशालता के प्रतीक में हम सारनाथ के प्रसिद्ध अशोक–स्तम्भ के सिरे पर लगे हुए सिह–शीर्षक को ले सकते हैं । उसमें चार दिशाओं में मुह किये चार सिह दीखते हैं और सबसे ऊपर एक धर्मचक था । जब वह स्तम्भ धर्मचक्र–प्रवर्तन के स्थान पर खड़ा था , तब चारों दिशाओं से बहती हवा के झोंके से उसका स्पर्श होता था । चारों ओर दृष्टि डालनेवाला यह प्रतीक–स्तम्भ चारों ओर से कुछ प्राप्त करने के लिए भी ग्रहणशील रहता था ।

अशोकीय स्तम्भ–लेख उसी प्रकार चारों ओर के धार्मिक–सास्कृतिक आदान–प्रदान के लिए प्रस्तुत थे । मुख्य चौराहों पर अकित अशोकीय अभिलेख भी बहुजनीय कल्याण हेतु सामजस्य बढ़ा रहे थे।

उन्ही अशोकीय अभिलेखों के आधार पर महाद्वीपो के मध्य में सम्पर्क–क्षेत्रों की परिरेखा खींचें
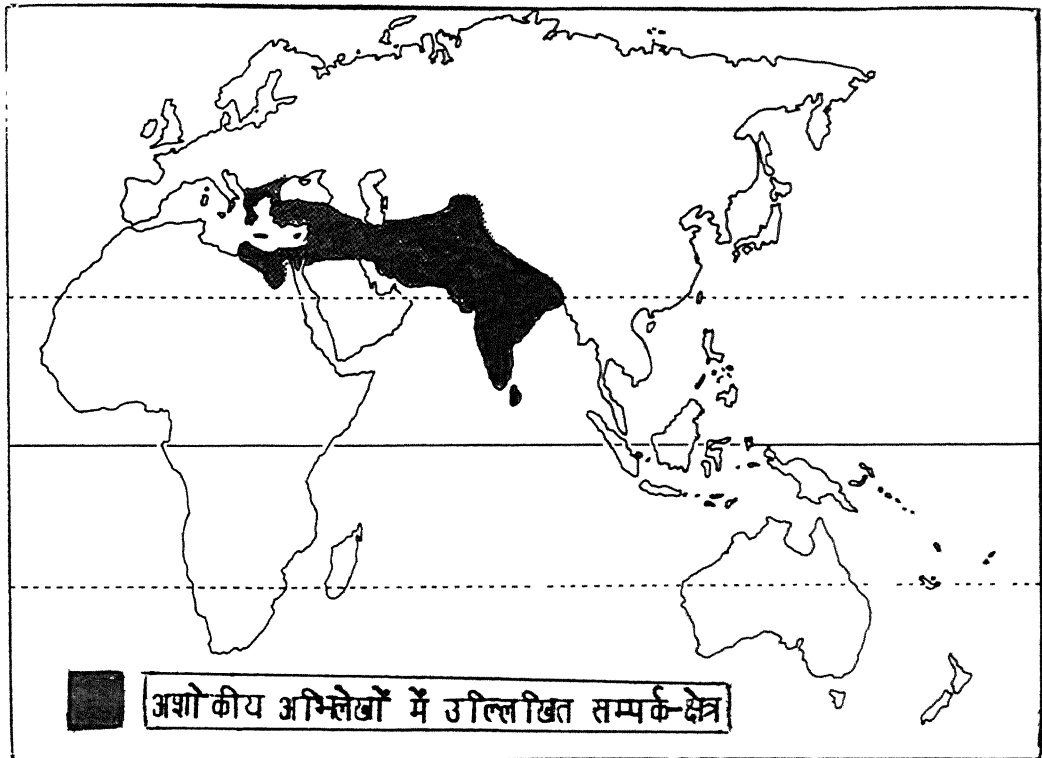
111 यूरोफ्रेशिया में अवस्थित " जम्बुद्वीप " 'JAMBUDVĪPA' SITUATED IN EUROFRASIA

भारत–उपमहाद्वीप का उत्तर–पश्चिमी छोर पश्चिम–एशिया के उन देशों से जुडा हुआ है , जो उस विशाल सेतु–क्षेत्र में स्थित हैं , जहा यूरोफ्रेशिया (Eurofrasia) के तीन महाद्वीप – यूरोप , अफ्रीका तथा एशिया – मिलते हैं [1] । स० स० पू० तीसरी शताब्दी के आरम्भ मे मध्य क्षेत्र पर यूनानी राज्यों का अधिकार था , पश्चिमी मूमध्यसागर में करथागो नगर [2] का वर्चस्व था और दूर पूर्व में चाऊ वश के ह्रास के कारण सात स्वतन्त्र चीनी राज्यों में से चिन् राज्य बलिष्ठ होता जा रहा था । उसी युग के सुयोग में ' जम्बुद्वीप ' के मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ।

प्राचीन भारतीय एव बौद्ध परम्परा के अनुसार सम्पूर्ण वसुन्धरा की केन्द्रीय धुरी पर वह ' सुमेरु पर्वत ' है , जिसके चारों ओर चार महाद्वीप अवस्थित हैं , अर्थात् (1) जम्बुद्वीप (दक्षिण में) ,

---

(1) दे० *महेशनारायण निगम*, **पश्चिमी–एशिया** ,आगरा ,1987,अध्याय 1 ' पश्चिमी एशिया एक भौगोलिक इकाई ' , J SCHWARTZBERG, Ed., A Historical Atlas of South Asia, Chicago, 1978, p. 18: " South Asia in the time of the Mauryan Empire"

(2) अथवा अग्रेजी मे कार्थिज् (Carthage) ।

2 उत्तरकुरू , 3 पूर्वविदेह और 4 अपरगोयान (पश्चिम में) ।

एक ' चक्रवर्ती ' राजा चारों दिशाओं का विजेता है । लेकिन **बौद्ध** शिक्षा के अनुसार आदर्श राजा ' सागर–पर्यन्त पृथ्वी को बिना दण्ड के , बिना शस्त्र के , धर्म के द्वारा जीत कर उसपर शासन करता है '[(1)] । इस बुद्ध–वचन का उल्लेख कर डॉ० भरतसिंह उपाध्याय यह व्याख्या करते है कि शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ने स्वय सार्वभौम चकवर्ती राजा के समान अपने धर्म–चक का प्रवर्तन किया । ' भगवान बुद्ध , जिन्होंने हमे प्रथम बार एक विश्व–धर्म या मानव–धर्म दिया , राजनीति के क्षेत्र में भी सम्पूर्ण जम्बुद्वीप पर एक ऐसी एकछत्र राज्य–सत्ता (**एकरज्जाभिसेक**) के आदर्श को प्रश्रय देनेवाले हुए जो दण्ड या शस्त्र पर आधारित न होकर **घम्म** (सत्य) पर आधारित हो , जिसमें सभी

---

(1) **दीघ–निकाय** , तीसरे वर्ग पाटिक–वग्ग का सातवां सुत्र लक्खन–सुत्त , दे० *भरतसिंह उपाध्याय* ,**बुद्ध–कालीन भारतीय भूगोल** , प्रयाग ,1961, पृ० 139 ।

वर्गों के लोगों की जीविका की सम्यक् व्यवस्था हो और जिसकी कसौटी जनता का सच्चा सुख हो।' भरतसिंह उपाध्याय आगे कहते हैं कि बुद्ध-देव के जीवन-काल के प्राय दो शताब्दी बाद सम्राट धर्माशोक ने चक्रवर्ती राजा के बौद्ध आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न किया और सर्वप्रथम उसी के शासनकाल मे सम्पूर्ण ज्मबुद्वीप का वास्तविक एकछत्र राज्य निष्पन्न हो सका ।

जम्बुद्वीप की पुण्यभूमि यथार्थ धर्म-क्षेत्र बनी । देवानाप्रिय सम्राट अशोक ने **धम्म** का अनुयायी बनकर अल्प समय में ही अपने साम्राज्य में धर्मानुकूल सुराज्य को बढावा दिया । जो लोग पहले देवताओ के सम्पर्क में नहीं आये थे, वे अब देवताओं के सम्पर्क में आये। उस धर्मानुकूलन के लिए प्रथम लघु अभिलेख में ' जम्बुद्वीप ' शब्द का प्रयोग हुआ । ब्रह्मगिरि सस्करण में हम इस शब्द को तीसरी पक्ति के अन्तिम अक्षरों में पढते है
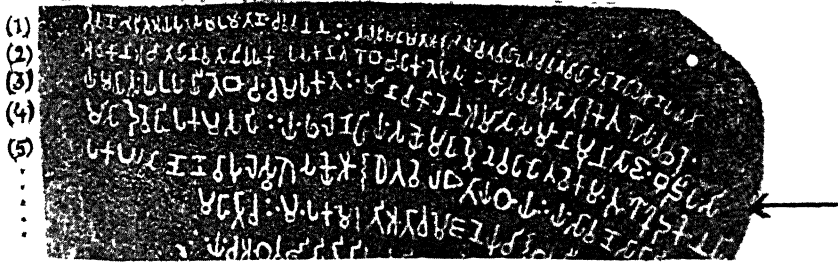
(3) इमिना चु कालेन अमिसा समाना मुनिसा जंबुदीपसि

(4) मिसा देवेहि ....

यदि ब्रह्मगिरि-सस्करण का पाठ मूल उद्‌गार का प्रतिपादन माना जाए, तो प्राकृत से अनूदित इस वाक्य का क्या अर्थ है ' और इस काल में अमिश्र सामान्य मनुष्य जम्बुद्वीप में मिश्र हुए देवों से ' ? राधाकुमुद मुखर्जी[1] का विचार है कि कम-से-कम तीन अर्थ हो सकते हैं (1) जो लोग देवताओं से मिले-जुले न थे, वे धार्मिक उपासक बनकर उनसे मिल-जुल गए, (2) जो लोग आपस में मिल-जुलकर नही रहते थे, वे देवताओं की उपासना में मिल-जुल गए, और (3) जो निरे सासारिक

---

(1) *राधाकुमुद मुखर्जी*, **अशोक**, दिल्ली, 1965, पृ० 92-94 ; दे० RADHA KUMUD MOOKERJI, <u>The Fundamental Unity of India</u>, Bombay, 1954, p.57 : " India as the chosen land, a veritable heaven on earth, culminating in the great national utterance : जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी (' mother and motherland are higher than heaven itself') ', **मनुस्मृति** 2:17 का उल्लेख भी देखे ' त देव-निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ' ।

मनुष्य थे, वे देव-भूमि जम्बुद्वीप में देव-तुल्य बन गए । प्रोफेसर जे० एस० नेगी (इस शोध-प्रबध के पूज्य मार्गदर्शक !) तीसरी सम्भावना को अधिक सार्थक मानते हैं[1] और श्रीराम गोयल उनका समर्थन करते है 'अशोक ने अपने धर्मप्रचार की सफलता का कुछ अतिरजित रूप से वर्णन करने के लिए जन मानस मे प्रचलित देवताओ के साथ मनुष्यो के सम्पर्क की इस अवधारणा का ही प्रतीकात्मक रूप से उपयोग किया है । इसका शाब्दिक अर्थ करना सर्वथा अनावश्यक है । यहा अशोक का तात्पर्य मात्र इतना है कि उसने जम्बुद्वीप मे सतयुग की स्थापना कर दी थी ।'[2]

जिस प्रथम लघु शिलालेख में जम्बुद्वीप का उल्लेख हुआ, उसी में 'अन्ता' शब्द का भी प्रयोग हुआ -अर्थात् अन्त-वाले, सीमावर्ती लोग । यह आशा व्यक्त की जाती है कि राज्य के सीमान्त पर रहनेवाले भी सदाचार का पालन करेंगे । गुजर्रा-सस्करण की चौथी पक्ति में यही बात लयात्मक ढग से लिखी गयी है

'खुदाके च उडारे चा	क्षुद्र और उदार (व्यक्ति)
धम चरंतू	धर्माचरण करें,
[यो]ग युजतू	'योग' को प्राप्त हों,
अता पि च जानतू '	और अन्त-वाले भी जानें ।

आगे हमें निर्णय करना होगा कि द्विभाषीय अभिलेख किन लोगों के लिए, किस क्षेत्र में और किस ढग से लिखवाये गये । अभी से हमे ध्यान देना होगा कि सम्राट अशोक अपनी धर्म-विजय में कब, कहा और कैसे अपने पूर्ण अधिकार-क्षेत्र के लोगों को सबोधित करते हैं, अथवा अर्ध-स्वतन्त्र लोगों को - चाहे वे राज्य के अन्तर्गत माने जाए या सीमान्त पर ही रहनेवाले हों । यह भी सम्भव है कि वह राज्य के बाहर, सीमा के पार के लोगों की ओर इगित करते हैं - चाहे वे पडोस-क्षेत्र में अथवा दूर सम्पर्क-क्षेत्र मे निवास करनेवाले क्यों न हो । विभिन्न क्षेत्रों की अभिलेखीय प्रस्तुतियों की अपनी-

---

(1) दे० J.S.NEGI, Some Indological Studies, Allahabad, 1966. " Perhaps what Aśoka had in view was the tradition prevalent from early times of gods and men dwelling in company with each other (sahavāsa) on the earth . . under the benign and virtuous regimes of outstanding rulers " (p 113) " He probably wants to convey that by his keen and active propagation of dharma he had revived what in later periods has been popularly known as Rāma-rājya " (p.114). " Probably the king made the claim in a subbtle, spiritual sense, implying that by his efforts men were made god-like in character " (p 115).

(2) *श्रीराम गोयल*, **प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह**, खण्ड 1, जयपुर, 1982, पृ० 81 ।

अपनी सास्कृतिक पृष्ठभूमि है । एक क्षेत्र की अभिव्यक्ति मे यदि कोई अस्पष्टता हो , तो अन्य क्षेत्र की अभिव्यक्ति या उसकी पृष्ठभूमि अर्थ–स्पष्टीकरण में सहायक हो सकती है । उदाहरणार्थ , प्राचीन इस्राएल के धर्मग्रथ ' तॅनख् ' (बाइबिल) के अरामी अश मे यह कथन मिलता है कि बेबीलोनी ज्ञानियो के मतानुसार ' देवता मनुष्य के साथ नहीं रहते ' (दानिएल 2 11) । परन्तु यूनानी पृष्ठभूमि से महान दार्शनिक अरिस्तोतेलैस् (अरिस्तू) का यह कथन मिलता है कि ' गुण (**अरेतै**) के अत्यधिक अभ्यास से मानवो से देवता बन जाते है " (नीति–शिक्षा 7 2) । [(1)]

अशोकीय अभिलेखों की विषयानुक्रमणिका की सतही जाच से ऐसा प्रतीत होता है कि **अन्ता**– जैसे शब्दो के प्रयोग में एक–रूपता नही है । नीलकठ शास्त्री [(2)] सावधान करते है कि इस शब्द का एक ही अर्थ नहीं है । सदर्भ के अनुसार **अंत** का अर्थ सीमान्त–वासी हो सकता है , लेकिन यह स्पष्ट नही है कि वह सीमान्त–वासी सीमा के इस पार अथवा उस पार का रहनेवाला है ।

राधाकुमुद मुखर्जी सुझाते हैं कि ' **अंत** और **प्रत्यत** के राजनैतिक अर्थ हैं , जब कि **अपरांत** का भौगोलिक अर्थ है ' [(3)] । विद्वान प्राय मानते आ रहे हैं कि सभी लघु शिलालेख अशोक के राजाभिषेक के बाद ग्यारहवे वर्ष (सम्भवत सा० स० पू० 254) में आदेशित हुए और सम्पूर्ण जम्बुद्वीप मे खुदवाये गये – यद्यपि वे विशेषकर दक्षिणी सीमान्त की ओर लगवाये गये है , क्योकि उन लघु शिलालेखों के अधिकाश प्राप्ति–स्थल (17 में से 10 ।) आन्ध्रप्रदेश अथवा करनाटक में स्थित हैं । यदि श्रीराम गोयल का तिथिक्रम स्वीकार्य है , तो प्रथम चार मुख्य शिलालेख बारहवे वर्ष में लिखवाये गये । ' 5वे शिलालेख मे अशोक ने कहा है कि उसने 13वें वर्ष में धर्ममहामात्र नियुक्त किये थे । इससे स्पष्ट है कि 5वें से 14वें शि० ले० को उसके शासन के 13वें वर्ष में या उराके बाद कभी लिखवाया गया होगा । समवत उन्हीं के साथ कलिग के दो पृथक् शि० ले० लिखवाए गये होंगे । ' [(4)]

सम्भव है कि शासनकाल के आरम्भिक वर्षो में कुछ–एक प्रशासकीय परिवर्तन हुए । सन् 1989–

---

(1) = ARISTOTLE , <u>Nicomachean Ethics</u> .

(2) K. A NILAKANTA SASTRI , Ed., <u>Age of the Nandas and Mauryas</u> , Delhi 1988 (1951). p 222 , ftn. .'<u>Amta</u> is a dubious term which may describe a ' borderer ' inside or outside the boundary ,and the interpretation must depend on the context ' .

(3) *राधाकुमुद मुखर्जी* , **तत्रैव** , पृ 110 , पाद–टिप्पणी ।

(4) *श्रीराम गोयल* , **प्रियदर्शी–अशोक** , मेरठ ,1988 पृ 16 ।

1990 में जब सन्नथी में 12वा तथा 14वा मुख्य शिलालेख और दो पृथक् शिलालेख प्राप्त हुए, तब प्राप्ति-स्थल के महत्व के सबध में यह प्रतिक्रिया व्यक्त की गई कि लघु शिलालेखों की विज्ञप्ति के बाद ही अशोक ने, राज्य-सीमा का विस्तार कर अथवा नये क्षेत्र को अधिनद्ध (annexed) कर, इस स्थान मे कुछ नया प्रबध किया होगा ।[1]

धर्म-विजय के कारण जब सारी आशका के प्रतिकूल ' विजित ' राज्य-क्षेत्र की प्रजा नयी सुख-शान्ति का अनुभव कर रही थी, तब स्वाभाविक है कि ' अविजित ' लोग यह प्रश्न पूछने लगे ' हम लोगों के प्रति राजा का क्या मत है ? '। द्वितीय पृथक् कलिग शिलालेख के अनुसार अन्त-वाले सीमावर्ती लोगों में ही ऐसे अविजित मिलते हैं[2] । उन्हें आश्वासन दिया जाता है कि राजा उनकी भी सुख-शान्ति की हित-कामना करते हैं । उन लोगों के धर्माचार का यही प्रतिफल है । तात्पर्य यह है कि राजा की अभिरुचि **' अन्त '** के क्षेत्र में अन्त नही होती । विशालहृदय प्रियदर्शी अशोक की दृष्टि सीमान्त से आगे निकल जाती है । इसका साक्ष्य हमें द्वितीय और त्रयोदश मुख्य शिलालेख मे मिलता है । निस्सन्देह, द्विभाषीय अभिलेखों का अभिलेखन भी उस विशालहृदयता का परिणाम है ।

112 अन्त और समन्त की ओर अभिमुख TURNED TOWARDS BORDERS AND AREAS BEYOND

द्वितीय मुख्य शिलालेख के अनुसार सम्राट अशोक लोक-कल्याण के कार्यों द्वारा अकल्याण के पुराने घावो पर मरहम लगाना चाहते हैं । सर्वहित की कामना न केवल विजित राज्य-क्षेत्र के प्रति व्यक्त की गई है, वरन् **' अन्त '** क्षेत्र की ओर उन्मुख होकर यही क्रियाशील दयाभाव उमड पड़ा । दक्षिणी राज्यो के ' अन्तों ' अथवा ' प्रत्यन्तों ' मे[3] ये नाम दिये गये हैं चोल-राज्य एव पाण्ड्य-राज्य के लोग, सतियपुत्र[4] और केरलपुत्र, तथा ताम्रपर्णी (नदी ?, अथवा श्रीलका ?) तक के लोग ।

---

(1) I K SARMA & J.VARAPRASADA RAO, Early Brahmi Inscriptions from Sannati, New Delhi, 1993, pp. 24-25. " ... these territories were annexed (vijita) by Aśoka after the issue of Minor Rock Edicts ... Thereby, stationing a viceroy and issue of fourteen Edicts and two Special Edicts became a necessity."

(2) दे० जौगड सस्करण की चौथी पंक्ति के अन्त में ' **अंतानं अविजिता** '। (3) गिरनार संस्करण, पंक्ति 2 मे ' **प्रचंतेसु** ' । (4) = सम्भवत ' सत्यपुत्र ', वे दक्षिणी ' आदि मराठे ' हो सकते है अथवा ' वनवासी ' भी, दे० *राधाकुमुद मुखर्जी*, **तत्रैव**, पृ० 28, टिप्पणी 4 ।

वे भी ' राज-विपय ' होने के पात्र हैं ।

इसके बाद अशोक की दया-दृष्टि पश्चिम की ओर अभिमुख हो जाती है । द्वितीय मुख्य शिलालेख में आगे प्रसिद्ध यवन राजा अन्तियोक और उसके ' समन्त ' पडोसी राजाओं का उल्लेख है - जैसे स्पष्ट रूप से शहबाजगढी के खरोष्ठी पाठ में अकित है **अंतियोको नम योन रज ये च अञे तस अंतियोकस समत रजनो** । इसमें कोई सदेह नहीं है कि अशोक का सम्पर्क सीरिया की महा-नगरी अन्ताकिया के समकालीन यूनानी राजा ' दिव्य ' अन्तियोक-द्वितीय से हुआ । उस राजा का मूल यूनानी नाम है ' अन्तिओखोस् थेओस् ' । गिरनार सस्करण मे , तीसरी पक्ति के तीसरे अक्षर से आरम्भ कर , ब्राह्मी लिपि मे ' अतियको ' नाम-रूप मिलता है । लेकिन ' समन्त ' राजा के बदले यहा ' **समीप** ' लिखा है [1] । देखिए , उसी तीसरी पंक्ति की समाप्ति से पूर्व तीसरे अक्षर से लेकर
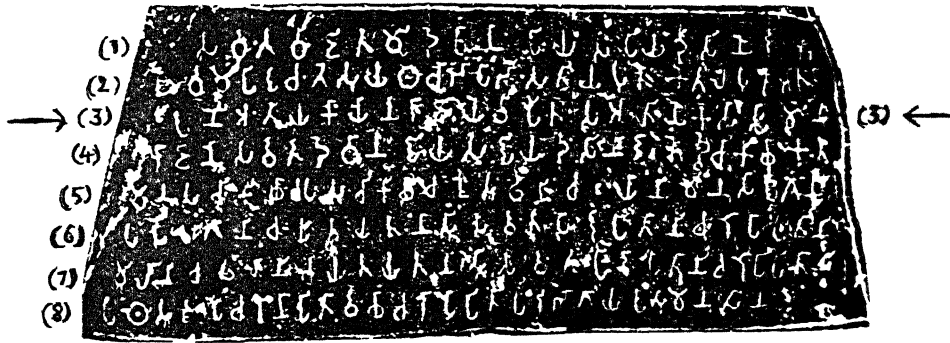
' समीप ' और ' समन्त ' समानार्थी लगते है । वास्तव में , शुद्ध रूप ' सामन्त ' है , जिसके विषय में राजबली पाण्डेय समझाते हैं ' अर्थ यहा ' अधीन ' नहीं , अपितु ' पडोसी ' (समान =उभयनिष्ठ अन्तवाले) है '।[2] पालि शब्दकोश में ' समन्त ' का अन्य अर्थ भी है ' सम्पूर्ण ,सर्वत्र ' [3] । इसलिए , यदि शहबाजगढी का पाठ **समंत** शुद्ध माना जाए तो अशोक की दूरदर्शिता और आगे निकल जाती है । वह न केवल आस-पास के राजाओं को अपने हितोपकारी धर्मकर्म में सम्मिलित करना चाहते हैं , वरन्

---

(1) तीसरी पंक्ति का अन्तिम अक्षर ' प ' अशुद्ध है । क्या पहले ' समन्त '- जैसे शब्द का ' त ' था , जिसे बाद मे सुधारा गया ? नरेशप्रसाद रस्तोगी इस सुझाव को अस्वीकार करते हैं , उनका विचार है कि इसका मूल रूप एक ' न ' था , जिसे लिपिक ने स्वय सुधारने की कोशिश की ' The scribe raised the right horizontal stroke of <u>na</u> upwards and made it cursive at the bottom to give the appearance of the letter <u>pa</u> . But the left stroke of the originally inscribed <u>na</u> could not be corrected and was left as such ' (N.P. RASTOGI , <u>Inscriptions of Asoka</u> , pp 13-14).

(2) *राजबली पाण्डेय* , **अशोक के अभिलेख** , पृ० 23 ।

(3) दे० R.C. CHILDERS, <u>A Dictionary of the Pali Language</u> , New Delhi, 1979(1875) , p. 428, for example : samanta-cakkhu : 'all-seeing '

सर्वत्र सभी राजाओं से यह आशा करते हैं कि वे भी धर्म का पालन कर लोक–कल्याण के शुभ कार्य में जुट जाएगे ।

त्रयोदश मुख्य शिलालेख में अशोक ने कलिग–विजय के दुखद परिणामो पर पुनर्विचार करने के बाद अपनायी गई ' धर्म–विजय ' की नीति उद्घोषित की । यह प्रीति की राजनीति है प्रियदर्शी राजा सर्वप्रथम अपने यहा , अपने स्वराज्य मे ही , प्रजा के हितार्थ प्रशासन सुव्यस्थित करना चाहते थे , लेकिन अन्त–क्षेत्रों में भी , सीमान्त–वासियो के यहा , वह धर्म–राज्य फैलाने चाहते थे । पहले , बिम्बिसार के अग–मगध क्षेत्र में राज्य का विस्तार 300 योजन मात्र था [1] । चक्रवर्ती राजा का आदर्श राज्य–क्षेत्र चतुर अन्तों के मध्य 1000 योजन होना चाहिए था [2] । जब से अशोक ' चडाशोक ' से ' धर्माशोक ' बन गए , तब से केवल धर्म–विजय का विचार करते थे । यह धर्म–विजय उन्हें अनेक प्रकार से कई रूपों में प्राप्त हो रही थी , अपने यहा और चारों अन्तों में भी । हा , कम–से–कम एक अन्त की दिशा मे , अर्थात् पश्चिम की ओर , वह ' छह सौ योजन दूर तक ' पहुचने में सफल हुए । शहबाजगढी से प्राप्त तेरहवें मुख्य शिलालेख के खारोष्ठी पाठ की 9वीं पक्ति में बताया गया है कि छह सौ योजन की दूरी तक धर्म का प्रवेश हुआ ,

यत्र अंतियोको नम योनरज	जहा अन्तियोक नामक यवन राजा है ,
पर च तेन अतियोकेन	और उस अन्तियोक के भी परे
चतुरे 4 रजनि	चतुर अर्थात् 4 राजा हैं
तुरमये नम	(1) तुरमय नामक ,
अंतिकिनि नम	(2) अन्तिकिन नामक ,
मक नम	(3) मक नामक ,
अलिकसुदरो नम	(4) अलिकसुन्दर नामक ।

---

(1) *भरतसिह उपाध्याय* , **बुद्धकालीन भारतीय भूगोल** , पृ० 14 ; दे० JULES BLOCH , Les Inscriptions d'Asoka, Paris , 1950 , p. 130 , ftn : योजन की दूरी अनिश्चित है ; बौद्ध साहित्य में इसे कभी कम (4 किलोमीटर), कभी अधिक (12 किलो) माना गया है ।

(2) K.A. NILAKANTA SASTRI , Age of the Nandas and Mauryas , p.172 , quoting from the Arthaśāstra

यूनानी राजा **अन्तियोक** , अर्थात् ' अन्तिओखोस् '–द्वितीय का परिचय ऊपर , द्वितीय मुख्य शिला–लेख के उल्लेख में , दिया गया है । वह ' सेलेव्कोस् ' का पौत्र था और एशिया में मौर्य साम्राज्य के विस्तृत पडोसी राज्य का शासक । उसका शासन–काल सा० स० पू० 261–246 गिना जाता है । परन्तु यहा , त्रयोदश शिलालेख में , उसके चार समकालीन राजाओं के नामों का भी उल्लेख हुआ उनमें से क्रमश पहला और तीसरा राजा अफ्रीका के हैं, जब कि दूसरा और चौथा राजा यूरोप के ।

(1) **तुरमय** राजा ' प्तोलेमैयोस् '–द्वितीय , उपनाम ' फ़िलदेल्फ़ोस् ' है । वह सा० स० पू० 285 से 247 तक मिस्र का यूनानी शासक था । पश्चिम एशिया के कुछ समुद्रतटीय क्षेत्र पर उसका भी अधिकार था , जिससे वह ऊपर–कथित अन्तिओखोस् का प्रतिद्वन्द्वी बना ।

(2) **अन्तिकिन** का यूनानी समरूप ' अन्तिगेनैस् ' होना चाहिए था (जो सिकन्दर के सिंधु–अभियान में एक सेनाध्यक्ष था) , लेकिन यहा ' अन्तिगोनोस् ' की ओर सकेत है , जिसका जन्म उत्तर–यूनान के ' गोन्नोय् ' नगर में हुआ और जो ' गोनतोस् ' के उपनाम से मकिदुनिया राज्य पर सा० स० पू० 276 से 239 तक दीर्घकालीन शासन करता रहा ।

(3) **मक** राजा ' मगस् ' उपनाम ' कुरैनअिकोस् ' है , जो मिस्र के राजा ' प्तोलेमैयोस् ' का सौतेला भाई था और लगभग सा० स० पू० 300 और 250 के बीच मिस्र के पडोसी राज्य 'कुरैने ' का शासक था ।
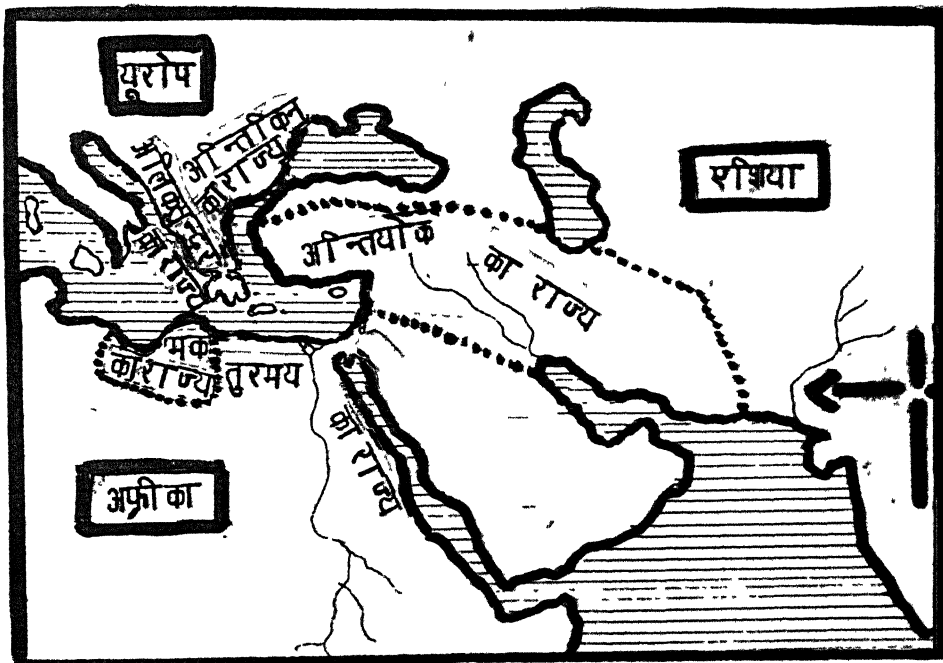
(4) अलिकसुन्दर सम्भवत राजा ' अलेक्सन्द्रोस् ' उपनाम ' ऐपेय्रोतैस् ' था , जो पश्चिम–यूनान के ' ऐपेय्रोस् ' नामक राज्य पर सा० स० पू० 272 से 255 तक शासन कर रहा था । उसके सम–नाम राजा ' अलेक्सन्द्रोस् कोरिन्थिओस् ' की ओर भी सकेत हो सकता है , लेकिन दक्षिण–यूनान के ' कोरिन्थोस् ' नामक नगर–राज्य पर उस अन्य राजा ' अलेक्सन्द्रोस् ' का शासन (अशोक–काल के अभिलेखीय उल्लेख की दृष्टि से) कुछ देर से , 252 सा० स० पू० में , आरम्भ हुआ ।

अन्तियोक और अन्य चारों यूनानी राजाओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिए [(1)] सम्राट अशोक को यूनानी भाषा का माध्यम अपनाना पडा । अत यूनानी अभिलेखों के द्वारा ही वह उनसे विश्वव्यापी धर्म–विजय हेतु सहयोग माग सकते थे । इस प्रकार अपने सुदूर सम्पर्क–क्षेत्र में वह प्रीति–नीति के लिए समर्थकों को प्रेरित कर सकते थे । पश्चिमी सम्पर्क–क्षेत्र अब सत्यधर्म के दूर सचार–प्रचार का मानो अन्तर्राष्ट्रीय , सीमा–रहित 'अन्त ' बन गया । उदाहरणार्थ , **महावंश** 12 1–8 की सूची के अनुसार ' अपरन्त '–क्षेत्र के अपरान्तों के पास ' धर्मरक्षित ' नामक एक यूनानी धर्मदूत भेजा गया , जब कि ' महारक्षित ' नामक स्वदेशी धर्मदूत दूरस्थ यूनान देश की ओर निकल पडा ।

त्रयोदश मुख्य शिलालेख में धर्म–विजय के अनेक प्रकार से विस्तार का वर्णन आगे बढता है । दूर पश्चिम से अशोक एकाएक निकट दक्षिण की ओर मुड जाते हैं । ध्यान दें कि अब से सूची में किसी और शासक का व्यक्तिगत नाम नहीं दिया जा रहा है , और द्वितीय मुख्य शिलालेख में उल्लिखित पाच दक्षिणी प्रत्यन्तों में से यहा ,त्रयोदश मुख्य शिलालेख में , केवल तीन जन–समुदायों का उल्लेख हुआ ' चोल , पाण्ड्य और ताम्रपर्णी–वासी '। [(2)] क्या वे तीनों केवल उदाहरण–स्वरूप हैं ? क्या अभिलेख में कोई विशिष्ट शैलात्मक–प्रतीकात्मक क्रम–सख्या है . पहले पश्चिम के यवनों में 1 पडोसी राजा + 4 ' पर ' के राजा , फिर दक्षिण के 3 जन–समुदाय , अर्थात् कुल मिलाकर 8 की सख्या ? क्या इन्हें एक प्रथम इकाई के रूप में प्रस्तुत करने का कोई प्रयोजन था ? जो भी हो ,

---

(1) उपयोगी मानचित्र देखें AMULYACHANDRA SEN, Aśoka's Edicts, Calcutta, 1956, p.25, Map 2 : " Dominions of the five Western kings named by Aśoka " ।

(2) इसका यह तात्पर्य नहीं कि दक्षिणी क्षेत्र महत्वहीन हो । इससे यह निष्कर्ष निकालना भी ठोस नहीं लगता कि शेष अनुल्लिखित जन–समुदाय , अर्थात् ' सतियपुत्र और केरलपुत्र ' अशोक से सम्मोहित होकर उसके विजित राज्य मे जुड गए थे ।

धर्म–विजय के विभिन्न क्षेत्रों के वर्णन में ' **एवमेव** ' शब्द के बाद ' **हिद** '–राजविषयों में , अर्थात् अशोक के स्वराज्य में , 'अपने यहा ' के अर्ध–स्वतन्त्र लोगों में , फिर आठ ही समूहो का उल्लेख मिलता है । इस द्वितीय अष्टक की इकाई में दो–दो समूहों के चार क्षेत्र दिये गये हैं , जो सम्भवत उत्तर–पश्चिम से हमें दक्षिण–पूर्व की ओर ले जाते है ' यवन और कम्बोज + नामक और नामपती + भोज और पितिनिक + आध्र और पुलिन्द । ' उन प्रतिनिध–स्वरूप अष्टकों के उल्लेख से देवानाप्रिय राजा दिखाते हैं कि वह सर्वत्र ' धर्मानुशास्ति ' का प्रेममय प्रबध कर रहे है । परन्तु वह केवल अपने लुभानेवाले सुन्दर धर्मोपदेशों की कथनी द्वारा प्रजा को अनुशासित रखने का प्रयास नहीं कर रहे हैं , बल्कि सर्वकल्याण की करनी द्वारा स्वधर्म–शासन को लागू करवा रहे हैं ।

113 अपरन्त के लिए द्विभाषीय अभिलेख

BILINGUAL INSCRIPTIONS FOR THE WESTERN BORDER

पचम मुख्य शिलालेख से मालूम हो जाता है कि सर्वकल्याण की अपनी शुभ–चिन्ता में सम्राट अशोक ने धर्म–महामात्रो को नियुक्त करने का विशेष प्रबध किया । सभी लेख–सस्करणों के अपने एकीकृत पाठानुवाद मे नरेशप्रसाद रस्तोगी (1) यह अर्थ लगाते हैं ' {धर्म–महामात्र} सभी धर्मो के लोगों में धर्म के सस्थापन तथा वृद्धि के लिए तथा धर्मप्रिय लोगों के हित और सुख के लिए नियुक्त किये गये है । वे यवनो , कम्बोजो , गधारों , पितिनिकों तथा राष्ट्रिकों एव <u>पश्चिमी तटवर्ती देश के लोगों में</u> , ब्राह्मणों और गृहपतियों में , सैनिकों तथा सेनापतियों में , नि सहायों तथा वृद्धो के हित और सुख के लिए तथा धर्मरत लोगों को बधनो से मुक्त करने के लिए नियुक्त किये गये हैं । ' इस अनुवाद में रेखाकित अश वस्तुत ' <u>पश्चिमी सीमा–प्रान्त के अन्य लोगों में</u> ' होना चाहिए , क्योंकि अधिकाश सस्करणों का एकीकृत मूल पाठ ' **अञे अपरंता** ' ही है। इस प्रकार अशोक के जम्बुद्वीप–राज्य के पश्चिम अथवा पश्चिमोत्तर में उल्लिखित सभी लोग ' **अपरत** ' क्षेत्र में सम्मिलित होते है योन , कम्बोज , गधार , राष्ट्रिक , पितिनिक और अन्य ।

निस्सदेह , यदि जम्बुद्वीप को पाच प्रदेशों में विभाजित किया जाए – अर्थात् मध्य में मध्य देश और

---

(1) NARESH PRASAD RASTOGI , <u>op cit.</u> , p. 63 .

चारों दिशाओ में उत्तरापथ , दक्षिणापथ , पूर्वान्त तथा अपरान्त – , तो यहा चर्चित ' अपरन्त ' पश्चाद्देश ही है । भरतसिह उपाध्याय ने पालि साहित्य की उस दिलचस्प परम्परा पर ध्यान दिलाया कि पश्चिमी महाद्वीप ' अपरगोयान ' के कुछ निवासी जम्बुद्वीप के पश्चिमी क्षेत्र में बसने आये ' जिस प्रदेश को इन अपरगोयान के लोगो ने बसाया , उसी का नाम बाद में उनके नाम पर **अपरन्त** पड गया ।'[1] उस नाम का आरम्भिक तात्पर्य था मुम्बई के आस–पास से लेकर कच्छ की खाडी तक का सम्पूर्ण पश्चिमी समुद्र–तट । गधार और कम्बोज नामक जनपद – यहा तक कि सिधु–सोवीर क्षेत्र भी – उत्तरापथ के अन्तर्गत माने जाते थे । कालिदास की कृतियो मे[2] , और किसी हद तक अर्थशास्त्र में भी[3] , ' अपरान्त ' कोकण के समुद्र–तट का और सीमित अर्थ रखाता है। फिर भी , पचम मुख्य शिलालेख का **अपरंत** अवश्य अधिक विस्तृत क्षेत्र है । वह उत्तर–पश्चिम में हिन्दूकुश पर्वत तक पहुच जाता है , और पश्चिम में अफगानिस्तान एव बलोचिस्तान के प्राय आर–पार बढ जाता है ।[4] इसलिए द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों को अवस्थित करने के लिए हमे यहा उपयुक्त भौगोलिक नाम मिल जाता है ।

अब अशोक के सभी अभिलेखों के प्राप्ति–स्थलों में उन विशिष्ट अपरन्त–वाले द्विभीषीय अभलेखों को निर्धारित करें । अशोकीय अभिलेखों के विभिन्न प्राप्ति–स्थल[5] लगभग 44 गिने जा सकते हैं । 'लगभग' 44 इसलिए बोलें , क्योंकि किसी भी समय नवीन प्राप्ति–स्थल की सम्प्राप्ति के समाचार की सम्पुष्टि हो सकती है ! 'लगभग' जोडने का दूसरा कारण है कि , एक–ही प्राप्ति–स्थल को विभाजित कर , दो प्राप्ति–स्थल भी गिने जा सकते है , उदाहरणार्थ लघमान में , एक–ही नदी–तट पर स्थित दो अलग स्थानों में , प्राय एक–समान विषय का अभिलेख प्राप्त हुआ । अत लघमान को एक ही प्राप्ति–स्थल गिनते हैं । इस अनिश्चितता के बावजूद प्रस्तुत अस्थायी गिनती का यह परिणाम है

---

(1) *भरतसिह उपाध्याय* , **बुद्धकालीन भारतीय भूगोल** , पृ० 127 ।

(2) दे० *कैलाशनाथ द्विवेदी* , **कालीदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान** ,कानपुर ,1969,पृ०160 ।

(3) दे० K.A.NILAKANTA SASTRI,op.cit. ,p.261 : reference to aparānta in Kauṭilya's Arthaśāstra,explained as " Konkan on the western coast" .

(4) दे० G.FUSSMAN, " Pouvoir central et regions dans l'Inde ancienne : le probleme de l'empire maurya" , Annales , Economies-Sociétés-Civilisations ,4,1982,pp.628 & 637 ;J.DE CASPARIS, " The life and teaching of Aśoka" ,in E YARSHATER, Encyclopaedia Iranica ,vol.2,fasc.7,London 1987,p.779 .

(5) दे० *राजबली पाण्डेय* , **अशोक के अभिलेख** , फलक न० 1 ' ' अशोक के अभिलेखों के प्राप्ति–स्थान ' , N.P.RASTOGI ,Inscriptions of Asoka , Plate Nr 1 : " Map showing findspots of Aśokan Inscriptions" .

एकभाषीय / प्राकृत अभिलेख = ±176...
खरोष्ठी लिपि में एकभाषीय /प्राकृत अभिलेख:28...
मुख्य शिलालेख--------- 28
लघु शिलालेख (केवल अन्तिम शब्द "लिपिकरेण":तीन संस्करणों में)
ब्राह्मी लिपि में एकभाषीय /प्राकृत अभिलेख:148
मुख्य शिलालेख--------68
लघु शिलालेख---------24
पृथक् कलिंग शिलालेख----- 6
एकल शिलाफलक लेख------ 1
मुख्य स्तम्भ-लेख---------38
लघु स्तम्भ-लेख-----------7
गुहा-लेख-------------4
शहबाजगढ़ी
मानसेहरा
लघमान
पुल-इ-दरुन्त
तक्षशिला
शार-इ-कुन
कन्दहार
तख्त-ई-बाहि
नई-दिल्ली-बहापुर
देहली-टोपरा
कालसी
देहली-मेरठ
प्रयाग-कोसम
निग्लीवा
रुम्मिनदेई
रामपुरवा
लौरिया-नंदनगढ़
लौरिया-अरराज
सारनाथ
अहरौरा
बराबर
बैराट
= भाब्रू
गुजर्रा
बुधनी-पानगुरारिया
गिरनार
सांची
सहसराम
रूपनाथ
धौली
सोपारा
जौगड़
मास्की
सन्नथी
नित्तूर
अमरावती
गवीमठ
राजुल-मण्डगिरि
पालकीगुण्डु
एर्रगुडी
ब्रह्मगिरि
उडेगोलम
सिद्धपुर
जटिंग-रामेश्वर
द्विभाषीय/यूनानी-अरामी अभिलेख = 1
द्विलिपि में द्विभाषीय/यूनानी-अरामी अभिलेख :
यूनानी भाग-------1
अरामी भाग-------1
एकलिपि में द्विभाषीय/यूनानी-अरामी अभिलेख :
यूनानी लिपि में----2
अरामी लिपि में----1
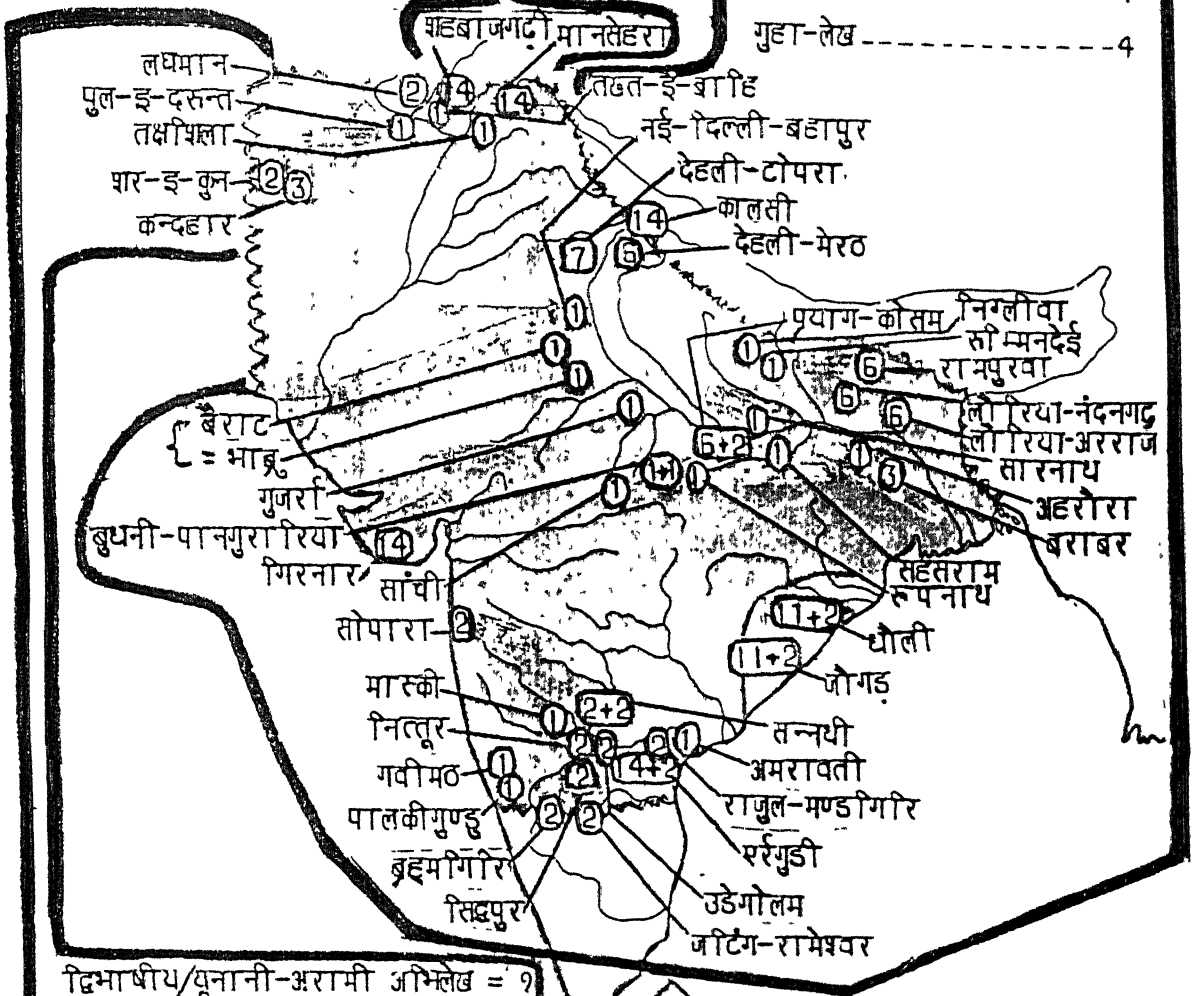
(1) एकभाषीय / प्राकृत अभिलेखों के प्राप्ति–स्थलों की सख्या 39

- उन में से 148 ब्राह्मी–लिपीय अभिलेखों के 37 प्राप्ति–स्थल है
- और 28 खरोष्ठी–लिपीय अभिलेखों के 2 प्राप्ति–स्थल ।

(2) द्विभाषीय / यूनानी–अरामी अभिलेखों के प्राप्ति–स्थलों की सख्या 5

- उन में से 1 प्राप्ति–स्थल (शर–इ–कुन) पर द्विलिपीय अभिलेख–द्वय प्राप्त हुआ , अर्थात् एक–साथ यूनानी लिपि और अरामी लिपि का अभिलेख ।
- अन्य 4 स्थानों से एकलिपीय द्विभाषीय अभिलेख प्राप्त हुए , अर्थात्
  - 1 स्थान (कन्दहार) से अलग–अलग रूप मे यूनानी लिपि के दो अभिलेख–अश और अरामी लिपि का एक अभिलेख ,
  - तथा 3 स्थानों से अरामी लिपि के अन्य चार अभिलेख (तक्षशिला से एक ,पुल–इ–दरुन्त से एक , लघमान से दो) ।

अब स्पष्ट है कि ब्राह्मी–लिपीय अभिलेखों के प्राप्ति–स्थल सम्पूर्ण जम्बुद्वीप में फैले हुए हैं . 12 गोदावरी नदी के नीचे दक्षिण में हैं और 24 उत्तर में तथा 1 प्राप्ति–स्थल (तख्त–इ–बाहि[1]) ' अपरन्त ' क्षेत्र में ।

यदि अशोक–कालीन ' अपरन्त ' में न केवल पश्चिमोत्तरी क्षेत्र वरन् पश्चिमी तटीय क्षेत्र भी मिलाया जाए (जो सीमित अर्थ में ' अपरान्त प्रान्त ' ही माना गया है) , तो ब्राह्मी लिपि के अभिलेखों के 22 उत्तरी प्राप्ति–स्थल (अर्थात् 24 से 2 कम) गिने जाए और अपरन्त–वाले प्राप्ति–स्थल 3 (तख्त–इ–बाहि , गिरनार और सोपारा) । निश्चित है कि खरोष्ठी लिपि के दोनो

---

(1) इटली के विद्वान शिअल्पी ने इसे प्रमाण माना कि पश्चिमोत्तरी क्षेत्र में भी ब्राह्मी लिपि का प्रयोग हुआ करता था , अथवा होने लगा । उन्होने तख्त–इ–बाहि अभिलेख के स्वरूप और उसकी अभिप्राप्ति की यह सूचना दी :
" ..fragment of an edict of Aśoka recently reported by M.Taddei, by whom it was also deciphered and studied ... The preserved portion of this fragment, inscribed on dark schist, coincides exactly with the Pillar Edict VI : it was purchased by its present owner at Peshawar and, according to the summary indications provided by the seller,had been found in Buner or in the area of Takht-i Bahi " (F.SCIALPI, " The ethics of Asoka and the religious inspiration of the Achaemenids " , East and West, 34, Sept 1984,p.62 ftn) The article by M.Taddei in Italian (" Una nuova iscrizione di Asoka nel Nordovest ") was announced for publication in a collection of studies in memory of Prof. G.Tucci : Orientalia Josephi Tucci Memoriae Dicata (IsMEO) .

प्राप्ति–स्थल (शहबाज़गढी और मानसेहरा [1]) उसी पश्चिमोत्तरी क्षेत्र में पाये जाते हैं । अब तक उपलब्ध सभी द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख भी भारतीय उपमहाद्वीप जम्बुद्वीप के ' अपरन्त ' में प्राप्त हुए । एक स्थान वर्तमान पाकिस्तान में है (अर्थात् तक्षशिला) और शेष स्थान वर्तमान अफगानिस्तान में (अर्थात् लघमान , पुल–इ–दरुन्त , शर –इ–कुन और कन्दहार) ।
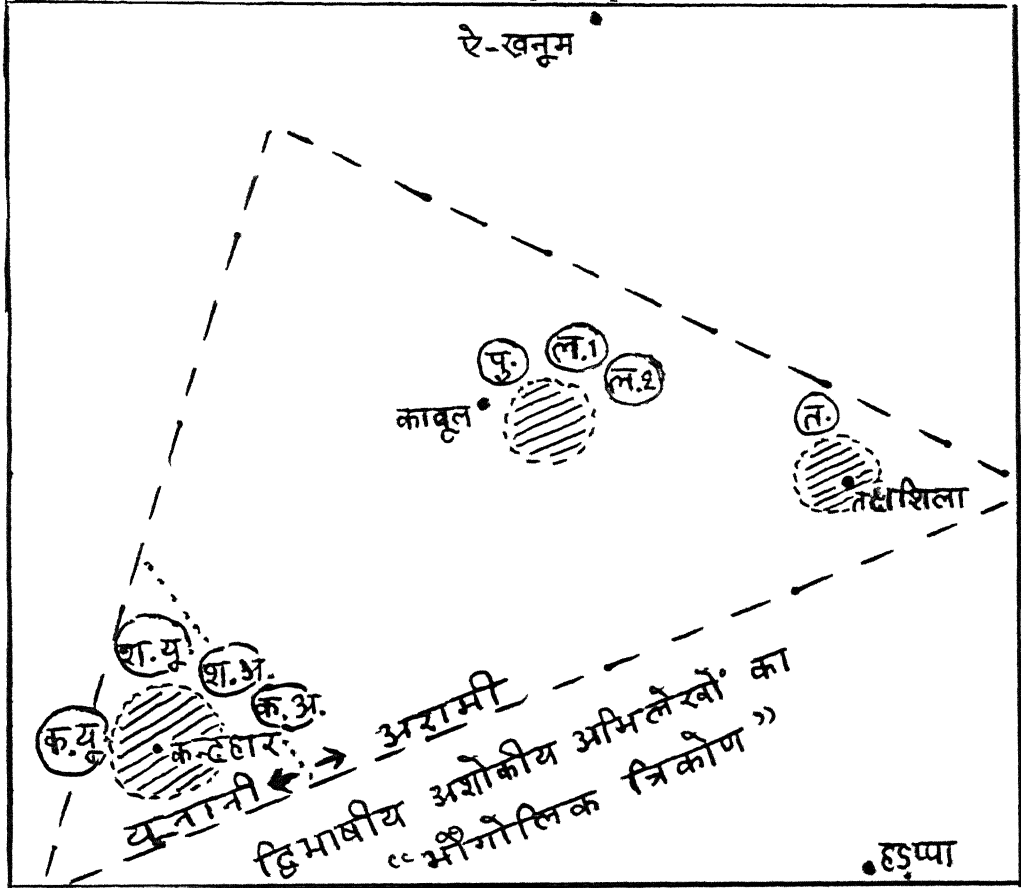
द्विभाषीय अभिलेखो की भौगोलिक संस्थिति उनके पाठ–निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण हो सकती है । यदि मूल अभिलेखीय प्रारूप का प्रश्न उठे , तो हमें सर्वप्रथम ' अपरन्त ' क्षेत्र में ही उसका समाधान ढूढ ना होगा , उदाहरणार्थ तक्षशिला के अरामी पाठ के अर्थ–निर्णय के लिए निकटतम स्थल शहबाजगढी के अभिलेखीय संस्करण से सहायता ली जा सकती है । साथ–ही–साथ द्विभाषीय अभिलेखो का

---

(1) दिनेशचन्द्र सरकार ने इस पर ध्यान दिलाया कि सोपारा , गिरनार तथा शहबाजगढी एव मानसेहरा से प्राप्त अभिलेखों को विशेष अभिलेखीय समानताओं के कारण एक समूह में रख सकते है " There are some peculiarities of the orthography of the present text of the edict { Rock Edict IX at Sopāra }, which are not noticed in any other versions . In retaining ra of Sanskrit without changing it to la, our text shows affinity with the Girnār, Mānsehra, and Shābāzgarhi versions as against the Dhauli, Erragudi, Jaugada and Kālsī texts But the present text exhibits the interesting feature of changing la of Sanskrit to ra not generally noticed in any other version of the edict. Indeed, this characteristic is found only in a few cases in the Girnār , Mānsehra and Shāhbāzgarhi versions of the fourteen Rock Edicts " (D.C. SIRCAR , Aśokan Studies , p.43).

संप्राप्ति—क्षेत्र एक ऐतिहासिक घटना—क्षेत्र है , जिससे आर्थिक—सामाजिक—सास्कृतिक परिस्थितियों का विशिष्ट सदर्भ निर्मित होता है। द्विभाषीय अभिलेखों के व्याख्यात्मक विश्लेषण में उन पारिस्थितिक प्रभावो पर भी ध्यान देना होगा । भाषाई सदर्भ का अपना विशेष महत्व है । हम यह प्रश्न नही टाल सकते है कि इस क्षेत्र में सम्राट अशोक अमुक—अमुक भाषा में किन—किन लोगों को सबोधित करना चाहते है [1] । अत परिचायक सदर्भीकरण प्रस्तुत करने के इस प्रयास में (जो शोध—प्रबध का प्रारम्भिक पहला भाग ही है) हमें और बहुत—से प्रश्नो के विषय में अपनी ज्ञान—पिपासा बुझानी होगी ।अब तक केवल व्यापक रूप से सप्राप्ति—क्षेत्र पर विचार किया गया है । हमने यह पाया कि द्विभाषीय अभिलेख , विस्तृत सिधु—घाटी के पश्चिमोत्तरी कोने तक्षशिला से आरम्भ कर , खैबर दर्रे के द्वार से होकर पर्वत—मालाओ के मध्य काबूल तक चलनेवाले मार्ग पर और दक्षिण—पश्चिम की ओर सरकनेवाले पथ पर आगे बढते हुए कन्दहार तक मिलते हैं ।

---
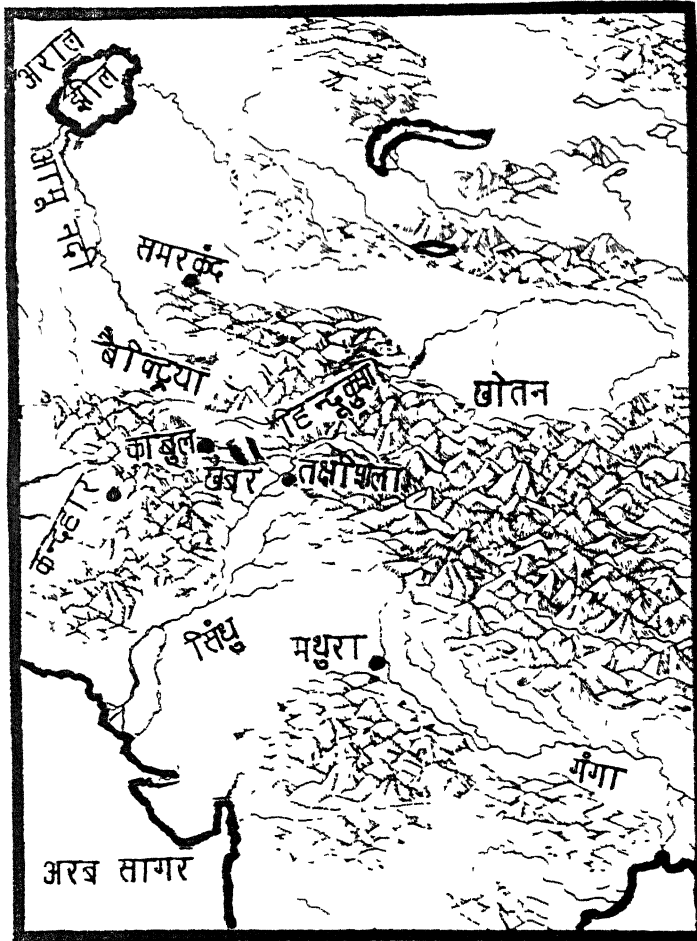
(1) शिअल्पी इस भाषा—नीति अथवा लिपि—नीति को समन्वयात्मक उदारता का संकेत मानते हैं " The use of brāhmī and kharosthī {we should add : 'Greek and Aramaic'} in this region would seem to confirm ,among other things ,the flexible and adroit policy of equilibrium adopted by Aśoka towards all the religious communities and all the ethnic components of the population in any one province " (ibid.,p.63,ftn).

पश्चिमोत्तरी सम्पर्क–मार्ग के पाच स्थलो पर , जहा कितने ही अहितकर आक्रमणो के कारण[1] ' भेरी–घोष ' सुनाई दिया , सम्राट अशोक ने अपने अभिलेखों के ' धर्म–घोष ' के अरामी–यूनानी अनुवाद द्वारा हितकर सवाद और प्रीति–वाद का माध्यम चुना । अब उन पाच प्राप्ति–स्थलों पर प्राप्ति–काल के क्रम से अभिलेखों का आवश्यकतानुसार सविस्तार परिचय दिया जाए ।

12 प्राप्ति–काल के क्रम से विवरण

DESCRIPTION ACCORDING TO TIME OF DISCOVERY

यहा द्विभाषीय अभिलेखों का परिचायक विवरण उनके अभिलेखन के सम्भावित तिथि–क्रम से नहीं , वरन् वर्तमान युग में उनके प्राप्ति–काल के क्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है । केवल वर्तमान युग में ही प्राचीन अभिलेखों के उद्वाचन (deciphering) में अभिरुचि बढने लगी । उदाहरणार्थ , लगभग सन् 1750 में देहली–मेरठ स्तम्भ–लेख के सबध में पहली बार गभीर प्रश्न पूछा गया कि वास्तव में इस अजीबोगरीब लिपि में क्या सदेश छिपा हुआ है ? तब से सतर्क आलोचकों को इस सहज उत्तर से सतोष नही रहा कि ' यह विकृत यूनानी लिपि में सिकन्दर महान का कोई विजय–लेख है '। उन दिनो मालूम हो गया था कि हिन्द–यवन राज्यकाल के सिक्कों में यूनानी के साथ किसी अज्ञात लिपि (खरोष्ठी अथवा कभी ब्राह्मी) का प्रयोग हुआ । अन्तत भारतीय लिपि का भेद पाया गया । सन् 1834 और 1837 के बीच जेम्स् प्रिन्सेप्[2] अशोकीय अभिलेखों की ब्राह्मी लिपि को पढने में सफल हुए । उसी समय ,सन् 1836 में , शहबाज़गढी का वह अनोखा शिलालेख देखा गया , जो लगभग 25 मीटर की ऊँचाई पर खरोष्ठी अक्षरो में अकित था । उसके श्रृखलाबद्ध चौदह अभिलेखों की प्रतिलिपि तैयार करना एक साहसिक कार्य था । लेकिन अशोक के द्विभाषीय अभिलेखों की खोज इतनी रोमांचकारी नहीं थी । उसकी कहानी केवल सन् 1914 से आरम्भ होती है ।

---

(1) दे० C.DAVIES , An Historical Atlas of the Indian Peninsula .1984. p.2. " The history of invasions from Central Asia proves that neither the mountain ranges of the north-west nor the Indus River presented any real barrier to an enterprising general . Nor did they form a good political frontier and serve as a zone of separation" .

(2) James Prinsep

निम्न सूची में द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का क्रम एव अग्रेजी नामकरण ***प्रोफेसर व्रतइन्द्र नाथ मुखर्जी*** का है । सभी द्विभाषीय अभिलेखों का यह प्रस्तुतीकरण उन्हीं की देन है [1]

1	तक्षशिला का सन् 1914 मे प्राप्त अरामी स्तम्भ–लेख Taxila Pillar Inscription
2	पुल–इ–दरुन्त का 1932 मे प्राप्त (अथवा ज्ञात हुआ) अरामी शिलाफलक–लेख Pul-i-Darunta Stone Tablet Inscription
3	शर–इ–कुन का 1957 मे प्राप्त यूनानी–अरामी शिला–लेख Shar-i-Kuna Bilingual Greek-Aramaic Rock Edict
4	कन्दहार का 1963 मे प्राप्त यूनानी शिलाखण्ड–लेख Kandahar Greek Stone Block Inscription
5	कन्दहार का 1964 मे प्राप्त (अथवा ज्ञात हुआ) अरामी शिलाखण्ड–लेख Kandahar Aramaic Stone Block Inscription
6	लघमान का 1969 मे प्राप्त प्रथम अरामी शिला–लेख Laghman Aramaic Rock Edict I
7	लघमान का 1973 मे प्राप्त द्वितीय अरामी शिला–लेख Laghman Aramaic Rock Edict II

शोधकर्ता को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ कि वह स्वय भ्रमण कर प्राप्ति–स्थल पर अथवा सग्रहालय में मूल अभिलेखों का प्रत्यक्ष अवलोकन करने जाए । पुस्तकों एव पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री के आधार पर उसे अपना समाकालित सर्वेक्षण प्रस्तुत करना पड़ा , जो पूर्णत सतोषजनक नहीं है । विद्वानों का आभार मानते हुए भी वह अपना ऋण–भार हलका करने में असमर्थ है ।

121 तक्षशिला (अरामी) त० TAXILA (ARAMAIC)

– अरामी लिपि मे उत्कीर्ण एक भग्न स्तम्भलेख –

आधुनिक ' तक्सिला ' रेल्वे जक्शन के पास , रावलपिंडी से 16 किलोमीटर उत्तर–पश्चिम की ओर , प्राचीन तक्षशिला नगर के खण्डहर मिलते हैं । वे ' शाह की ढेरी ' के नाम से , उच्चस्थान मरगला ' की पश्चिमी ढाल पर , बिखरे पड़े हैं (जब कि पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद

---

(2)B.N. MUKHERJEE , Studies in the Aramaic Edicts of Asoka , Calcutta , 1984, pp. 23-43
A Descriptive Catalogue of Aramaic and Greek Edicts of Priyadarśī (Aśoka)" .

उसकी पूर्वी ढाल पर फैली हुई है) । तक्षशिला का उत्खन्न सन् 1913 में आरम्भ हुआ । प्रथम वर्ष में ही सफेद सगमरमर का खण्डित अष्टभुजाकार स्तम्भ प्राप्त हुआ, जिसपर अरामी लिपि में बारह पक्तियो का भग्न लेख अकित है । स्तम्भ का रग (सफेद) ,सामग्री (सगमरमर) और आकार (अष्टभुज) उसका असाधारण महत्व दर्शाता है ।

सर् जॉन् मार्शल् ने तत्सबधी खुदाई का विस्तृत वर्णन किया । उसके प्रथम सस्करण (1921) में वह कुछ अनिश्चय के साथ अभिलेख के विषय में सुझाव देते हैं कि ' ऐसा दीखता है मानो कोई स्तम्भ था वह दीवाल में दो कमरों के मध्य में पाया गया, जो लगभग एज़िस् के शासनकाल में निर्मित हुए '[1] (शक राजा ' अयस / यू० अज़ेस् ' का शासनकाल सा० स० पू० 50–30 माना जाए[2]) । लेकिन अगले सस्करण (1951) मे सर् मार्शल् अपना मत दृढता के साथ व्यक्त करते हैं ' यह एक स्मारक स्तम्भ था वे दो कमरे सम्भवत दूकान थे निश्चित रूप से वह स्तम्भ ईसवी सन् के आरम्भ से खण्डित दशा में था '[3] ।

सामान्यत तक्षशिला के खण्डहरो को तीन पुरातत्व तलों में विभाजित करते हैं 1/ बीर (पीर) टीला (सा० स० पू० द्वितीय सदी तक), 2/ सिरकप (प्रथम सदी सा० स० तक) और 3/ सिरसुख (लगभग 450 सा० स० तक)। अरामी में अभिलिखित खण्डित स्तभ प्राचीन सिरकप टीले में पाया गया । सम्राट अशोक के समय वह स्तम्भ शायद प्राचीनतम नगरीय क्षेत्र से बाहर था । उत्खनन के मानचित्र में वह ' ऍफ़्.ब्लॉक् ' के उत्तर–पश्चिमी कोने पर स्थित भवन के खण्डहर में मिलता है, जहा उसे दो कमरों के बीच की दीवाल में जोड़ दिया गया था । लगता है कि भवन–निर्माण के लिए ही स्तम्भ का पुन प्रयोग किया गया । अत. वह अपने आरम्भिक स्थल पर नहीं रहा होगा । अब यह भी मालूम नहीं हो सकता है कि अष्टभुजाकार स्तम्भ के जिस भुज–पट्ट पर लेख अकित है, वह भुज–पट्ट पहले किस दिशा की ओर उन्मुख था । अनुमानत धम्म–लिपि का सदेश चाहे पूर्व अथवा पश्चिम की ओर ही अभिमुख होता था ।

---

(1)दे० SIR JOHN MARSHALL . A Guide to Taxila . Calcutta . 1921 . pp. 77-78 रेखांकित वाक्यांश " ...an Aramaic inscription carved on what appears to have been an octagonal pillar of white marble. This inscription was found built into the wall between two chambers...approximately from the reign of Azes I " .

(2) दे० J.E. VAN LOHUIZEN-DE LEEUW . The ' Scythian ' Period .New Delhi . 1955 .

(3) SIR JOHN MARSHALL . Taxila . vol. I. Cambridge . 1951 . pp. 164 - 165 : " part of an octagonal memorial pillar of white marble with an Aramaic inscription engraved on it. It was found built into the east-west party wall between the two chambers (probably shops) at the north-west corner of the building , and must therefore have been in its present worn and broken condition at the beginning of the Christian era " .

वास्तव मे , ऊर्ध्वदिशा एव अधोदिशा को मिलाकर अस्टभुज–स्तम्भ की दस दिशाए थीं । स्तम्भ का यह रूप 'धम्म' की सर्वतोन्मुखा दिग्विजय का प्रतीक है । फिर , वर्तमान खण्डित दशा में स्तम्भ का ऊपरी भाग टूटा हुआ है और लेख की प्रथम पक्ति कटी–फटी प्रतीत होती है । अत अनुमान लगाया जा सकता है कि ऊपर की ओर कुछ और पक्तिया (चाहे अरामी में अथवा यूनानी में क्यों नहीं !) अकित थी । सच पूछा जाए , तो स्तम्भ का अवशिष्ट भाग आजकल कराची के सग्रहालय में सुरक्षित है । तक्षशिला में उसके प्राप्ति–स्थल पर केवल एक प्रतिरूप रखा हुआ है ।
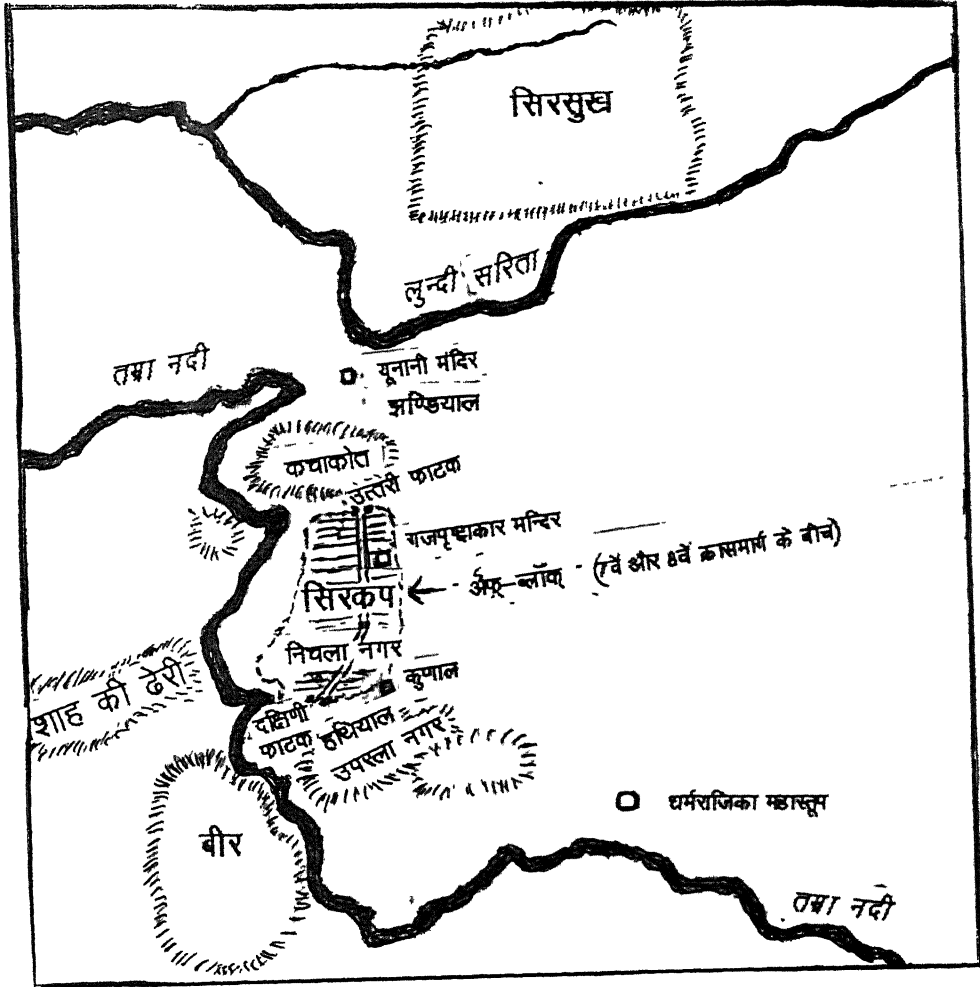
यदि स्तम्भ पहले कभी अपने वर्तमान प्राप्ति–स्थल के आसपास खडा था , तो प्रश्न उठता है क्या वह किसी धर्म–स्थल से जुडा हुआ था अथवा किसी धार्मिक उद्देश्य के लिए वहां खडा कर दिया गया ? प्रो० अहमद दानी के अध्ययन से कुछ और तथ्य स्पष्ट हो गये । अभी भी तथा–कथित ' द्वि–सिर गरुड के पूजा–स्थल ' [1] का खण्डहर वहीं विद्यमान है । प्रो० दानी के अनुसार यह एक

---

(1) 'Shrine of the double-headed eagle' (AHMAD HASAN DANI , The Historic City of Taxila , Paris, 1986, p. 103).

गृह–स्तूप ही था । उसके सामने वह मुख्य मार्ग गुजरता है ,जो सिरकप के उत्तरी फाटक से सीधे दक्षिण की ओर जाता है । गृह–स्तूप मुख्य मार्ग के दाए पर ,सातवें क्रासमार्ग के नीचे स्थित है । उसके आगन के दक्षिण में तीस छोटे कक्ष हैं ,जो सम्भवत भिक्षु–निवास थे। स्तूप का केवल आधार–रूपी चबूतरा शेष है । चबूतरे पर चढने की सीढी के दोनों ओर तीन–तीन देवलिया (niches) हैं । दाई ओर की दूसरी देवली के ऊपर 'द्वि–सिर गरुड' की उद्भूत आकृति दिखाई देती है (जिस के कारण स्तूप का नाम पडा)। आगन के उत्तर–पश्चिमी कोने पर वे दो कमरे हैं , जिनकी बीचवाली दीवाल में अष्टभुज–स्तम्भ लगाया गया था । उसी प्रकार आगन के दक्षिण–पश्चिमी कोने पर और दो कमरे हैं । उन चार कमरों को धर्मशाला अथवा स्तूप की देखरेख करनेवालों के निवास माना जाए ।[1]
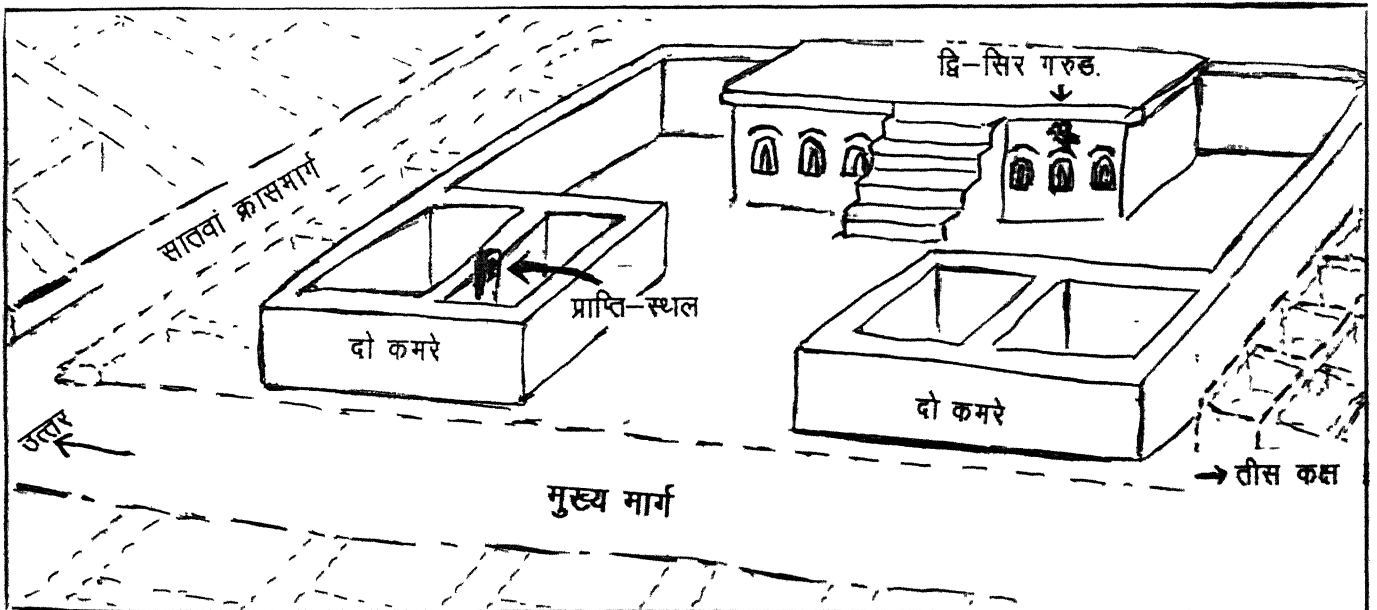
'द्वि–सिर गरुड' के गृह–स्तूप से थोडा आगे ,, सातवें क्रासमार्ग के पार , मुख्य मार्ग के बाए पर , एक अन्य धर्म–स्थल का आधार पडा है । वह बडी मजबूति से बना हुआ पादाग–खण्ड (plinth) है । प्रो० दानी का विचार है कि यहा एक सूर्य–मन्दिर था । क्या पहले यहा इरानियों का अग्नि–मन्दिर था ? अथवा प्रो० सी० डी० चटर्जी के सुझाव के अनुसार अरामी भाषाभाषियों (जिन्हें वह इस्राएली मानते हैं !) का कोई सभागृह (synagogue)[2] ? इस सुझाव को प्रमाणित करना दुरूह है । जो भी हो , सिरकप–क्षेत्र

---

(1) " The presence of this inscription here argues against the view that the rooms were shops. They may be guard rooms " , ibid ., p. 104 . परन्तु यदि अभिलेख पूर्व अथवा पश्चिम की ओर अभिमुख था , तो लेख दीवाल मे छिपा रहता ! फिर , एक–दो सदियो के बाद जब दीवाल का निर्माण हुआ ,क्या अरामी लिपि का कोई ज्ञाता शेष रह गया ? तब ऐसे स्थल पर अरामी अभिलेख प्रदर्शित करने का क्या तात्पर्य था ?

(2) दे० C D CHATTERJEE," The Aramaic language and its problems in the early history of Iran and Afghanistan" ,in Acharya-Vandana,Calcutta,1982,pp.205-226.

के बाहर भी बहुत-से धर्म-स्थल थे, उदाहरणार्थ, दक्षिण-पूर्व में एक विशाल ' धर्मराजिका स्तूप ' का निर्माण हुआ, जो बुद्ध-देव का असली धातु-गर्भ स्तूप (relic depository) माना जाता है। उत्तर-पश्चिम में यूनानी धर्म के एक मन्दिर का निर्माण हुआ। इस प्रकार तम्रा नदी के तट पर तक्षशिला नगर न केवल व्यापार-केन्द्र, शिक्षा-केन्द्र, वरन् सर्वधर्मपंथीय तीर्थ-केन्द्र के रूप में भी विकसित हुआ। यद्यपि सिरकप-टीले का अधिकांश निर्माण-कार्य अष्टभुज-स्तम्भ के अकन के पश्चात् सम्पन्न हुआ, फिर भी प्राप्ति-स्थल का अभिज्ञान उस अभिलेख को समोचित धार्मिक सदर्भ में समझने के लिए सहायक होता है। हम कह सकते हैं कि अरामी अभिलेख धारण करनेवाला स्तम्भ सर्वधर्मपथ-क्षेत्र के मध्य ही प्रकाश-स्तम्भ के सदृश उद्दीप्त हुआ।

यह अति प्राचीन नगरी है। प्रो० दानी तक्षशिला के आरम्भिक नगरवासियो के सम्बन्ध मे ए० कनिङम् के निष्कर्ष का समर्थन करते हैं कि तक्षशिला नाम की व्युत्पत्ति ' टक्क ' शब्द से हुई और कि वे लोग पजाब की टाक नामक जनजाति के ही पूर्वज है[1]। गाधार प्रदेश की इस वैभवशालिनी नगरी के स्थान-माहात्म्य में कहा गया है कि तक्षशिला वह रम्य स्थान है, जो तक्ष के दीक्षा-अभिषेक के लिए विख्यात है (वायु-पुराण 88 190)। श्री महाभारत के अनुसार कुमार जनमेजय इस नाग-नगरी तक्षशिला पर जय प्राप्त करने में सफल हुआ (आदिपर्व 3 20 172), लेकिन अपने पिता के सर्प-दंशन के प्रतिशोध में वह सर्प-यज्ञ द्वारा नाग-राज तक्षक को भस्म करने में सफल नहीं हुआ। श्री रामायण के अनुसार भरत ने अपने दोनों पुत्रों के लिए गाधार देश में दो अति समृद्ध एव सुन्दर नगर बसाये तक्ष के लिए तक्षशिला और पुष्कल के लिए पुष्कलावती (उत्तरकाण्ड 101 10-15)[2]। इस प्रकार तक्ष-शिला का प्रथम अर्थ है वह टीला जिसपर ' नाग राजकुमार का नगर ' बसा हुआ है। जिस उच्चस्थान पर तक्षशिला बसा हुआ है, उसके नाम ' मरगला ' का फारसी रूपान्तर ' मार-इ-कला ' हो सकता है, जिसका वही अर्थ है ' नागराज का पहाड़ी किला '। गाधार-वासी पाणिनि ने अपने एक सूत्र (अष्टाध्यायी 4 3 93) में तक्षशिला का शुद्ध सस्कृत उल्लेख तो किया, लेकिन अशोकीय अभिलेखों में प्राकृत रूप **तखसिला** मिलता है (उद० प्रथम पृथक् कलिंग शिलालेख, धौली पं० 25) और बेसनगर/विदिशा के हेलियोदोरस स्तम्भ(पं० 3)

---

(1) A. Cunningham का उल्लेख दे० A. H. DANI, op. cit., p. 3.

(2) दे० *कैलाशनाथ द्विवेदी*, **कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान**, पृ० 199-201

पर **तक्खसिला** (तख्खासिला ?) अंकित है। तक्षशिला के अरामी अभिलेख मे भी इस नगर का नाम पढने का प्रयास किया गया । अैफ्० सी० अन्द्रेअस् ने मूल अरामी पाठ (त० 3) के व्यंजन न्ग्र्व्त्अ् को स्वर–सहित **नग्गारूथा** पढा[1] । अरामी सज्ञा ' नग्गार् ' का अर्थ है बढई , और ' नग्गारू ' का अर्थ बढईगिरि (carpentry) । सयोग की बात है कि सस्कृत धातु ' तक्ष् ' (अर्थात् चीरना , काटना) के आधार पर तक्षशिला–नगर को ' तक्षक (बढई) की शिला–पुरी ' कहा जा सकता है। वास्तव में , कुछ विद्वानो ने असावधानी से तक्ष–शिला के स्थान पर ' तक्ष–शील ' ही पढा[2] । इस अर्थ–निर्धारण में अनर्थ की दो और अशुद्धिया है न तो नगर का यही मूल अर्थ है , न अरामी पाठ का , क्योंकि सम्भवत अरामी में ' नग्गारू–था ' (जो ' नग्गारू ' के साथ अवधारक पर–उपपद '–था ' लगाने से बनता है) के स्थान पर **नाघ्रूथा** पढना चाहिए , जिसका अर्थ है आदर ,सम्मान । अैफ़्० सी० अन्द्रेअस् के भ्रामक अर्थ–निर्धारण से प्रभावित होकर सर् मार्शल् ने तक्षशिला अभिलेख–स्तम्भ को , अशोक के राजाभिषेक के पूर्व–काल में ही , स्थानीय नगराध्यक्ष द्वारा स्थापित ' स्मारक–स्तम्भ ' समझ लिया ।

तक्षशिला के नाम–सबधी कुछ अन्य ठोस सुझाव इस प्रकार है बौद्ध परम्परा के अनुसार बोधिसत्व ने यहा चन्द्रप्रभा के रूप में एक भिक्षुक के लिए अपना सिर काटकर दान दिया (**दिव्यावदान** ,22 और चीनी यात्री फाह्यान का विवरण) – अत तक्षशिला को ' सिर के तक्षण ' का पुण्य–स्थल माना गया। सिरकप टीले का यही नाम–बोध हो सकता है , अर्थात् सिर और ' कप ' (= काटना , सस्कृत धातु क्लृप् से) । प्रो० सी० डी० चटर्जी **महावस्तु** का उल्लेख करते हुए यह अर्थ देते है ' तष्ट शिला ' (chiselled rock)[3] । तक्षशिला के अनेकों नामो की ये विभिन्न धर्मपरम्पराए इसकी साक्षी देती हैं कि उसके निवासी बहुजातीय , बहुभाषीय , बहुधर्मीय विश्व–वासी थे[4] ।

तक्षशिला प्राचीन भारत का प्रवेश–द्वार माना जा सकता है ,वह पश्चिम से आनेवाले तथा दूर पूर्व में

---

(1) F C ANDREAS, " Erklärung der aramäischen Inschrift von Taxila " , in Nachrichten von der Gesellschaft der Wissenschaften zu Göttingen, Phil.-Hist. Klasse, NoI , 1932, pp.1-17 .
(2) दे० J. MARSHALL, Taxila , vol.I , p.164 : " explained as being formed from takshan - 'carpenter' and śīla - 'nature' , habit' " .
3) C.D. CHATTERJEE , " Takṣaśilā (Taxila)" , in L.Sternbach Felicitation Volume , Part 2 , Lucknow 1979 , p.634 .
(4) आचार्य सी० डी० चटर्जी के मन्तव्य का उल्लेख करें :" The participants in its commercial activities constituted a heterogenous business community, similar to that of Babylon (Bāberush) and Persepolis, comprised of the Aryans, the Persians, the Greeks and the Jews " (ibid ,p.628).

ताम्रलिप्ति बन्दरगाह तक जानेवाले राजमार्ग पर स्थित था । उत्तर की ओर भी कशगर से उसका सम्पर्क था , मध्य एशिया और चीन के बाजार उसके लिए खुले थे । यद्यपि प्राचीन रेशम मार्ग केवल सा० स० पू० 100 के बाद पूर्ण सामर्थ्य के साथ चलायमान होता गया , फिर भी उससे पहले भी कारवां आया–जाया करते थे [(1)] । इस प्रकार व्यापार की दृष्टि से तक्षशिला का सर्वाधिक महत्व था । पश्चिम तथा पूर्व के बीच वह सास्कृतिक आदान–प्रदान एव वाणिज्य–विनिमय का सेतु–केन्द्र था , जैसे यूनानी भूगोलज्ञ स्त्रबोन् (स्ट्रेबो) ने सामान्य सवत् के आरम्भ में कहा ' यह उत्तम विधि–विधानों से शासित महा–नगरी है ' । उसके विश्वविद्यालय में तीनों वेद और अठारह विद्याए सिखानेवाले आचार्य थे [(2)] ।

आश्चर्य की बात नही कि इस महास्थान पर अशोक का आदर्श नीति–निर्देश भी अभिलिखित हुआ । तक्षशिला के भग्न स्तम्भाभिलेख का प्रथम वैज्ञानिक प्रकाशन सन् 1915 में भारतीय–सस्कृति विज्ञानी (indologist) अँल्० बार्नेट् के लेख का है [(3)] । उस समय स्तम्भ–लेख अपनी स्वच्छतम दशा में था । इसलिए बार्नेट् द्वारा प्रकाशित छाया–चित्र भावी अनुसन्धान का प्रमुख आधार रहा । सन् 1932 में ईरानी–सस्कृति विज्ञानी (iranologist) अँफ्० सी० अन्द्रेअस् की ओर से अभिलेख की विशेष छाप–प्रतिछाया (squeeze) प्रकाशित हुई [(4)] । जब एच्० हुम्बख् ने तक्षशिला के अरामी अभिलेख का अपना विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया , तब उन्होंने मूलपाठ–निर्णय हेतु उन दोनों पूर्व–प्रकाशनों को एक–साथ रखा बाए बार्नेट् की प्रतिछाया है और दाए अन्द्रेअस् की [(5)] । निस्सन्देह , बार्नेट् की प्रतिछाया अपेक्षाकृत स्पष्टतर है ।

---

(1) दे० B.N. PURI , Buddhism in Central Asia , Delhi , 1987, p.6 . " Constant exchanges between East and West provided through this region of the world – from Europe or the Near East to the East , India and China , as also in the reverse direction. These exchanges of cultural traits started long before the period of written history."

2) उदाहरणार्थ ' सुसीम जातक ' (दे० *आनन्द कौसल्यायन* , प्रस्तुतकर्ता , **जातक** , प्रयाग ,1985 ,द्वि० खण्ड , पृ० 211–221) जब वाराणसी के नरेश सुसीम के राजपुरोहित का देहान्त हुआ , तब आनेवाले उत्सव मे मंगलकार्य सम्पन्न करने के लिए बालक बोधिसत्व तुरन्त तैयार हुए और अपनी विधवा माता से बोले , ' कल एक दिन में मै तक्षशिला पहुच जाऊगा , एक ही रात में तीनो वेद और हस्ती–सूत्र सीखूगा , फिर एक दिन में वापस लौटकर , चौथे दिन हस्ती–मंगल करूगा । मत रो ! '

(3) L. BARNETT , " An Aramaic inscription from Taxila " , Journal of the Royal Asiatic Society , 1915 , pp. 340-342 (A.H. DANI , op.cit., Plate No 35).

(4) F. C . ANDREAS , op.cit. : one Plate .

(5) H. HUMBACH , " The Aramaic Asoka Inscription from Taxila " , in German Scholars on India , vol.2 , opposite p.118 .

नीचे ऐल्० बार्नेट् (बाईं ओर) और ऐफ़्० सी० अन्द्रेअस् (दाईं ओर) के प्रकाशनों की फोटोकॉपी देखो

यदि तक्षशिला में प्रयुक्त अरामी लिपि को आधुनिक मुद्रित इब्रानी रूप में स्पष्ट करें, तो बिलकुल दूसरे प्रकार की प्रतिछाया मिलेगी(1)

1. (?) זכרותא [...
2. לרמידתי על [.
3. נגרותא על [..
4. ארוש נגרותא [..
5. ולאבוהי הוו [...
6. הופתיסתי זנה [..
7. ק בהוורדה [..
8. הונשתון זי הות [.
9. מראן פרידר[ש .
10. הלכותו[.....
11. נאפבנוהי [...
12. למראן פרידר[ש .

लेकिन ध्यान दिया जाए कि मूल पाठ की यह आधुनिक प्रस्तुति मात्र एक सम्भावित पाठ है, जो प्रकाशक की निज पाठालोचना का परिणाम है। अष्टभुजाकार स्तम्भ की सीमित उपान्त (margin) पर वह किसी-किसी पंक्ति में तथा-कथित रिक्त अक्षरों अथवा शब्दों के लिए स्थान जोड़ देता है।

(1) दे० E.KUTSCHER, J.NAVEH & S.SHAKED, "The Aramaic inscriptions of Asoka", Leesonenu, 1970, p.126 (retouched).

उस लघुतम मुद्रित नमूने के पश्चात् एक अन्य प्रस्तुति का उदाहरण लें[1], जिसमें दुहरी रेखा के द्वारा मूल को और स्पष्ट कर दिया गया है । उसकी बाईं ओर मूल अक्षरों को लिप्यन्तरित रूप में, मूल दिशा–क्रम से दिखाया गया (लेकिन पाठ–निर्णय के सबंध में आगे विस्तृत चर्चा होगी – दे० भाग 2, ,3 और 4)।

अ्(?) त् व्(?) स्(?) क्(?) ज़्(?) ← (1)

ल् अ् य् त् द् य् म् र्(?) ल् (2)

ल् अ् अ् त् व् र्(?) ग् न् (3)

अ् त् व् र्(?) ग् न् श् व् ज़् र् अ् (4)

ह्(?) व् ह् य् ह् व् ब् अ् ल् व् (5)

ह् न् ज़् य् त् स् य् त् प् व् ह् (6)

ह् द् र् व् व् ह् ब् क् ज़् (7)

त् व् ह् य् ज़् न् व् त् श् न् व् ह् (8)

र् द् य् र् प् न् अ् र् म् (9)

? ह्(?) त् व् क् ल्(?) ह् (10)

य्(?) ह् व् न् ब् प् अ् व् (11)

श्(?) र् द् य् र् प् न् अ् र् म् ल् (12)

(1) *राजबली पाण्डेय*, **अशोक के अभिलेख**, फलक नं० 67 ।

– अरामी लिपि मे उत्कीर्ण एक भग्न शिलाफलक–लेख –

तक्षशिला से प्राप्त अरामी स्तम्भलेख के प्रकाशन के अठारह वर्ष बाद काबूल के संग्रहालय की 'काबूल' नामक पत्रिका (द्वितीय अक ,1932 ,पृ० 413) में उस नये अरामी शिलाफलक लेख के संबध में समाचार छपा[1] , जो पुल–इ–दरुन्त स्थान मे मिला था । पुल–इ–दरुन्त वर्तमान अफगानिस्तान के पूर्व में , काबूल तथा जलालाबाद नगरों के ठीक मध्य में स्थित है , जहा लघमान तथा काबूल नदियों का सगम होता है । तक्षशिला के लेख ने विद्वानों को आश्चर्य में डाला था ,क्योंकि अब तक इतने दूर पूर्व में अरामी लिपि का कभी कोई अभिलेख प्राप्त नहीं हुआ था । इससे कही अधिक पुल–इ–दरुन्त के अरामी लेख ने उन्हें आश्चर्य–चकित कर डाला , क्योंकि किसी की यह आशा नहीं थी कि पश्चिम की ओर इतने दूर तक कोई अशोकीय अभिलेख स्थापित हो सके । जब जर्मन विद्वान प्रो० अल्त्हाइम् ने उसके सबध में अपना विश्लेषण छपवाया[2] और अभिलेख के छाया–चित्र के नीचे लिखा कि यह अरामी–अवेस्ती मिश्रित भाषा का अशोकीय अभिलेख है , तब आश्चर्य और बढता गया । वास्तव में , जहा तक उस अत्यन्त खण्डित अभिलेख की मात्र 8 अवशिष्ट पक्तियों का कोई अर्थ लगाया जा सकता है , यह अरामी–ईरानी तथा प्राकृत का द्विभाषीय (अथवा त्रिभाषीय[3] !) लेख ही है ।

दुर्भाग्य , पुल–इ–दरुन्त के अत्यधिक क्षतिग्रस्त लेख की मूल प्रति अब शायद फिर उपलब्ध नहीं रही , क्योंकि वर्तमान अशान्त राजनीतिक परिस्थिति के कारण अफगानिस्थान के बहुत–से पुरातत्व अवशेष भी विनष्ट हुऐ । द्वितीय विश्व महायुद्ध के बाद जब प्रो० हैनिङ् ने इस अभिलेख का गंभीर अध्ययन किया , तब उन्होंने उसके मूल का स्पष्टतम प्रतिरूप प्राप्त करने के लिए अथक परिश्रम किया । उसी की प्रति–छाया अब सब से प्रामाणिक माना जाए।

---

(1) अत अभिलेख उसी वर्ष या उससे कुछ वर्ष पहले प्राप्त हुआ था ।

(2) F. ALTHEIM . " Eine neue Aśoka-Inschrift " . in J. FUNCK . ed. . Festschrift Otto Eissfeldt . Halle. 1947. pp. 29-55. Plate opposite p.42. reproduced from Kabul. 2.1932.p.413.

(3) एच० हुम्बख् मानते है कि यहा अरामी–ईरानी एव अरामी–भारतीय (Aramaeo-Indian) बहुभाषाओं का मिश्रण हुआ ।

(4) W. HENNING. " The Aramaic inscription of Aśoka found in Lampāka " (i.e. about the Pul-i-Darunta inscription). in Bullentin of the School of Oriental and African Studies . 13. 1949. pp.80 - 88. with two plates · Plate No.I obtained from M. AIMÉ- GIRON (Cairo). as produced by H.BIRKELAND . " Eine aramäische Inschrift aus Afghanistan " . in Acta Orientalia , 16. 1937 .pp.222 - 233 ; Plate No.II. a squeeze taken by R. CURIEL from the original in the Kabul Museum and now in possession of A DUPONT-SOMMER .

---
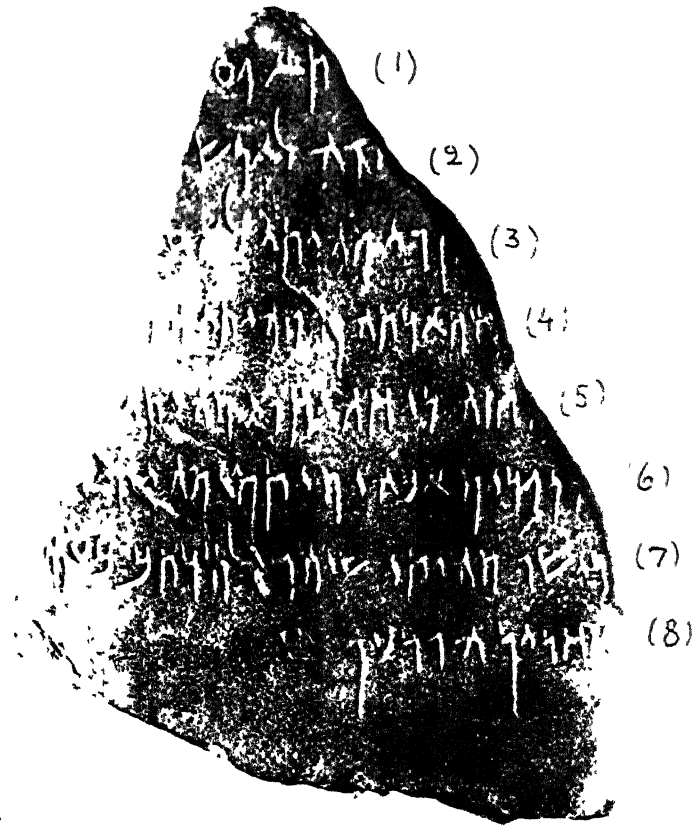
(1) इन्हीं प्रतिरूपों को प्रो० मुखर्जी ने थोड़ा बढ़ाकर प्रस्तुत किया । दे० B.N MUKHERJEE . Studies in the Aramaic Edicts of Aśoka , Calcutta , 1984, figures 4 & 5 " enlarged replica " .

शा०यू०
123 शर–इ–कुन (यूनानी–अरामी) + SHAR-I-KUNA (GREEK & ARAMAIC)
शा०अ०

– यूनानी और अरामी लिपियो मे उत्कीर्ण शिलालेख –

यह द्विलिपीय अभिलेख दक्षिण–पूर्व अफगानिस्तान के शर–इ–कुन , अर्थात् प्राचीन कन्दहार–नगर (यूनानी मे ' अलेक्सन्द्रो–पोलिस् ') के निकट सन् 1957 में प्राप्त हुआ । वह आधुनिक कन्दहार के पश्चिम मे , गिरीश्क की ओर जानेवाले मार्ग पर स्थित सर–पूस गाव के छोर पर ही उठी चट्टान मे , उत्कीर्ण हुआ । शर–इ–कुन का यह शिलालेख अब तक उपलब्ध अशोकीय अभिलेखों में सब से अधिक <u>पश्चिमी</u> लेख है (तुलना करें पुल–इ–दरुन्त का लेख पश्चिम से गिनकर देशातर रेखाश 69.9 और अक्षातर रेखाश 34.5 पर स्थित है , जब कि शर–इ–कुन का लेख देशातर रे० 65.7 और अक्षातर रे० 31.6 पर)। साथ–ही–साथ उसे अब तक उपलब्ध यूनानी अभिलेखों का सब से प्राचीन <u>पूर्वी</u> नमूना होने का गौरव प्राप्त है ।

इस अभिलेख के ऊपरी खण्ड पर यूनानी लिपि में 14 पक्तिया लिखी हैं और निचले खण्ड पर अरामी लिपि में 8 ही पक्तिया । दोनों खण्ड स्पष्ट और पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं । वास्तव में , उस काल के ऐसे पुरालेख कम ही मिलते है , जो शर–इ–कुन शिलालेख के समान अखण्डित अवस्था मे उपलब्ध हैं। शर–इ–कुन शिलालेख को सामान्यत एकमात्र ' द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख ' मानते हैं , लेकिन हम देख चुके है कि उसे ' द्विलिपीय ' कहना अधिक उचित होगा । उन दो खण्डो को कभी भ्रामक तरीके से ' कन्दहार का प्रथम यूनानी अभिलेख ' एव ' कन्दहार का प्रथम अरामी अभिलेख ' कहते[1] ।

यदि यूनानी खण्ड की अन्तिम पक्ति एव अरामी खण्ड की प्रथम पक्ति को एक–साथ दरशाए , तो इस प्रकार दोनो का अपना–अपना एक पाठाश साफ–साफ दिखाई देता है (यूनानी को बाए से पढ़ें , अरामी को दाए से !)
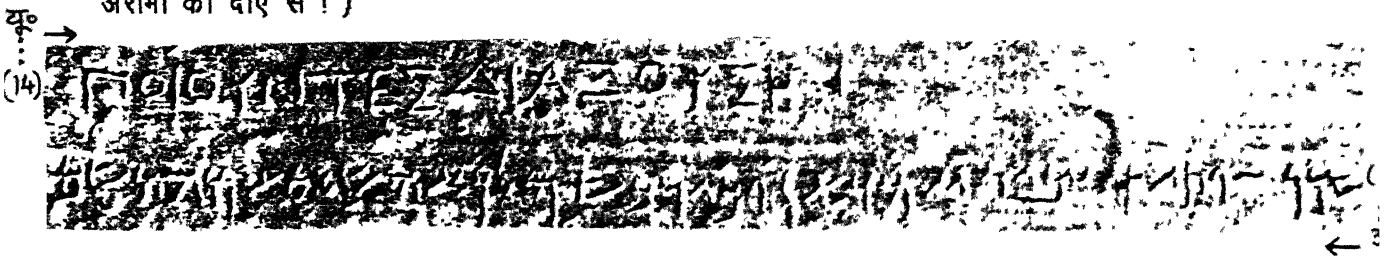
(1) *राजबली पाण्डेय* उसे ' कन्दहार द्विभाषीय लघु शिला अभिलेख ' के रूप मे प्रस्तुत करते हैं (तत्रैव ,फलक 68) ।

दोनो लिपियों – यूनानी एव अरामी – के एक–साथ सुरक्षित होने के कारण शर–इ–कुन अभिलेख का अर्थ–निर्धारण इतना कष्टमय नहीं है । तुलनात्मक अध्ययन के लिए इसका महत्व सर्वाधिक है ।

(1) यूनानी

1 Δέκα ἐτῶν πληρη[θέντ]ων βασιλεὺς
2 Πιοδάσσης εὐσέβεια[ν] ἔδειξεν τοῖς ἀν-
3 θρώποις, και ἄπο τούτου εὐσεβεστέρους
4 τοὺς ἀνθρώπους ἐποίησεν καὶ πάντα
5 εὐθηνεῖ κατὰ πᾶσαν γῆν, καὶ ἀπέχεται
6 βασιλεὺς τῶν ἐμψύχων καὶ οἱ λοιποὶ δὲ
7 ἄνθρωποι καὶ ὅσοι θηρευταὶ ἢ ἁλιεῖς
8 βασιλέως πέπαυνται θηρεύοντες, καὶ
9 εἴ τινες ἀκρατεῖς, πέπαυνται τῆς ἀκρα-
10 σίας κατα δύναμιν, καὶ ἐνήκοοι πατρὶ
11 καὶ μητρὶ καὶ τῶν πρεσβυτέρων παρὰ
12 τὰ πρότερον, καὶ τοῦ λοιποῦ λῷϊον
13 καὶ ἄμεινον κατὰ πάντα ταῦτα
14 ποιοῦντες διάξουσιν.

सुविधा के लिए यूनानी पाठ को बड़े–छोटे अक्षरों के मुद्रित रूप में दिखाते हैं, किन्तु ध्यान दें कि मूल अभिलेख केवल प्राचीन यूनानी लिपि के बड़े अक्षरों में – बिना शब्द–अन्तराल और बिना सहायक श्वसन–चिह्न एव स्वराघात सकेत – अकित किया गया था ।

(2) अरामी

1 שנן -- פתיחו עביד זי מראן פרידרש מלכא קשיטא מהקשט
2 מן אדין זעיר מרעא לכלהם אנשן וכלהם אדושיא הובד
3 ובכל ארקא ראם שתי ואף זי זנה במאכלא למראן מלכא זעיר
4 קטלן זנה למחזה כלהם אנשן אתהחסינן אזי נוניא אחדן
5 אלך אנשן פתיזבת כנם זי פרבסת הוין אלך אתהחסינן מן
6 פרבסתי והופתיסתי לאמוהי ולאבוהי ולמזישתיא אנשן
7 איך אסרהי חלקותא דלא איתי דינא לכלהם אנשיא חסין
8 זנה הותיר לכלהם אנשן ואוסף יהותר

अरामी पाठ को आधुनिक इब्रानी लिपि के मुद्रित व्यजनाक्षरों मे – स्वर–सकेतो के बिना – दिखाते हैं [1] । अरामी पाठ प्रस्तुत करते समय विद्वान कभी परिवर्धित रोमन लिपि में इसका लिप्यन्तरण भी करते हैं । यहा एक नमूना प्रस्तुत है, जिसमें यथासम्भव अरामी पाठ के अरामी–भाषीय शब्दो को बडे अक्षरों में तथा उसी अरामी पाठ में प्रयुक्त अन्य (ईरानी अथवा प्राकृत) भाषा के शब्दों को छोटे अक्षरो मे दिखाया गया [2] । इस प्रस्तुति से उस तर्क की पुष्टि होती है कि, शोध–प्रबध के शीर्षक के अनुसार, यहा अरामी–लिपीय लेख में भी ' द्विभाषीय ' अभिलेख पहचाना जा सकता है ।

1 *SNN 10 ptytw ʿBYD ZY MRʾN prydrš MLKʾ QŠTʾ MHQŠṬ*
2 *MN ʾDYN ZʿYR MRʿʾ LKLHM ʾNŠN WKLHM ʾdušyʾ HWBD*
3 *W BKL ʾRQʾ WʾP šty WʾP ZY ZNH BMʾKLʾ LMRʾN MLKʾ WSYD*
4 *QTLN [L]MḤZH KLHM ʾNŠN ʾTHḤSYNN W ZY NWNYʾ ʾḤDN*
5 *ʾLK ʾNŠN ptyzbt KNM ZY prbst HWʾYN ʾLK ʾTHḤSYNN MN*
6 *prbsty Whuptysty LʾMWHY W LʾBWHY WLmzyštyʾ ʾNŠN*
7. *ʾYK YSRHY ḤLQWTʾ W Lʾ ʾYTY DYNʾ LKLHM ʾNŠYʾ HSYN*
8. *ZNH HWTYR LKLHM ʾNŠN W YʾWSP YHWTR*

124 कन्दहार (यूनानी) क०यू० KANDAHAR (GREEK)

– यूनानी लिपि मे उत्कीर्ण एक भग्न शिलाखण्ड–लेख –

सन् 1963 में कन्दहार के खण्डहर में एक शिलाखण्ड प्राप्त हुआ, जिसपर यूनानी लिपि एव भाषा में एक खण्डित खिलालेख की 22 पक्तिया सुरक्षित मिलीं । यूनानी लिपि एव भाषा मे अब तक उपलब्ध अशोकीय अभिलेखो का यह द्वितीय नमूना गिना जाता है । इससे पहले शर–इ–कुन अभिलेख में यूनानी खण्ड मिला था, जिसके सबध में ऊपर चर्चा हो चुकी है । शर–इ–कुन प्राचीन कन्दहार पर ही स्थित है । अत इस द्वितीय यूनानी प्रति को कभी ' कन्दहार का द्वितीय यूनानी अभिलेख ' कहते हैं, परन्तु इसे सीधे ' कन्दहार का यूनानी अभिलेख ' कहना अधिक शुद्ध होगा । वास्तव में, यह एक अद्वितीय अभिलेख ही है, क्योंकि सा० स० पू० तीसरी शताब्दी में यूनानवाद (हॅलिनिज़म्) के विस्तार–क्षेत्र के पूर्वीय छोर पर अब तक प्राप्त हुए प्राचीन यूनानी अभिलेखों का इतना विस्तृत (22 पक्तियों का!) नमूना नहीं मिला ।

सन् 1964 से यह शिलाखण्ड राजधानी काबूल के सग्रहालय में रखा गया था । उसका आकार चूना–

---

(1) यह नमूना जे० कोप्मन्स् के संस्करण से लिया गया है : J.KOOPMANS.Aramäische Chrestomathie. Leiden. 1962. p.45(based on articles by D.SCHLUMBERGER. e.a., Journal Asiatique .246,1958,pp.1-48. with 5 plates).
(2) F ALTHEIM & R.STIEHL . " The Aramaic Version of the Kandahar Bilingual Inscription of Aśoka " . East and West . 9. 1958 . p.192 .

पत्थर में काटा गया था, शिलाखण्ड की ऊचाई सिर्फ 45 से०मी० है तथा चौडाई 69.5 से०मी० [1]।

सम्भवत उसी आकार में कुछ अन्य शिलाखण्ड तैयार किये गये थे। अनुमान है कि पहले कम-से-कम एक अन्य शिलाखण्ड कन्दहार के अवशिष्ट शिलाखण्ड की बाईं ओर सलग्न था (क्योंकि इस शिला-खण्ड का आरम्भिक वाक्य किसी पूर्व वाक्य का शेष वाक्याश है) तथा एक और शिलाखण्ड उसकी दाईं ओर भी सलग्न था (क्योंकि उसका अन्तिम वाक्य अधूरा-सा है)। कन्दहार-यूनानी (क०यू०) अभिलेख शर-इ-कुन-यूनानी (श०यू०) अभिलेख की तुलना में इतना सुस्पष्ट नहीं बचा हुआ है। उसका मूल पाठ आधुनिक लिपि मे प्रस्तुत करते हुए प्रो० मुखर्जी ने 5 सदिग्ध स्थलों का उल्लेख किया, जो बेन्वेनिस्ते के पाठ-निर्धारण पर आधारित हैं [2]।

1 [εὐ]σέβεια καὶ ἐγκράτεια κατὰ πάσας τὰς διατριβάς· ἐγκρατὴς δὲ μάλιστά ἐστιν
2 ὅς ἂν γλώσης ἐγκρατὴς ἦι. Καὶ μήτε ἑαυτοὺς ἐπα[ι]νῶσιν, μήτε τῶν πέλας ψέγωσιν
3 περὶ μηδενός· κενὸγ γάρ ἐστιν· καὶ πειρᾶσθαι μᾶλλον τοὺς πέλας ἐπαινεῖν καὶ
4 μὴ ψέγειν κατὰ πάντα τρόπον. Ταῦτα δὲ ποιοῦντες ἑαυτοὺς αὔξουσι καὶ τοὺς
5 πέλας ἀνακτῶνται· παραβαίνοντες δὲ ταῦτα, ἀκ(λ)εέστεροι τε γίνονται καὶ τοῖς
6 πέλας ἀπέχθονται. Οἳ δ'ἂν ἑαυτοὺς ἐπαινῶσιν, τοὺς δὲ πέλας ψέγωσιν φιλοτιμότερον
7 διαπράτονται, βουλόμενοι παρὰ τοὺς λοιποὺς ἐγλάμψαι, πολὺ δὲ μᾶλλον βλάπτου[σι]
8 ἑαυτούς. Πρέπει δὲ ἀλλήλους θαυμάζειν καὶ τὰ ἀλλήλων διδάγματα παραδέχεσθα[ι]
9 Ταῦτα δὲ ποιοῦντες πολυμαθέστεροί ἔσονται, παραδιδόντες ἀλλήλοις ὅσα
10 ἕκαστος αὐτῶν ἐπίσταται. Καὶ τοῖς ταῦτα ἐπ[α]σκοῦσι ταῦτα μὴ ὀκνεῖν λέγειν ἵνα δει-
11 αμείνωσιν διὰ παντὸς εὐσεβοῦντες. 'Ογδόωι ἔτει βασιλεύοντος Πιοδάσσου
12 κατέστρ(α)πται τὴν Καλίγγην. Ἦν ἐζωγρημένα καὶ ἐξηγμένα ἐκεῖθεν σωμάτων
13 μυριάδες δεκαπέντε καὶ ἀναιρέθησαν ἄλλαι μυριάδες δέκα καὶ σχεδὸν ἄλλοι τοσοῦ-
14 τοι ἐτελεύτησαν. 'Απ' ἐκείνου τοῦ χρόνου ἔλεος καὶ οἶκτος αὐτὸν ἔλαβεν· καὶ βαρέως ἤνεγκεν
15 δι' οὗ τρόπου ἐκέλευεν ἀπέχεσθαι τῶν ἐμψύχων σπουδήν τε καὶ σύντα(σ)ιν πεποίηται
16 περὶ εὐσεβείας. Καὶ τοῦτο ἔτι δυσχερέστερον ὑπείληφε ὁ βασιλεύς· καὶ ὅσοι ἐκεῖ ᾤκουν
17 βραμεναι ἢ σραμεναι ἢ καὶ ἄλλοι τινὲς οἱ περὶ τὴν εὐσέβειαν διατρίβοντες, τοὺς ἐκεῖ οἰκοῦ-
18 ντας ἔδει τὰ τοῦ βασιλέως συμφέροντα νοεῖν, καὶ διδάσκαλον καὶ πατέρα καὶ μητέρα
19 ἐπαισχύνεσθαι καὶ θαυμάζειν, φίλους καὶ ἑταίρους ἀγαπᾶν καὶ μὴ διαψεύδεσθαι,
20 δούλοις καὶ μισθωτοῖς ὡς κουφότατα χρᾶσθαι, τούτων ἐκεῖ τῶν τοιαῦτα διαπρασσο-
21 μένων εἴ τις τέθνηκεν ἢ ἐξῆκται, καὶ τοῦτο ἐμ παραδρομῆι οἱ λοιποὶ ἡγεῖνται, ὁ δὲ
22 [β]ασιλεὺς σφόδρα ἐπὶ τούτοις ἐδυσχέρανεν. Καὶ ὅτι ἐν τοῖς λοιποῖς ἔθνεσίν εἰσιν

उल्लिखित प्रस्तुति में ध्यान रखा गया है कि मूल अभिलेख की ग्यारहवीं पक्ति के मध्य में कुछ रिक्त

---

(1) क्या उस विशिष्ट आकार के शिलाखण्ड को किसी इमारती ढाचे मे लगाया गया था ? दे० A. GHOSH, ed. Indian Archaeology 1965 - 66 : A Review, New Delhi, 1973, p.108, " From its chiselled shape and dimensions, the slab appears to have been dressed for being built into some kind of structure which must have existed in Old Kandahar ".

(2) B.N. MUKHERJEE, op.cit., p.36, according to the reading of E. BENVENISTE, " Edits d' Asoka en traduction greque." in Journal Asiatique, 252 1964, p. 138

स्थान छोड़ा गया है । फिर भी इस पर ध्यान दिलाया जाए कि यूनानी पाठ का मूल अकन शब्दो के बीच अन्तराल छोड़े बिना ही किया जाता था । मूल लिपि की उस असुविधा को याद दिलाने के लिए यदि हम क०यू० के प्रथम शब्दों को एक–दूसरे से सटाकर लिखें , तो अभिलेख का वास्तविक स्वरूप सामने आएगा

(1)[ΕΥ]ΣΕΒΕΙΑΚΑΙΕΓΚΡΑΤΕΙΑΚΑΤΑΠΑΣΑΣΤΑΣΔΙΑΤΡΙΒΑΣΕΓΚΡΑΤΗΣΔΕ
ΜΑΛΙΣΤΑΕΣΤΙΝ(2)ΟΣΑΝΓΛΩΣΣΕΓΚΡΑΤΗΣΗΙΚΑΙΜΗΤΕΕΑΥΤΟΥΣΕΠΑ[Ι]Ν...

125 कन्दहार (अरामी) क०अ० KANDAHAR (ARAMAIC)

— अरामी लिपि मे उत्कीर्ण एक भग्न शिलाखण्ड–लेख —

सन् 1964 में प्राचीन कन्दहार/शर–इ–कुन से एक और शिलाखण्ड प्राप्त हुआ ,जिसपर अरामी लिपि में उत्कीर्ण शिलालेख की केवल 7 पक्तिया सुरक्षित मिलीं। इससे सात वर्ष पूर्व उसी क्षेत्र मे शर–इ–कुन का द्विलिपीय यूनानी–अरामी अभिलेख प्राप्त हुआ था , जिसका निचला अरामी खण्ड कभी ' कन्दहार का प्रथम अरामी अभिलेख ' कहा जाता है । इसलिए प्रस्तुत शिलाखण्ड–लेख को ' कन्दहार का द्वितीय अरामी अभिलेख ' गिना जाता है । लेकिन उसकी अरामी लिपि मे न केवल अरामी भाषा के शब्द मिलते हैं , वरन् निश्चित रूप से प्राकृत भाषा के वाक्यांश भी उद्धृत हुए । अरामी लिपि में लिप्यन्तरित ये प्राकृत वाक्यांश सामान्य अरामी पाठ के बीचोंबीच उल्लिखित सूत्र–जैसे लगते है । इस प्रकार एक–ही लिपि के पाठ में सन्निहित विभिन्न भाषाओं का ' सह–पक्तिक ' (जक्स्ट–लीनियर्[(1)]) प्रयोग हुआ । उन लिप्यन्तरित प्राकृत वाक्याशो के अतिरिक्त मुख्य अरामी वाक्य भी ईरानी भाषा के आगत शब्दों से सम्मिश्रित दिखाई देते हैं ।

यह बहुभाषीय शिलाखण्ड सास्कृतिक आदान–प्रदान का प्रत्यक्ष साक्ष्य है । परन्तु आकार की दृष्टि से यह अभिलेख नगण्य है । उसकी अधिकतम ऊचाई मात्र 18.5 सें०मी० है तथा चौड़ाई 24 सें०मी० ।

---

(1) =juxta-linear , अर्थात् एक–ही पंक्ति में किसी अन्य भाषा के शब्दो को अगल–बगल प्रस्तुत करना । यह पद्धति ' अन्तापंक्तिक ' (inter-linear) प्रयोग से भिन्न है , जिस मे ऊपर–नीचे की पंक्तियों में अन्य भाषा मे अनूदित अथवा अन्य लिपि में लिप्यन्तरित शब्द रखे जाते है ।

क०अ० अभिलेख की उस मूल आद्य माप का असली प्रतिरूप नीचे देखो
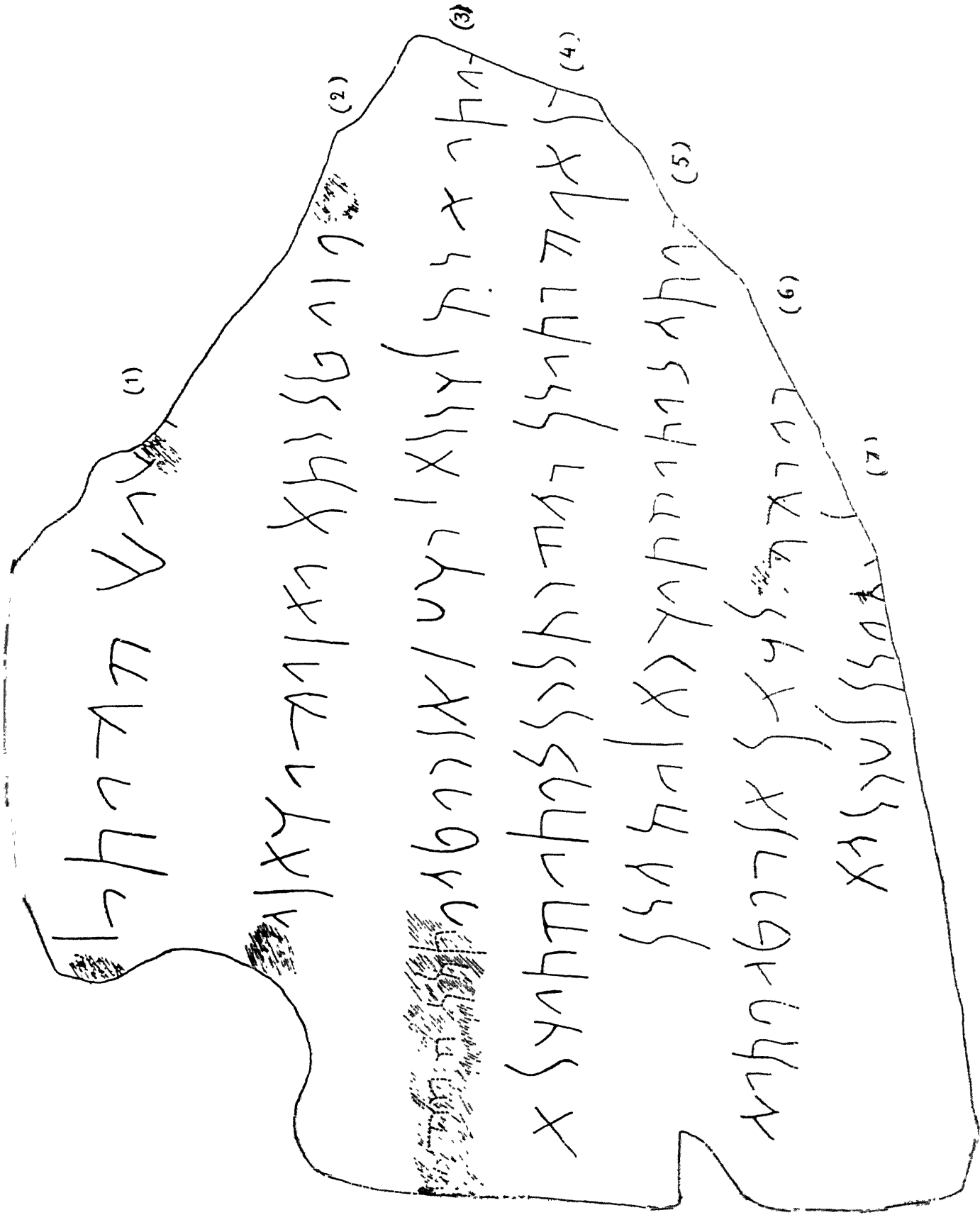
आश्चर्य की बात नही कि इस छोटे आकार के कारण यह अमूल्य शिलाखण्ड आधुनिक कन्दहार के बाजार में सामान्य मूल्य के लिए बिकाऊ पड़ा था । लेकिन विद्वानो के लिए छोटा आकार सहायक है, जिससे सुगमतापूर्वक लिपि का सही मूल्यांकन किया जा सके । प्रो० ए० दुपों–सोमेर् ने ऊपर दी गई प्रतिछाया के आधार पर मूल अक्षरों की लिखावट को असली माप में दिखाया [1] । इस प्रकार की प्रस्तुति पुरालिपीय विश्लेषण के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है। एक ही नज़र डालने से पता चलता है कि यह अरामी अभिलेख मानो हस्तलिखित प्रवाही लेखन की शैली में खुदवाया गया । उसकी भग्न अवस्था भी दिखाई देती है बची हुई सामग्री में मुश्किल से 20 शब्द पहचाने जा सकते हैं । प्रेस० शाकेद द्वारा रोमन अक्षरो मे पुनःस्थापित पाठ का भी अवलोकन करें [2]

1]{(t n.3 sl.xtv l(")[
2]("p .y tbwt" y"nyhyk"nv(S)[
3 sh]yty "rq lkdn" lwk"y "nwptyp(tmnh shy)[ty]
4 k]n "p hwtym wyhwtrwn bptystykn"
5 sh]yty bptystykn" lyqyrn
6 wy]wmhlk"n "nwptypty"
7](l)[bs]yrn l"wry"

126 लघमान–1 (अरामी) ल०प्र० LAGHMAN-I (ARAMAIC)

– अरामी लिपि मे उत्कीर्ण एक शिलालेख –

सन् 1969 की बात है । पूर्व अफगानिस्तान की लघमान नदी के बाए तट पर स्थित शलातक–करघाई ग्राम के पास, ' सुलतान बाबा ' नामक चट्टानी कगार में एक शिलालेख पाया गया। उस पर अरामी लिपि में उत्कीर्ण 6 पंक्तिया दिखाई देती हैं। ' लम्पाक ' इस क्षेत्र का प्राचीन नाम है [3] । आधुनिक लघमान भूखण्ड, काबूल तथा जलालाबाद नगरो के बीच, काबूल नदी के उत्तरीय तट से लगा हुआ है। अगले पृष्ठ के मान–चित्र पर [4] प्राप्ति–स्थल दिखाया गया है

---

(1) A.DUPONT-SOMMER ," Une nouvelle inscription araméenne d'Aśoka découverte à Kandahar (Afghanistan), Comptes Rendus de l'Académie des Inscriptions et Belles-Lettres ,1966, between pp 140 & 141
(2) S SHAKED, " Notes on the new Aśoka inscription from Kandahar " ,Journal of the Royal Asiatic Society,1969 ,p.119 .
(3) दे० A CUNNINGHAM, The Ancient Geography of India I, Varanasi,1963(1871) , p.36 also named " Lamghān " - people called " Lambatae" by Ptolemy should be corrected into " Lambagae " .
(4) मानचित्र के लिए दे० G.ROBERTSON ,The Kafirs of the Hindu-Kush , Karachi , 1974(1896).
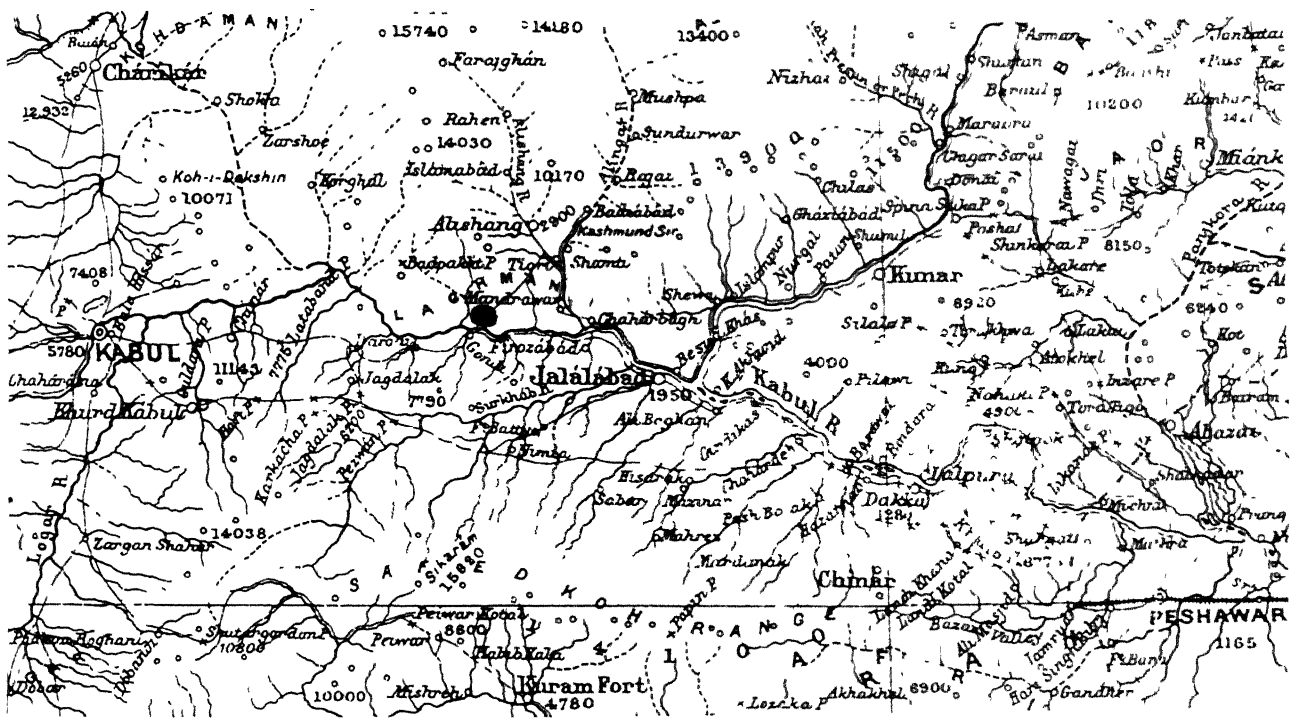
लघमान के इस अभिलेख के सबध मे कुछ विभ्राति है । शायद डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार भी उसका शिकार हुए , क्योंकि वह मानतें है कि उस स्थान पर , सन् 1969 में , चार अशोकीय अभिलेख मिले एक अरामी में ,और तीन अभिलेख ' सम्भवत प्राकृत भाषा और खारोष्ठी लिपि मे '[(1)] । वास्तव में , उस वर्ष में एक ही अशोकीय अरामी अभिलेख (=ल०प्र०) मिला , जब कि एक दूसरा अशोकीय अरामी अभि-लेख (=ल०द्वि०) बाद में प्राप्त होनेवाला था । लघमान के अन्य तथाकथित अशोकीय अभिलेखों के सबध में डॉ० एच० हुम्बख् यह स्पष्टीकरण देते है कि वे ' अशोकीय ' अभिलेख नही है ! लघमान में ऐसे आठ गुहा-अभिलेख प्राप्त हुए , जो गाधार के अन्तिम ' शाही ' राजाओं के शासनकाल में ही लिपिबद्ध हुए , अर्थात् वे अभिलेख नवीं सदी सा०स० के हैं , महमूद गज़नी के तूफानी आक्रमण से कुछ वर्ष पहले । उनमें सस्कृत-मिश्रित सकर भाषा का प्रयोग हुआ[(2)] ।

अब इस चट्टानी लेख का दर्शन करें । अवश्य , यह किसी अभ्यस्त लिपि-कार की कृति नहीं है न पक्तियों को सीधा लिखा गया , न अक्षरो के आकार में एकरूपता है । लगता है यह कोई स्थानीय सूचना है , न कि सम्राट का कोई शासनादेश । निम्न छाया चित्र प्रो० बी० एन० मुखर्जी की पुस्तक से लिया गया है[(3)]

---

(1) दे० D.C. SIRCAR. Inscriptions of Asoka . 1975. p.29

(2) दे० H.HUMBACH . " Hindu Sāhi inscriptions in hybrid Sanskrit from Laghmān " . Summaries of Papers at 4th World Sanskrit Conference. Weimar . 1979. pp.174-175.

(3) B.N. MUKHERJEE. op.cit. Plate 1

मूल पक्तियों की अस्त–व्यस्त दशा से मालूम हो जाता है कि दूसरी और तीसरी पक्ति का कुछ मिश्रण हुआ और छठी पक्ति का कुछ अश पाचवी पक्ति के नीचे छूट गया । डॉ० इतो के अनुसार[1] लिपिकार ने अपनी दूसरी पक्ति के अन्तिम शब्द को नीचे लिखा था , जिससे तीसरी पक्ति लिखते समय उसे उस शब्द को कूदकर आगे लिखना पडा ।

(2) MH MṢR BRYWT KWRY

DWDY

(3) MN ŚRYRYN ⟶ MH ʾBD RYQ QŠTN

जी० इतो का यह प्रस्तावित पाठ है

1 = (1) *B ŚNT 10 | ḤZY | prydrš MLKʾ ZRQ DHʾ*
2 = (2b) *⟨ŠHQ⟩ MH MSR BRYWT KWRY DWDY*
3 = (2a) *MN ŚRYRYN [ ] MH ʾBD RYQ QSTN*
4 = (3) *300 ZNH ʾWKʾ tdmr SMH ZNH ʾRHʾ kʾpty sh⟨y⟩ ty*
5 = (4) *GNTʾ ʾTRH 120 TRHʾ TNH 100 ʾLʾ 80*
6 = (5) *ʾM w šw dyn⟨ʾb⟩r Whšwprtbg ŚKN ptyty ZKʾ ⟩*

127 लघमान–2 (अरामी) ल०द्वि० LAGHMAN-II (ARAMAIC)

— अरामी लिपि मे उत्कीर्ण एक शिलालेख —

लघमान नदी की उसी घाटी में लघमान के प्रथम–प्राप्त शिलालेख के प्राप्ति–स्थल से केवल 2 कि०मी० की दूरी पर , ' साम बाबा ' नामक चट्टानी कगार पर , चार वर्ष के बाद – सन् 1973 में – एक अन्य अरामी शिलालेख प्राप्त हुआ । इसमें अरामी लिपि में उत्कीर्ण दस पक्तिया मिलती हैं ।

---

(1) GIKYO ITO, " (A new interpretation of) Aśokan inscriptions : Laghmān I and II " , Studia Iranica , 8, 1979 , fasc. 2,p. 180.

लघमान का यह द्वितीय-प्राप्त शिलालेख प्रथम लेख की विषय-वस्तु से बहुत कुछ मिलता-जुलता है । यह तो बाद के विश्लेषण से मालूम हो जाएगा । लेकिन दोनों के बाह्य रूप की तुलना करने पर काफी अन्तर दीखता है लघमान-2 के अक्षर प्राय मिट गये , फिर भी उसकी पंक्तियों को एक ही लम्बाई में अपेक्षाकृत सीधा लिखा गया और अक्षरों को समान आकार मे क्रमबद्ध उतारा गया [1]
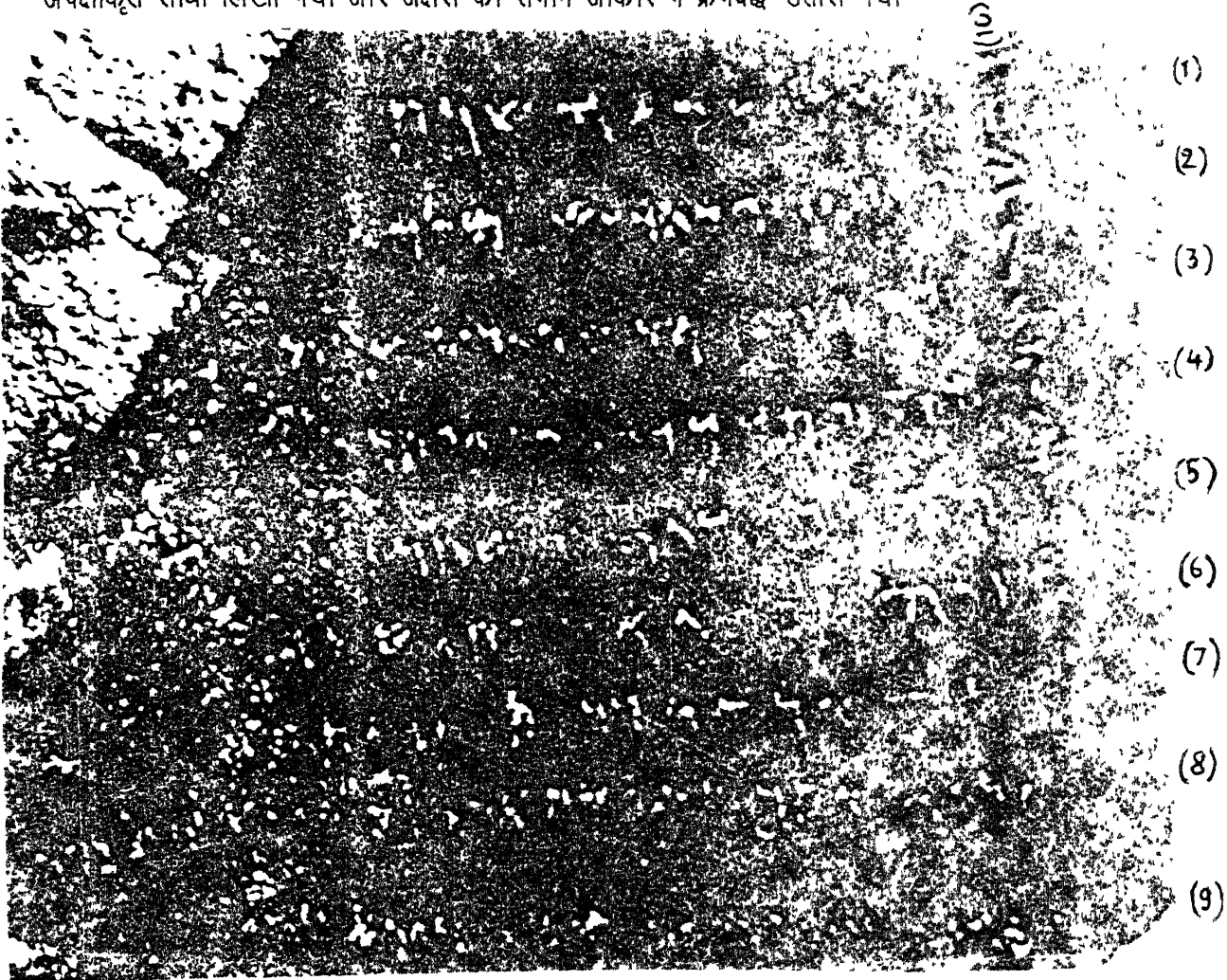
ध्यान दें कि ल०द्वि० अभिलेख की अन्तिम दसवी पंक्ति को दाईं ओर ऊपर से नीचे लिखा गया , जिसे सिर टेढा करके पढना टेढी खीर के समान है ।

यहा भी जी० इतो द्वारा पुनःस्थापित मूल पाठ के रोमन लिप्यन्तरण का अवलोकन करें [2] । इसमें ल०प्र० के पुनःस्थापित पाठ से मिलनेवाले शब्दों को रेखांकित किया गया । ल०द्वि० के 38 शब्द ल०प्र० के समान है , अर्थात् ल०द्वि० के लगभग 85 प्रतिशत शब्द ल०प्र० में भी मिलते हैं । अपनी

---

(1) Ibid., Plate 2. (2) G ITO, op.cit ,p.175.

प्रस्तुति में डॉ० इतो ने मूल अरामी भाषा के शब्दो को बड़े अक्षरों में दिखाया , और अन्य (ईरानी अथवा प्राकृत) भाषा के शब्दों को छोटे अक्षरों में । लेकिन उन वरिष्ठ विद्वान की लिप्यन्तरण–पद्धति में थोडी–सी असावधानी है । उन्होने अरामी व्यजन आलेफ् को कभी ' ᵓ ' चिह्न द्वारा और कभी ' ʾ ' चिह्न द्वारा दिखाया उदाहरणार्थ ल०प्र०1 में MLKʾ और ल०द्वि०2मे MLKᵓ ।)

(1) B 'LWL m'h ŠNT
(2) 16 pıvdıš MLK
(3) ZRQ DH' 'MN ŠRYRYN S(H) Q
(4) MH MSR KWRY BRYH (T DWDY)
(5) MH 'BD RYQ QŠTN 3(00)
(6) ZNH TWKs 'hwty SMH
(7) ZNH (RH(kıpıy s(h)yty
(8) GND (R R 300 TRH (TRH ( ) (L)
(9) (M n'šw SMH dyn (hı)
(10) Whswpıthg SKN ZK pıyı)

उल्लेखनीय है कि कुछ अक्षरों की अस्पष्टता के बावजूद दोनों लघमान अभिलेख अखण्डित हैं , जब कि (शर–इ–कुन के द्विलिपीय यूनानी–अरामी अभिलेख को छोड कर) अन्य सभी द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख ' भग्न अभिलेख ' हैं ।

128 अन्य द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख ? OTHER BILINGUAL ASHOKAN INSCRIPTIONS ?

इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि स्वय सम्राट अशोक के , अथवा उनके अधिकारियों के निर्देश से अन्य अरामी–यूनानी अभिलेखों को उत्कीर्ण किया गया हो । उन्हें अप्राप्य नही माना जा सकता है , अपितु ऐसे अभिलेख ' प्राप्तव्य ' हैं , क्योंकि वे अवश्य प्राप्त होनेवाले हैं । प्राप्ति–क्षेत्र में ,विशेषकर वर्तमान अफगानिस्तान में , शान्ति की खोज की जा रही है , और हो सकता है कि युद्ध–तोपों के कारण अशोकीय शान्ति–सदेश का कोई अभिलेख अनायास प्रकाश में आ जाये।

दूसरी ओर तक्षशिला नगर एक ऐसे विशाल सास्कृतिक आदान–प्रदान का केन्द्र था कि मात्र एक ही अशोकीय अभिलेख की प्राप्ति से सतोष नहीं मिल रहा है । प्रो० दानी के अनुसार वास्तविक मौर्यकाल–सबंधी क्षेत्र का पुरातत्वीय उत्खनन अभी तक ठीक से नहीं हुआ । उनका अनुमान है कि हथियाल टीले से पश्चिम की ओर , सम्भवत तम्रा सरिता के पार तक , मौर्यकालीन आवास–क्षेत्र का विस्तार हुआ । वहा नाम–मात्र खुदाई हुई है और कहीं–न–कहीं अभिलेखीय सामग्री छिपी हुई होगी ।

---

(1) A.H. DANI, The Historic City of Taxila , pp 53 :" What we feel is that important Mauryan and pre-Mauryan remains have not yet been found" .

द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखों का बाह्य परिचय उनके प्राप्तिकाल एव प्राप्तिस्थल के अनुसार किया गया है । अब अरामी–यूनानी पाठ को पढ़ने और समझने की तीव्र उत्कठा है । परन्तु अर्थ–निर्णय की प्रत्याशा को तब तक दबाना होगा , जब तक पृष्ठभूमि की पूरी छानबीन न हुई हो और भाषाई अभिव्यक्ति का पुरालेखीय–पुरालिपीय माध्यम भी स्पष्ट न किया गया हो ।

13 व्यापारिक आवागमन और प्रशासनिक आवर्तन का सम्पर्क–क्षेत्र

CONTACT AREA OF COMMERCIAL TRAFFIC AND ADMINISTRATIVE PERMUTATION

जिस क्षेत्र में द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख प्राप्त हुए अथवा प्राप्तव्य हैं , वहा शासनादेश व सदेश खुदवाने का कोई समुचित कारण था । उस क्षेत्र के स्थायी–अस्थायी निवासियो को धर्मनीति सुनाने का विशेष अभिप्राय था । व्यापारिक आवागमन और सास्कृतिक आदान–प्रदान का यह सम्पर्क–क्षेत्र था। वहा सामुदायिक सामजस्य का वातावरण बनाया रखना अनिवार्य था । अत उसके विभिन्न जनसमूहो को सम्बोधित करने के लिए सम्राट अशोक ने बहुलिपि में बहुभाषा का प्रयोग किया ।

. पिछले अनुच्छेद में द्विभाषीय अभिलेखों के सर्वेक्षण से मालूम हुआ कि उनमे अरामी और यूनानी भाषा के शब्दों के अतिरिक्त कुछ ईरानी एव प्राकृत शब्दों का भी समावेश था । इसलिए उन चार भाषाओं के कारण अफगानिस्तान , पाकिस्तान व पश्चिमोत्तर भारत के उस सम्पर्क–क्षेत्र का क्रमश अरामी , ईरानी , यूनानी और मौर्य प्रभाव–क्षेत्र के रूप में पुन–पुन अवलोकन किया जाएगा । इस अध्याय के अन्त में स्पष्ट होगा कि कैसे शनै–शनै सामाजिक समन्वयन का सगम–क्षेत्र स्थापित हुआ । डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने अपनी पुस्तक ' बृहत्तर भारत ' में चिरग्राहिणी भारतीय सस्कृति के उस अनुपम उदाहरण का उल्लेख किया[(1)]

> ' उदारमना सम्राट अशोक ने सास्कृतिक तथा भाषा ,कला आदि के क्षेत्र में स्वदेशी–विदेशी का अन्तर नहीं किया और मुक्तभाव से कल्याणकारी भावनाओं को स्वीकार किया । यही कारण है कि पाली {प्राकृत} . के अतिरिक्त उसके अभिलेख अरमयी {अरामी} और ग्रीक {यूनानी} भाषाओं तथा खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपियों में समान रूप से उत्कीर्ण किये गये । '

---

(1) *भगवतशरण उपाध्याय* , **बृहत्तर भारत** , दिल्ली , 1981 , पृ० 36

131 द्विभाषीय अभिलेखों में कुछ व्यापार–स्थलो के सभावित सकेत

POSSIBLE INDICATIONS OF TRADE-SPOTS IN THE BILINGUAL INSCRIPTIONS

लघमान से प्राप्त दो शिलालेखों का स्वरूप अन्य द्विभाषीय अभिलेखों से भिन्न लगता है । क्या उन्हे यात्रियो, व्यापारियों के लिए ही अभिलिखित किया गया[1] ? चार उदाहरणो का विवेचन करने से इस बात की पुष्टि होती है कि व्यापारिक आवागमन के सदर्भ पर ध्यान देना परमावश्यक है।

131–(1) क्ऱ्प्त्य्

ल०प्र० ,पक्ति 4 और ल०द्वि० ,पक्ति 7 में , अरामी व्यजन–लिपि का शब्द क्ऱ्प्त्य् मिलता है । वह किसी राजपथ का सकेत हो सकता है , जिस पर यात्रा करनेवाले पथिकों से ' कर ' अथवा पथ–शुल्क मागा जाता है। यह उनका ' कर–पथ ' बना । लेकिन भाषा की दृष्टि से उसे ' कारा–पथ ' समझना चाहिए , क्योकि व्यापारियों के यात्री–दल (' कारवा ' , caravan) और सैनिको के सेना–दल (ईरानी भाषा में ' कार– ' का यही अर्थ है) उस पथ का प्रयोग करते थे ।

प्राचीन यूनानी आलेखों में ऐसे राजमार्ग का उल्लेख मिलता है , जो पश्चिम एशिया से , तक्षशिला से होते हुए , पाटलिपुत्र पहुचता था , उदाहरणार्थ , जिन्दिकै 3 4 के अनुसार अेरतोस्थेनैस् ने (जिसका काल सा० स० पू० तीसरी सदी के अन्त का है) किसी ' होदौस् बसिलैयै ' , अर्थात् राजसी मार्ग , का वर्णन किया[2] । सम्भवत राजा सिकन्दर ने काबूल तथा लघमान नदियों के सगम पर एक विजय–नगरी ' निकय ' की स्थापना की थी । यदि स्कुलक्स्[3] का उल्लेख विश्वसनीय है , तो कुछ आगे , काबूल और सिधु नदियों के सगम पर ' कस्पतुरोस् ' नगर (= क्ऱ्प्त्य् ?) स्थित था । राधाकुमुद मुखर्जी ने इससे कुछ नीचे , सिधु–तट पर ही एक करपथ (Karapatha) नगर रखा[4] , जब कि एच० हुम्बख् मानते हैं कि ' कारापथ ' हिमालय के पास किसी प्रदेश का नाम है[5] ।

---

(1) दे० A.DUPONT-SOMMER , " Une nouvelle inscription araméenne d' Asoka trouvée dans la vallée du Laghman (Afghanistan)" , Comptes Rendus de l' Académie des Inscriptions et Belles-Lettres , 1970 , pp. 158-173 .

(2) दे० ARRIAN , History of Alexander and Indica , vol.2 , Cambridge , 1987 , p.310 (reference to Eratosthenes).

(3) = स्काइलक्स् , Skylax .

(4) RADAKUMUD MOOKERJI . The Fundemental Unity of India . Mumbai , 1954. Map of Ancient India.

(5) H HUMBACH , " Aramaeo-Iranian and Pallavi " , Acta Iranica , 1974, p 241

कैलाशनाथ द्विवेदी कहते है ,' यह रामायणकालीन राज्य था , जिसका नाम उस समय ' कारूपथ ' था { वाल्मीकी रामायण , उत्तर० 1025–6 }। यहा की जलवायु स्वास्थ्यप्रद थी । लक्ष्मण के पुत्र अगद और चन्द्रकेतु को भगवान् राम ने यही का शासक बनाया था । महाकवि कालिदास ने इसी तथ्य को ' कारापथ ' नाम से ग्रहण किया { रघुवश 15 89 } '[1] । फिर भी कालिदास ने ' राजपथ ' (नरेन्द्र मार्ग) ,' दिग्विजय–पथ '(राज–अभियान का यौद्धिक मार्ग) और ' महापथ ' का भी सकेत दिया (कुमार सम्भव 7 3) । वह उस प्राचीनतम उत्तरापथ के समान था , जो उत्तरी महाजनपद गाधार तथा कम्बोज से होते हुए भारतीय महाद्वीप का पश्चिमोत्तर तथा पूर्वोत्तर जोडनेवाला मुख्य व्यापार–मार्ग था ।

131–(2) तद्मर्

प्रथम–प्राप्त लघमान शिलालेख में तद्मर् शब्द भी मिलता है (ल०प्र०,4)। क्या दूर पश्चिम में प्रसिद्ध व्यापार–केन्द्र ' तध्मोर् ' की ओर सकेत है ? इसे अरामी व्यापारियों ने बसाया था[2] , यद्यपि इब्रानी–अरामी तनख् (बाइबिल) के अनुसार राजा सुलेमान ने ही तदमोर–नगर की स्थापना की थी[3] । बाद मे रोमन व्यापारियों ने उस मरूद्यान का नाम ' पल्मीर '[4] रखा , क्योंकि वहा बहुत–से पखिया खजूर (palmyra trees) उगे थे ।

फिर भी लधमान अभिलेख के अरामी व्यंजनों में किसी स्थानीय बाजार का नाम भी हो सकता है । कई विद्वानों ने लघमान घाटी मे किसी चट्टानी पर्वत ' तदमर (?) ' का सुझाव दिया ।

131–(3) त्वर्अ

ल०प्र० , 4 में प्रयुक्त शब्द त्वर्अ भी अनिश्चित है । अरामी में ' तोर् ' का सामान्य अर्थ साड पशु है । क्या किसी स्थानीय पर्वत की आकृति के कारण उसे यह नाम दिया गया ? अथवा क्या दूर उत्तर–पश्चिम में माउण्ट् टॉरस् (Mount Taurus) की ओर सकेत है , जिसे अरामी में ' दूर् तोरा ' ,

---

(1) *कैलाशनाथ द्विवेदी* , तत्रैव , पृ० 173 ।

(2) दे० AUBREY MENEN , Cities in the Sand , London , 1972 p.202-232 " Tadmor , city built by Arameans in an oasis , on the great caravan routes " .

(3) 2 इत 8 4 और (केवल अरामी तर्गुम अनुवाद में) 1 रा 9.18 मे — दे० C PFEIFFER & H VOS , The Wycliffe Historical Geography of Bible Lands , Chicago , 1974 , p.258 : " At the beginning of the first millenium B.C. Solomon fortified Tadmor ... and made it a secure outpost through which the wealth of India could be brought to his kingdom " .

(4) = पैल्माइरा , Palmyra .

अर्थात् ' साड का पर्वत ' ही कहते है ? अन्य सभावना है कि यहा असीरिअ (Assyria) प्रदेश का उल्लेख है , जिसको बेहिस्तून अभिलेख में, ' थुरा/अथुरा ' कहा गया है ।

131–(4) अ॒ह्व॒त्य॒

ल०द्वि ०, 6 में एक और सदिग्ध शब्द अ॒ह्व॒त्य॒ मिलता है । अरामी व्यजन–लिपि मे इसका सहज उच्चारण ' आहुति ' है , लेकिन इस प्रकार के स्थान का कोई नाम ज्ञात नही है । परतु ' आहवती ' का उच्चारण करने से ' ऐरावती , सरस्वती ' के नाम का सुझाव दिया जा सकता है । इस सम्भावना को और बल प्राप्त होता है ,क्योंकि सम्पूर्ण प्रदेश को यूनानी में ' अरख़ोसिअ ' कहते है , जो स्थानीय भाषा के समरूप ' अर॒ख़ुती , हरह्वती , हरउती ' को प्रतिध्वनित करता है । वैदिक काल का भौगोलिक मानचित्र खीचते हुए ॲम्० वित्सल् ने उसी क्षेत्र मे सिधु की एक उपनदी का नाम सरस्वती (कोष्टक में हरख़्वैती) रखा [(1)] ।

ऊपर दिये गये चार उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि द्विभाषीय अभिलेखों में अवश्य कुछ भौगोलिक सकेत हैं । अस्पप्ट उल्लेखों पर अधिक प्रकाश डालने के लिए तदनुरूप सम्पर्क–क्षेत्र में व्यापारिक सबधों की पृष्ठभूमि का बडा ध्यान रखना होगा ।

132 सिंधु–तटीय क्षेत्र में कुछ प्राचीन व्यापारिक कार्यकलाप

SOME ANCIENT COMMERCIAL ACTIVITIES IN THE INDUS RIVERBANK REGION

सिधु–क्षेत्र से पश्चिम की ओर जानेवाले तीन प्रमुख स्थल–मार्ग थे (1) उत्तरी मार्ग (काबूल और वाह्लीक से होते हुए कृष्ण–सागर की ओर) , (2) मध्य मार्ग (कन्दहार से होते हुए चाहे हेरात एव एकबताना की ओर अथवा परसेपोलिस की ओर) , और (3) दक्षिणी मार्ग , अर्थात् समुद्रतटीय मार्ग [(2)] । ऐसे मार्गों के कारण भारत का पश्चिम से घना सम्पर्क सम्भव हुआ , जैसे डॉ० भगवतशरण उपाध्याय विस्तार से वर्णन करते है " सब से महत्व का मार्ग खेबर का दर्रा रहा है। काबुल की

---

(1) M.WITZEL , " Localisation of Vedic texts " , in G.POLLET , ed , India and the Ancient World , Leuven , 1987, p.210
(2) दे० B N PURI , Buddhism in Central Asia , Delhi , 1987 , p 16-18 , ROMILA THAPAR ,Asoka and the Decline of the Mauryas , Delhi , 1989 , p 83 · " Routes of trade and communication between India and the West " .

घाटी से पेशावर तक उतरता यह मार्ग केवल बीस मील लबा है । पश्चिम से आनेवाला एक दूसरा मार्ग , हेरात से कन्दहार होता , बोलन अथवा मुला के दर्रों से सिध की घाटी मे उतर आता है । तीसरा स्थल मार्ग , मकरान होता , किरथार पर्वत-श्रेणी और अरब सागर के बीच से सिध पहुचता है ।'[1] अत जलमार्ग द्वारा भी भारत का सागरीय सम्पर्क फारस और अरब देशो से रहा ,यहा तक कि यूनान और मिस्र सम्पर्क में आए । डॉ० उपाध्याय के शब्दों में ' अशोक ने मिस्र से मकदूनिया तक के पाचो ग्रीक राज्यों में , अपने मानवीयता के सिद्धान्तो से प्रेरित , जनहिताय कार्य किये '।

दीर्घ व्यापारिक सम्पर्क के कारण स्वदेशी–विदेशी भाषाओ में भी आदान–प्रदान होता रहा । आश्चर्य नहीं यदि विचाराधीन अभिलेखों में कुछ देशान्तरित–सम्मिश्रित शब्द प्रविष्ट हुए ।

132–(1) ग्नत्

भाषाई अभिव्यक्ति कभी अतिप्राचीन स्रोत से निसृत हुई । उदाहरणार्थ , प्राचीन सूमेरी अभिलेखों मे ' मेलुहा ' नामक वन–क्षेत्र का उल्लेख है ,जहा से मेसोपोटामिया के व्यापारी विशेष लकडी ले आते थे । नगर–राज्य लगाश के राजा गुदेअ ने लगभग सा०स०पू० 2050 मे लिखवाया कि ' मगन तथा मेलुहा ने अपने दूर–वर्ती प्रदेशो से अपने कधो पर ही मेरे लिए इमारती लकड़ी पहुचादी । ' मेलुहा शब्द से सिधु–क्षेत्र का तात्पर्य हो सकता है और उसका भारतीय रूपान्तर ' म्लेच्छ ' शब्द मे ही दीखता है , यहा तक कि ' म ' का ' ब ' में परिवर्तित होने के पश्चात् ' बलुचि–स्तान ' प्रान्त का नाम उसी शब्द से बना[2] ।

राजा गुदेअ के लेख में पडोसी क्षेत्र ' मगन ' का उल्लेख है । क्या इसका तात्पर्य ' मकरान ' है ? क्या यह वही ' मगन ' है , जिसके सबध में असीरिया के सम्राट सरगोन द्वितीय (सा०स०पू० 720–705) ने लिखवाया कि वहा के ' मुसुक्कनु ' नामक लकडी मुझे राजकर के रूप में चाहिए ? त्रिभाषीय बेहिस्तून अभिलेख में ' मगन ' नाम–रूप ही रहा है ।

असीरिया के सम्राट सनहेरीब (सा०स०पू० 704–681) ने भी भवन–निर्माण के लिए विशिष्ट ' सिन्दु ' नामक लकडी का आयात किया । अधिक सम्भव है कि सप्तसिन्धु की ओर सकेत है ।

---

(1) *भगवतशरण उपाध्याय* , **बृहत्तर भारत** , 1981 , पृ० 30–32 ।
(2) दे० K. LUKE , " Contacts between India and Sumer " , Indian Theological Studies , 29. 1992 , p.148 " There is no a priori objection to our identifying MELUHA with MLECCHA /BALUCHISTAN "

सभी जानते है कि ' स ' को ' ह ' उच्चरित करने से ' हिन्दु–स्तान ' महादेश का नाम बना । इब्रानी–अरामी में उस सिंधु–क्षेत्र को ' होद्दू ' कहते हैं (उद० तँनख्–बाइबिल का एस्तर–ग्रंथ 1 1)। यह मुख्यत वन–प्रदेश था। लघमान के दोनों अरामी अभिलेखों (ल०प्र० 5 और ल०द्वि० 8) में ग्न्त् , अर्थात् वन , का स्पष्ट उल्लेख है । लेकिन ग्न्त् प्राय ' आरक्षित वन , उद्यान , पवित्र कुंज ' ही है । वृक्ष काटने में नहीं , बल्कि रोपने में धर्माशोक की अभिरुचि थी (दे० मुख्य स्तम्भलेख 7 23 ।)।

132–(2) श्व्प्र्

इब्रानी–अरामी तँनख् के प्रथम राजा–ग्रंथ 10 11 के अनुसार राजा सुलेमान ने भी मन्दिर–निर्माण के लिए उत्कृष्ट लकडी की खोज की और जहाजी बेडा भेजकर वह ' ओफीर् ' से अत्यधिक मात्रा में चन्दन (?) [1] की लकडी और मणि–मुक्ता भी लाया । इस पाठ के प्राचीन यूनानी अनुवाद में ' सौव्फिर् ' शब्द–रूप मिलता है । यही एक कारण है कि उसे मुम्बई के निकट स्थित ' सुप्पारक / सोपारा ' का नाम माना गया है [2] ।

यदि हम ' ओफीर / सौव्फिर् ' को भारत में ही खोजें [3] , तो अन्य सभव स्थान हैं गुजरात का ' सौवीर ' अथवा सिंध का ' अबीरिअ ' [4] । सयोग से लघमान के द्वितीय अभिलेख की अन्तिम

---

(1) चन्दन के लिए मूल इब्रानी बहुवचन संज्ञा–रूप ' अल्मुग्गीम् ' मिलता है , जब कि उसके समानातर पाठ (2 इत 9 10) में ' अल्गुम्मीम् ' पाया जाता है । इसे सस्कृत शब्द ' वल्गुकम् ' (अर्थात् मनोहर वस्तु , चन्दन) से तुलना करते है । परन्तु प्राचीन उगारीती (उत्तर–कनानी) एवं अक्कादी भाषाओं से तुलना करने पर इसे सागौन (टीक्–वुड्) ही माना गया है — दे० J.GREENFIELD & M.MAYRHOFER , " The ʾalgummim / ʾalmuggim – problem reexamined " , Supplement to Vetus Testamentum , 16 ,1967 ,pp.83-89 .फिर भी प्राचीन बाइबिल–अनुवादो के आधार पर इसे सुगंधित अगरु (ऐलो–वुड्) अथवा शीशम (रोज्–वुड्) मान सकते है — दे० H.GOMES , " Kalyan, the ancient Gateway of India " , Indica , 5, 1968 pp. 1-23 ' " i e red sandalwood , indigenous to India and Ceylon " इस प्रकार यरूशलेम के सुलेमानी मन्दिर की चमक–दमक के लिए भारत ने ही सहयोग दिया । आश्चर्य नहीं कि सदियों के बाद पाटलिपुत्र के काष्ठ–शिल्पकारों ने मौर्य–महल की शोभा बढाने के लिए ऐसी कीमती लकडी का प्रयोग किया ।

(2) दे० B.A FERNANDES, " Sopara .the ancient port of the Konkan " . Journal of the Bombay Historical Society, 1, 1928, pp. 65-77 । उत्पत्ति–ग्रंथ 10:29 में भी ' ओफ़ीर् ' मिलता है , लेकिन मूल व्यजन–लिपि मे ' अव्प्य्र् ' के बदले मे वहा ' अव्प्र् ' लिखा हुआ है । इसलिए व्याख्याता उसे अरब–तट का यमन मानते है , जिसको यूनानी में ' अफर् ' कहते थे (दे० ' पेरिप्लोव्स् तैस् थलस्सैस् ऐरूथ्रास् ' नामक वर्णन , जिसे मिस्र के किसी यात्री ने प्रथम सदी सा०स० के उत्तरार्ध में लिखा = Periplus of the Erythraean Sea , 23)। तँनख् के अय्यूब–ग्रंथ 28 16 मे ' ओफ़ीर् ' का यह अन्य उल्लेख है ' बुद्धि का मूल्य नही आका जा सकता है न ओफीर् के सोने से , न मूल्यवान नीलमणि (साफीर् ,अ० ,sapphire) से ।' दिलचस्प बात है कि प्राचीन लातीनी अनुवाद मे ओफीर् को यहा ' इन्दिअ ' ही समझ लिया गया है ' बुद्धि इतनी मूल्यवान है कि उसका मूल्य (अथवा उसकी सुन्दरता) भारत के रगो से रगे वस्त्रों से भी नहीं आका जा सकता । '

(3) लेकिन बहुत–से विद्वान ओफीर् को अन्यत्र ढूढ. रहे है , उद० R. STIEGLITZ ," Long-distance seafaring in the ancient Near East " , Biblical Archaeologist ,47 ,1984 ,p.141 · " it must be sought along the coast of the Red Sea " ; ओफ़ीर् को ' अफ्रिका ' (= अफ्रीका) के नाम मे ही पहचाना गया ।

(4) दे० D.C. SIRCAR, Studies in Indian Coins, Delhi , 1968 , pp.115-125.

पक्ति (ल०द्वि० 10) में क्रमश ' श्वप्र् ' के व्यजन मिलते हैं । लेकिन पाठ सदिग्ध है और ये ही व्यजन एक ईरानी नाम ' **ख्शाव–फ्रात–बग** ' के अग हो सकते हैं , जिसका अर्थ है देवप्रिय शासक ।

132– (3) शर्यर्यन्

प्राचीन पश्चिमी दुनिया में आयातित माल को देखते हुए भारत को ही उसका निर्यातक देश माना जा सकता है , इतनी ही नही , मूल इब्रानी–अरामी अथवा यूनानी भाषाओं में व्यापारिक माल के कुछ ऐसे नाम है , जो प्राचीन भारतीय भाषाओ से स्वीकार कर लिये गये हैं । उदाहरण के लिए हम फिर राजा सुलेमान का प्रसग लें , जिसकी भाषाई प्रस्तुति उसके शासनकाल के चार सौ वर्ष बाद लगभग सा० स० पू० 550 में हुई । प्रथम–राजाग्रथ 10 22 में वर्णन है कि राजा सुलेमान के पास ' तर्शीश् ' जलयान थे , जो प्रति तीन वर्ष में एक बार आते–जाते और दूर विदेश से सोना–चादी , हाथी–दात , बन्दर और मोर लाते थे । तर्शीश् शब्द अस्पष्ट है । उसका अर्थ यहा ' दूरगामी ' अथवा ' समुद्री ' जलयान होना चाहिए [(1)] । प्रो० खाइम् रबीन् ने ' तरशीश् ' शब्द की व्युत्पत्ति भारत में ढूढ निकाली , क्योंकि सस्कृत में समध्वनि शब्द ' तोय–राशि ' का अर्थ महा–समुद्र है [(2)] ।

उसी प्रकार बन्दर के लिए मूल इब्रानी ' क़ोफ़् ' की व्युत्पत्ति सस्कृत शब्द ' कपि ' से बताई जाती है , और मोर के लिए मूल इब्रानी ' तुक्की ' का सबध तमिळ शब्द ' तोकै ' से लगाया जाता है । सुलेमानी जहाज का हाथी–दात भी सस्कृत शब्द से जोडा जा सकता है , क्योंकि हाथी को सस्कृत में ' इभ ' कहते है जब कि इब्रानी में उसे बहुवचन मे ' हब्बीम् ' कहते।

इस सदर्भ में यह प्रश्न उठता है कि क्या सम्राट अशोक के बहुभाषीय अभिलेखों में कहीं ऐसे शब्द नही मिलते , जो व्यापारिक माल के आदान–प्रदान के साक्षात् अवशेष हैं ? एक सम्भावना–मात्र प्रस्तुत

---

(1) उसकी पुष्टि तनख् के यशायाह–ग्रंथ 2 16 से होती है , जहा 'तर्शीश्'–जहाज को यूनानी अनुवाद मे 'समुद्र का'–जहाज अनूदित किया गया है । यूनानी सबधकारक संज्ञा–रूप ' थलस्सैस् ' और ' तर्शीश् ' मे समध्वनि भी है ।

(2) CHAIM RABIN , " Lexical borrowings in Biblical Hebrew from Indian languages as carriers of ideas and technical concepts " , in H.GOODMAN , ed. Between Jerusalem and Benares , Delhi , 1997, pp.25-32. भाषाई व्युत्पत्ति की दृष्टि से उनके सुझाव में अधिक जटिलता है । दूसरी बात , प्रो० रबीन् ने तमिळ शब्द ' तोयम् ' और ' इरासि ' की ओर सकेत किया , जब कि सस्कृत शब्द ही उपलब्ध हैं। फिर भी सही अनुमान है कि धान , चावल के लिए यूनानी शब्द ' ओरुज़ ' (अ० राइस्) और तमिळ ' अरिसि ' मे भाषाई सम्पर्क हो सकता है , जैसे उसी अर्थ मे इब्रानी शब्द ' मिन्नीथ् ' (दे० यहेज 27 17) और तमिळ ' अरिसि ' के पर्यायवाची शब्द ' उण्डि ' अथवा खुरुख भाषा के शब्द ' मण्डि ' मे परस्पर संबध हो सकता है ।

की जाए । एक ही उदाहरण से कोई अकाट्य प्रमाण नहीं बनता , लेकिन अन्य उदाहरणों को मिला कर यह निश्चित बात हो जाती है कि अशोकीय अभिलेखों के अभिलेखन–काल के पूर्व भी इब्रानी–अरामी तथा यूनानी भाषा–क्षेत्रों से सम्पर्क रहा होगा ।

इब्रानी–अरामी तनख् के नीति–वचन 31 24 मे उस उद्यमी पत्नी की प्रशसा की जाती है , जो कपडे (इब्र० में साधीन्) बनाकर बेचती है । यूनानी बाइबिल–अनुवाद मे कपडे के लिए ' सिन्दोन ' शब्द प्रयुक्त हुआ , जो महीन छालटी वस्त्र है । यूनानी शब्दकोशकार पस्सो के अनुसार [1] यह उत्तम सिन्दोन् वस्त्र सिधु–क्षेत्र से आयातित होता था। इससे और सूक्ष्म रेशमी कपडे के लिए यूनानी मे ' सैरिकोन् ' शब्द है , और रेशम–कीट (सिल्क्–वर्म्) को ' सैर् ' ही कहते हैं । क्या यह कोई सचल ' यात्रिक शब्द ' [2] है , जो आरभिक रेशम व्यापार के साथ आया ?

तथा–कथित ' रेशम–मार्ग ' (सिल्क्–रूट्) पर अन्तर्राष्ट्रीय रेशम–व्यापार केवल सम्राट अशोक के शासनकाल के बाद गतिशील होने लगा , परन्तु यूनानी मे ' सैर् ' शब्द का प्रयोग पहले से ही आया । तो क्यो नही उसकी व्युत्पत्ति पश्चिमोत्तर भारत महाद्वीप मे खोजें ? उस व्यापारिक आदान–प्रदान के क्षेत्र के लोगों को लघमान के अरामी अभिलेखों (ल० प्र० , 3 और ल० द्वि० , 3) में ' श्ऱ्य्ऱ्य्न् " कहा गया है । इब्रानी–अरामी धातु ' श्ऱ्ऱ् ' का अर्थ यहा ' स्वस्थ , बलिष्ठ , न्यायप्रिय ' बताया गया है । इसका एक–वचन रूप है ' श्ऱ्य्ऱ् ' (जिसे ' शारीर् ' उच्चरित करें)। इसका सबध सस्कृत ' श्री ' (प्राकृत में ' सिरी ') अथवा ' श्लील , श्रील ' (अवेस्ती में ' स्रीर– ') से हो सकता है , अर्थात् ' सुन्दर , सज्जन ' । क्या उस क्षेत्र के ' श्ऱ्य्ऱ् ' लोग उन सुन्दर , महीन रेशमी कपड़ों के उत्पादक एव व्यापारी होते थे ? क्या उन्हीं के कारण यूनानी में रेशम–उत्पादकों को ' सैरेस् ' नाम दिया गया ?

---

(1) PASSOW , ROSTA & PALM ,<u>Handworterbuch der griechischen Sprache</u> , Leipzig , 1841-57 . भारत के लिए गौरव की बात है कि यरूशलेम मे समाधिष्ट गुरु सुमुकुन्द को उसी ' सिन्दोन् ' वस्त्र के कफ़न में लपेटा गया (दे० मारकुस के अनुसार शुभ–सुमाचार 15 46) । यूनानी ' नया–विधान ' (यो 12 3) मे यह वर्णन भी मिलता है कि मरियम नामक शिष्या ने बडी भक्ति के साथ श्री गुरुपाद पर ऐसा बहुमूल्य सुगंधित तेल लगाया , जो भारत से ही प्राप्त हुआ – क्योंकि इस तेल को विशेष ' नर्र्दोस् पिस्तिकै ' कहा गया है , अर्थात् यू० ' नर्र्दोस् ' (जटामासी) स० ' नलद ' से सबंधित है और ' पिस्तिकै ' का भी रूप सस्कृत–हिन्दी ' पिशिता ' में दीखता है । दे० F ZORELL , <u>Lexicon Graecum Novi Testamenti</u> , Paris , 1961 , p.1062 : " Nardostachys Jatamansi " .
(2) दे० MICHEL CASEVITZ ," 'Mots voyageurs' from India to Greece " , in M.F.BOUSSAC & J.F SALLES , eds ,<u>Athens , Aden , Arikamedu</u> , New Delhi ,1995 ,pp. 21-26 . मूल रूप पहचानना कभी दुस्साध्य है " Such traveling words come through trade routes, often deformed due to the many adaptations "

ऊपर के विवेचन से विदित हुआ कि प्राचीन व्यापारिक सबधों का एक सीमित परिणाम भाषाई आदान–प्रदान मे दिखाई देता है । यह दर्शाया गया कि इब्रानी–अरामी तथा यूनानी भाषाओ में कुछ भारतीय शब्दो ने प्रवेश किया है । निस्सदेह ,उन की ओर से भी भारतीय भाषाओ में कुछ आगत शब्द प्रविष्ट हुए । लेकिन व्यापार के साथ और अतिरिक्त प्रभाव पड सकता है , विशेषकर जब व्यापारियों में औपनिवेशिक प्रवृत्ति हो और आप्रवासी लोग राजनैतिक आधिपत्य स्थापित करना चाहते है । ऐसे पूर्व–घटित बाह्य प्रभाव या दबाव के परिणामस्वरूप सम्राट अशोक ने अपने सीमान्त–प्रान्त के निवासियो–प्रवासियों के लिए विदेशी भाषा एव लिपि का प्रयोग किया है। अब पूछा जाए कि अरामी का इतना दूरगामी प्रभाव कैसे सम्भव हुआ ? फिर , अशोक ने अभिलेखों में शुद्ध अरामी नहीं ,वरन् ईरानी–मिश्रित अरामी का प्रयोग क्यों किया ? इसके साथ यूनानी भाषा जोडने की क्या आवश्यकता थी , जब कि सिकन्दर महान की सेना अशोक से बहुत पहले हट जा चुकी थी ? स्पष्ट है कि पश्चिम में कुछ ऐसे भाषाई , सास्कृतिक , राजनैतिक प्रभाव–क्षेत्र उठे थे ,जो किसी प्रकार अपनी स्पर्शिकाओं (tentacles) से पश्चिमोत्तर भारत को स्पर्श कर रहे थे । कम–से–कम उनकी परछाँई भारत तक पहुच गई और उनके कारण प्रशासनिक आवर्तन भी हुए ।

दूसरी ओर यह भी मानना पडेगा कि मौर्य–काल में एकीकृत किया हुआ भारत स्वय अति समृद्ध प्रभाव–क्षेत्र के रूप में उभड रहा था ।

14 अरामी प्रभाव–क्षेत्र का अभिज्ञान

IDENTIFICATION OF THE ARAMEAN SPHERE OF INFLUENCE

अशोक मौर्य के बहुभाषीय अभिलेखों के परिचायक सदर्भीकरण के इस अध्याय में उन विभिन्न प्रभाव–क्षेत्रों को ठीक–से पहचानने और समझने के लिए उनका क्रमबद्ध ऐतिहासिक परिचय देना अनिवार्य है । तभी स्पष्ट होगा कि जिस सम्पर्क–क्षेत्र में अभिलेखों का अकन हुआ , उसमें उन प्रभाव–क्षेत्रो का कैसा और कितना प्रभाव पडा । क्रमशः तीन बाह्य प्रभाव–क्षेत्र अपना प्रभाव डाल रहे थे अरामी , ईरानी तथा यूनानी । ये तीनों प्रभाव मानो बाहर से आये , लेकिन इतने मे भारत के भीतर से (मौर्य साम्राज्य के रूप में) पुन स्वतः एक आन्तरिक प्रभाव–क्षेत्र विकसित हुआ ।

विषयाधीन द्विभाषीय अभिलेखों में मुख्यत अरामी भाषा एव लिपि का प्रयोग हुआ। सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि किस क्षेत्र के लोग उस अरामी भाषा एव लिपि के अभिलेखन के लिए प्रभावी सिद्ध हुए। वृद्धावस्था की असुविधा के बावजूद जब प्रो० सी० डी० चटर्जी से डॉ० डी० आर० भण्डारकर के अभिनन्दन–ग्रथ के लिए लेख मगवाया गया , तब उन्होने अरामी के सबध में इस प्रश्न का सहज उत्तर दिया सम्राट अशोक ने प्राचीन ' कबोज ' जनपद में बसे हुए नव–कबोजो को इसलिए अरामी भाषा में सबोधित किया , क्योंकि वे अरामी भाषा–भाषी लोग ही थे और उस समय के अरामी भाषा–भाषी लोग केवल यहूदी थे [(1)] । इस अनुमान के आधार पर कि अरामी सिर्फ यहूदियो की मातृभाषा थी , पूज्य आचार्य ने अपना यह तर्क प्रस्तुत किया तक्षशिला का अरामी अभिलेख यहूदियों ने ही अपने सभागृह में लगाया था ताकि प्रियदर्शी राजा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें । माननीय आचार्य–जी का यह निष्कर्ष कि वे अरामी भाषा–भाषी लोग वास्तव में यहूदी थे , हम फिलहाल छोटी–सी सम्भावना के रूप में टाल सकते हैं । पहले व्यापकतर प्रश्न पर ध्यान दिया जाए कि वे अरामी लोग ,वास्तव में , कौन थे ?

141 आदिम अरामी ARAMEAN ANCESTORS

अरामी भाषा में अरामी लोगों को **अ॑रमाऔन्** (अग्रजी में Aramaeans/Arameans) कहते हैं , अथवा अवधारक सज्ञा–रूप (emphatic/determined state) में **अ॑रमायें** (अग्रजी में निश्चयवाचक उपपद के साथ <u>the</u> Arameans) । मूलत वे ' ॲरा॑म् ' , अर्थात् प्राचीन अराम देश में रहते थे , जो प्राय आधुनिक सीरिया देश के समान है । सम्भवत ' ॲरा॑म् ' शब्द की मूल धातु ' एऄम् ' अथवा ' एव़म् ' है , जिसका प्रधान अर्थ है ' ऊचा उठा हुआ ' । यह शायद उस ऊँचाई की ओर सकेत करता है , जो मेसोपोतामिया के दोआब के उत्तर में पठार के रूप में बनी हुई है [(2)] । ऊचाई पर रहनेवाले लोग

---

(1) C.D. CHATTERJEE , " The Aramaic language and its problems in the early history of Iran and Afghanistan " ,in S BANDYOPADHYAY ,ed .<u>Acarya-Vandana</u> .Calcutta .1983 .p 208 ·" The Aramaic-speaking people in the empire of Aśoka , were the Jews who had migrated from Western Asia long before the Mauryan supremacy was firmly established in Afghanistan" .p.226." The recognition given by Aśoka to the Jews of Afghanistan ,as his own subjects ,and to their mothertongue ,as an official language for the publication of his edicts in that country ,highly speaks of his benevolent attitude and magnanimity towards those domiciled foreigners in his empire "

(2) K. LUKE , " The Arameans ,their history & culture " . <u>Christian Orient</u> .6 ,March 1985 .p.28 . " Originally Aram was the name of a place in North Mesopotamia, which was later on used of the people dwelling there and subsequently of the bands of nomads roaming about in the areas round about" . इब्रानी तॅनख् मे दो नदियों के बीच का वह विस्तृत ऊँचा–क्षेत्र ' अ॑रम् नहॅरयिम् ' (उत 24 10) कहलाता है , जिसका यूनानी अनुवाद ' मेसों–पोतामिअ ' (दोआव) ही किया गया ।

जब अन्यत्र निकल जाते थे ,तब यहा–वहा चलनेवाले ये लोग भी ' अरामी ' कहलाने लगे। इसलिए न केवल अरामी–जातीय लोगों को , वरन् इधर–उधर घूमनेवाले यायावर लोगों को भी ' अरामी ' कहते थे । प्राचीनतम सूमेरी अभिलेखों में ऐसे चल–वासी लोगो के विषय में उल्लेख मिलते है , उदाहरणार्थ ,नगर–राज्य ऊर के पुज़ुरिश्दगन–अभिलेख में (लगभग सा० स० पू० 2000) ' अ–र–मि–(कि) ' नामक सैन्य–शिविर की ओर से चढायी गयी भेंट का सधन्यवाद वर्णन है [1] ।

पश्चिम में भी अरामी चल–वासियो के उल्लेख प्राप्त हुए ,उदाहरणार्थ प्राचीन कनानी नगर–राज्य एब्ला के एक राजसी अभिलेख मे (लगभग सा० स० पू० 1800) ' या–रमु '(='या'–देवता उन्नत हुआ) और ' दिगिर–नि–रमु ' (=हमारा 'दिगिर'–देवता उन्नत हुआ) नाम मिलते हैं [2] , जो ऊपर दी गई अराम की धातु ' र्‌अ्म् ' के अर्थ ' ऊचा उठा हुआ ' का समर्थन करते है । दिलचस्प बात है कि उन्हीं एब्लाई अभिलेखों में ' तक्षक ' (बढई) के लिए मूल शब्द ' न्ग्र् ' मिलता है – उसी शब्द ' नग्गार् ' को अरामी तक्षशिला–अभिलेख में भी पहचानने का प्रयास किया गया था (दे० ऊपर पृ० 60)। फिर , ' लिपिक ' के लिए एब्लाई शब्द ' दुब्–सर् ' मिलता है – जो अशोकीय अभि–लेखों में ' दिपि–कर ' के रूप में प्रतिध्वनित हुआ । अत ऐसे शब्दों में आदी–सामी (early Semitic) भाषा–परिवार के मूलभूत स्वरूप दिखाई देते है । आधुनिक लेबानोन देश के रास–शमरा नामक टीले का उत्खनन करने से नगर–राज्य उगरीत के अवशेष मिले लगभग सा० स० पू० 1350 के मृद्–फलक न० 15 37 पर जाति–वाचक शब्द ' अ्र्म्य् ' का निन्दात्मक प्रयोग हुआ ।

उसी काल के असीरियाई अभिलेखों में शत्रुभाव से ' अख़्लमू ' लोगो का वर्णन किया जा रहा है । अक्कादी भाषा मे ' अख़्लमू ' का अर्थ ' सगठित ' है , वे मिश्रित जाति के घुमक्कड लोग थे , जिनमें आदिम अरामी भी सम्मिलित थे [3] । असीरिया के सम्राट तिगलत–पिलेसर ने लगभग सा० स० पू० 1112 मे उनके विरुद्ध अपने युद्ध–अभियान की चर्चा की । यह ' मात् अर्–म–अ–इअ ' , अर्थात् अराम देश ,का प्रथम स्पष्ट ऐतिहासिक उल्लेख है । परतु वे राजद्रोही थे ,जो उत्तर–पश्चिम

---

(1) दे० A.DUPONT-SOMMER , " Sur les débuts de l'histoire Araméenne " , Supplement to Vetus Testamentum , vol 1 , 1953 , pp 40-49
(2) दे० H. LA FAY , " Ebla , splendour of an unknown empire " , National Geographic , vol. 154 ,6, Dec 1978 , 730-759 ; L VIGANO , " The Ebla tablets " , Biblical Archaeologist ,47 ,1984 ,6-16.
(3) दे० S. MOSCATI , " The ' Aramean Aḫlamū ' " , Journal of Semitic Studies , vol4 , 1959 ,p 307

मेसोपोतामिया मे डटे रहे । उन्होंने व्यापार–मार्गों पर कब्जा जमाया , इतना ही नही सा० स० पू० 1083 में कस्दी कुल का अरामी–जातीय अदद–अपल–इद्दीन महानगर बेबीलोन का शासक बना । अत बेबीलोन की उस अरामी शाखा के लोग ' कस्दाईन् ' कहलाने लगे , जिसका यूनानी रूपान्तर ' ख़ल्दर्योय् ' हुआ (अ० Chaldeans)। इससे अरामी भाषा के लिए पुराने शब्दकोशो में कैल्डियन् भाषा का नाम प्रचलित था । लेकिन यह नामकरण सीमित और भ्रामक है , क्योंकि असीरियाई साम्राज्य के पतन (सा० स० पू० 612) के बाद नव–बेबीलोनी लोगों को भी ' कस्दी ' (=Chaldeans) कहते हैं , जो अरामी जाति के नही है [1] । इससे सभ्रम और अधिक बढ़ता गया , क्योंकि फारसी साम्राज्य के अधीन बेबीलोन–वासी कस्दियों को इतिहासकार हैरोदोतोस् ' पुजारी ' का अर्थ देता है [2] , और दानिएल की बाइबिली कथा में उन्हें ' जादूगर , तान्त्रिक ' माना गया है [3] ।

142 अराम राज्य के अरामी ARAMEANS OF THE KINGDOM OF ARAM

वास्तविक अरामियों का मूल निवासस्थान और विकास–केन्द्र अराम देश ही रहा ,जहा दमिश्क नगरराज्य उनका मुख्य केन्द्र बना [4] । प्राचीन मिस्र के राजसी लेखों में सम्पूर्ण भूमध्यसागर–तटीय क्षेत्र को (जिस में आधुनिक इस्राएल तथा लेबानोन भी सम्मिलित हैं) ' ख़ु–रु ' कहलाता था । कालान्तर में उसी नाम का यूनानी रूप ' सुरिअ ' (सीरिया) बना , जो फारसी साम्राज्य के वि–खण्डन के बाद सीमित अर्थ में आराम देश के लिए ही प्रयुक्त होने लगा [5] । जब सा० स० पू० तीसरी सदी में यूनानी सप्तति बाइबिल–अनुवाद आरम्भ हुआ , तब अरामियों को यूनानी मे ' सुरोय् ' कहा गया और अरामी भाषा को ' सुरिस्ति ' (उद० 2 राजा 18 26) [6] । वास्तव में , पहले अनेक–अनेक क्षेत्रीय अरामी बोलियां थी , केवल सा० स० पू० प्रथम सहस्राब्दी के आरम्भ मे , जब मुख्य

---

(1) दे० BENJAMIN MAZAR . " The Aramean empire and its relations with Israel" . in The Biblical Archaeologist . 25 . 1962 . pp 101 तनख् के द्वितीय राजा–ग्रंथ 24 2 में कस्दियों को अरामियों से अलग गिना गया ।

(2) दे० **इतिहास** 1 181 । (3) दान 2 12 ।

(4) दे० MERRILL F. UNGER . Israel and the Arameans of Damascus .London 1957· " commonly considered to be the oldest continuously occupied city in the world " .

(5) सेल्यूकी शासन् के अधीन उसी क्षेत्र को ' कोय्लै सुरिअ ' कहते थे । ' कोय्लै ' का अर्थ ' खोखला ' है , क्यों–कि सीरिया की ओरोन्तौस् नदी की खाई से आरम्भ होकर यह क्षेत्र यर्दन की घाटी में नीचे उतरता था ।

(6) यहूदी इतिहासकार फ़्लबिओस् योसैपोस् स्पष्ट रूप से कहता है कि ' अरमैयोय् ' और ' सुरोय् ' मे कोई अन्तर नहीं है (FLAVIUS JOSEPHUS . Antiquities of the Jews I ·6)

व्यापारिक नगर–राज्य दमिश्क में अरामी एक स्थायी दरबारी भाषा के रूप में प्रभावी हुई , तब वह अपनी परिपक्व अवस्था मे आई । इसे ' प्रारम्भिक अरामी राजभाषा '(Early Official Aramaic) मान सकते हैं । यह वही अरामी भाषा है , जिसे मूल में ' ॲरामीथ् ' (अ० ऐरमेइक्) कहते हैं और जो राज–सीमाओं को पार करके पाच सदियो के बाद अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क–भाषा बननेवाली थी । लगभग उसी समय , जब दमिश्क राजधानी बनी , इस्राएल एक प्रतिस्पर्धी राष्ट्र के रूप में खड़ा हुआ और उसकी राजधानी यरूशलेम में ' ड़िभ्रीथ् ' , अर्थात् इब्रानी (हीब्रू) स्थायी दरबारी भाषा बनी ।

भाषाई दृष्टि से देखें , तो अरामी तथा इब्रानी दोनो ' सामी '(Semitic) भाषा–परिवार के अन्त–र्गत गिनी जाती हैं । यहूदी परम्परा की पौराणिक कथा के अनुसार महाप्रलय के बाद नूह के ज्येष्ठ पुत्र शेम से सात पुत्र और इक्कीस पौत्र उत्पन्न हुए , जिनके नाम पर मानव–जाति की एक तिहाई शेम–वशी (सामी) मानव–समूह अथवा राष्ट्र बने । ' अराम ' नूह के पुत्र शेम के प्रथम सात पुत्रो में से एक है [(1)] । वास्तव में , जातीय दृष्टि से अरामी लोगो की मुख्य शाखा का उद्भव सम्भवत ' अमोरी ' नामक मूल वश–स्तभ से हुआ [(2)] । प्राचीन अक्कादी भाषा मे ' अमुर्रू ' का अर्थ ' पश्चिमी ' है (क्योंकि मेसोपोतामिया की ओर देखने से भूमध्यसागर–तट के निवासी पश्चिम दिशा में हैं !) । आदि–अमोरी लोग उस पश्चिमी क्षेत्र में फैल गये , जिसे ' कनान ' [(3)] कहते हैं और जिसमे उपरोक्त एब्लाई एव उगरीती सभ्यता के केन्द्र पनप उठे। कई अमोरी लोगों ने मेसोपोतामिया की ओर चलकर ' मारी ' नगर को अपना केन्द्र बनाया । उसी प्रकार कनान में भी अन्य अमोरी समूह अपने–अपने स्थान पर अलग–अलग राष्ट्र के रूप में उमड़ पड़े , जैसे अराम , इस्राएल और फेनीके राष्ट्र । भाषाई दृष्टिकोण से भी मानना पड़ेगा कि एक–ही ' आदी अमोरी ' से अरामी , इब्रानी और फेनीकी [(4)] भाषाए उत्पन्न हुई। इसलिए ये तीनो भाषाए उत्तर–पश्चिमी सामी भाषाए कहलाती है ।

---

(1) दे० E LIPIŃSKI , " Les Sémites selon Gen 10.21-30 et 1 Chr 1.17-23 " , in Zeitschrift für Althebraistik , 6, 1993 , pp 193-215

(2)दे० A. HALDAR , " Arameans " ,The Interpeter's Dictionary of the Bible ,Nashville. 1986(1962). p 115 . " Also Aramean[= Aramaic] is to be classified as a language which developed from Amorite "

(3)' कनान ' शब्द का अर्थ बैंगनी रग है ,जो समुद्र–तटीय शख–मीन से मिलता था और जिससे कीमती वस्त्र रगा जाता था । व्यापार मे इसका इतना महत्व था कि सम्पूर्ण क्षेत्र का वही नाम पड़ा ।

(4) फेनीकी व्यापारी बड़े साहसी थे और भूमध्यसागर के दूर पश्चिम तक निकल जाते थे । यूनानी में ' फॉयनिकै ' का अर्थ लाल–बैंगनी रंग ही है । परन्तु ' इब्रानी ' शब्द अपमानजनक ' हब्बीरू ' अपशब्द से बना , अर्थात् डाकू ,गिरोही । मिस्र देश में स्थित तेल–अमरना से सा० स० पू० चौदहवी सदी के पत्र मिले , जो कनान में तैनात मिस्री अधिकारियों की ओर से फरओ अमेनोफिस चतुर्थ के नाम इसलिए लिखे गये कि ' हब्बीरू ' वहा अशान्ति फैला रहे थे । इस्राएली पूर्वज ऐसे ही ' हब्बीरू ' थे । उनके कुछ जाति–भाई मिस्र मे गुलाम बने , वे लगभग सा० स० पू० 1240 में मूसा के नेतृत्व में भागकर कनान देश को लौट आये। यह विमुक्ति–कथा इस्राएल की धार्मिक अनुभूति का आधार है ।

लगभग सा० स० पू० 1000 में सयुक्त इस्राएल के राजा दाऊद अराम देश पर प्रबल हुआ (दे० 2 शम 8 3–8 , 10 15–19) , लेकिन उसके पुत्र सुलेमान के शासनकाल के अन्त मे अराम फिर स्वतन्त्र हुआ (1 रा 11 23–25) । इस्राएल विभाजित हुआ , जबकि दमिश्क के हदद–राजवश ने अराम को सुदृढ , एकीकृत राज्य बनाया । यद्यपि अरामी सैनिक इस्राएल के उत्तरी राज्य और कभी दक्षिणी राज्य से लडते रहे , फिर भी अराम राज्य के लिए सब से बडा खतरा महाशत्रु असीरिया की ओर से था । अराम का राजा हजाएल अत्यन्त शक्तिशाली था (दे० 2 रा 10 32 , 12 17–18), यहा तक कि उसने सा० स० पू० सन् 842 में असीरिसाई सम्राट शलमनेसर तृतीय का सामना किया[(1)] । लेकिन धीरे–धीरे अराम राज्य को झुकना पडा ,जब तक दमिश्क सा० स० पू० 732 में सम्राट तिगलत–पिलेसर तृतीय के हाथ से विनष्ट नही किया गया । दमिश्क अब असीरियाई साम्राज्य के अधीन ' फरात नदी के पार ' नामक क्षेत्र का केवल प्रान्तीय नगर बना रहा ।

143 असीरियाई , बेबीलोनी एवं फारसी साम्राज्यों में समाहित

ASSIMILATED WITHIN THE ASSYRIAN , BABYLONIAN AND PERSIAN EMPIRES

पराजित अराम–राज्य विजेता साम्राज्य में अपनी भाषा और लिपि को फैलाने मे सफल हुआ । जिन अरामियों को असीरियाई लोग तुच्छ समझते थे , उन्हीं की भाषा और लिपि ने सा० स० पू० आठवी सदी से लेकर असीरियाई साम्राज्य पर और बाद में नव–बेबीलोनी साम्राज्य पर अपनी छाप लगा दी। निर्विवाद है कि अरामी भाषा और लिपि ने अराम देश की सीमाओं को लाघ कर मेसोपोतामिया में अर्ध–शासकीय प्रयोग के लिए अपना स्थायी स्थान ही बनाया । इसका कारण था कि असीरिया और बेबीलोन की अक्कादी भाषा और उसकी कीलाक्षर–लिपि की तुलना में अरामी भाषा–लिपि सरल थी ।

अराम देश के पश्चिमी–दक्षिणी पडोसियों की ओर भी अरामी का प्रभाव बढता गया। उदाहरणार्थ , इब्रानी तॅनॅख् में लगभग सा० स० पू० 700 की एक घटना के वर्णन से उस समय की भाषाई स्थिति का आभास होता है । असीरियाई सेना यरूशलेम नगर की घेराबन्दी कर रही थी और सेनाध्यक्ष ने दुभाषिये की सहायता से इस्राएली जनता को इब्रानी भाषा में ही धमकाया । इस पर इस्राएली नेता

---

(1) दे० शलमनेसर का काला ऑबलिस्क् (चौकोर सूचीस्तम्भ) ,जिसपर अक्कादी कीलाक्षरों में न केवल दमिश्क के राजा हजाएल , वरन् इस्राएल के उत्तरी राज्य के राजा येहू का नाम भी अंकित है । दोनो कर–दाता के रूप में चित्रित हैं ।

उसे आगे बोलने से रोकने लगे ' कृपया , अपने दासो से अरामी भाषा मे बोलिए । इसे हम भी समझते है । इन लोगो के सामने ,जो दीवार पर बैठे है ,हमसे इब्रानी भाषा में बातचीत मत कीजिए। ' इस प्रसग से स्पष्ट है कि ,वर्णन के प्रस्तुतकर्ता के अनुसार ,उस समय इस्राएल की आम जनता अरामी से अपरिचित थी और केवल उच्चाधिकारी अरामी मे बात कर सकते थे। वे दिन दूर नही थे , जब असीरियाई साम्राज्य के पतन के बाद नव-बेबीलोनी सम्राट नबूकदनेसर सा०स०पू० 587 में यरूशलेम का विनाश करनेवाला था । लेकिन ध्यान दे ,उन दिनो बेबीलोन की ओर निष्कासित किये गये यहूदा-वासियों का सम्पर्क बेबीलोन की अक्कादी भाषा से नहीं ,बल्कि अधिकतर अरामी भाषा से हुआ । सा०स०पू० 539 मे जब राजा कुस्रू ने बेबीलोन पर महाविजय प्राप्त कर विशालतम फारसी साम्राज्य की स्थापना की ,तब एक कोने से दूसरे कोने तक प्रशासन और व्यापार की व्यवस्था करने हेतु अरामी भाषा सहायक अथवा सम्पर्क भाषा के रूप में उपयोगी सिद्ध हुई ।

इस्राएली समाज मे भाषा-परिवर्तन का स्पष्ट सकेत तॅनख्-धर्मग्रथ में वर्णित एक दूसरे प्रसग मे मिलता है फारसी साम्राज्य की स्थापना के बाद निष्कासितो को स्वदेश लौटने की अनुमति मिली , सभवत सा०स०पू० 428 में[(1)] यरूशलेम-वासियों की बडी सभा हुई और शास्त्री एज़्रा ने इब्रानी व्यवस्था-ग्रथ से पाठ करवाया । लेकिन शास्त्र का पाठ जनता की समझ में नहीं आ रहा था। अत अरामी भाषान्तर मे ही उसका अर्थ समझाना पडा (दे० नहे 8 8)। यहूदा-वासी जन-साधारण ,जो पहले अरामी से अनभिज्ञ था , अब केवल अरामी में ही शास्त्र-पाठ समझ पा रहा था ।

इस प्रकार फारसी साम्राज्य के काल में ' (फरात) नदी के पार ' नामक पश्चिमी क्षत्रप-क्षेत्र में अरामी सामान्य बोलचाल की भाषा थी - न केवल यहूदा-वासी इस्राएलियों के मध्य , वरन् प्राचीन अराम-देश के अरामी लोगों में भी (जिनकी मूल मातृभाषा स्वभावत अरामी थी) । फारसी साम्राज्य के पूर्वी क्षत्रप-क्षेत्रों में भी अरामी भाषा आवश्यक्तानुसार प्रशासनिक-व्यापारिक सम्पर्क-भाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी । इसलिए मिस्र की नील-नदी से लेकर पश्चिमोत्तर भारत की सिंधु-नदी तक प्राय एक-सी साम्राज्यिक अथवा शाही अरामी भाषा का बोल-बाला था । वास्तव में ,उसे कम ' बोला ' जाता

---

(1) यह वर्ष एज़्रा-ग्रथ 77 में पाठसुधार करने से निर्धारित हुआ सम्राट अर्तक्षत्र-प्रथम (सा० स० पू० 464-424) के ' 7वें वर्ष ' के बदले में ' 37वा वर्ष ' पढना चाहिए ,दे०J.BRIGHT.A History of Israel.London.1988(1960).p.400.

था । केवल अपवाद के तौर पर ऐसे प्रवास–स्थान थे ,जहा वास्तविक अरामी–जातीय लोग अथवा इस्राएली/यहूदी लोग प्रवास करने आये और सामान्य बोलचाल की भाषा के रूप मे अरामी प्रयुक्त करते रहे। अब प्रश्न उठता है , क्या ऐसे अरामी–भाषाभाषी लोग सिधु–घाटी मे कभी रहे और क्या वे सम्राट अशोक के काल तक वही रहे [(1)] ?

144 साम्राज्यों के उत्तरकाल के अरामी लोग

ARAMEANS OF THE POST-IMPERIAL PERIOD

ऊपर के ऐतिहासिक परिनिरीक्षण से स्पष्ट है कि ,विशेषकर अरामी भाषा के प्रभावशाली विस्तार के कारण ,पश्चिम एशिया में एक निश्चित अरामी प्रभाव–क्षेत्र का महत्व था । लगभग सा०स०पू० 500 में अरामी सम्पूर्ण फारसी साम्राज्य की सम्पर्क–भाषा के स्तर तक पहुची थी [(2)] । लेकिन दो सदियों के बाद ,जब से सिकन्दर महान ने पश्चिम एशिया को झकझोरा ,तब से अरामी को मुख्य स्थान से हटना पड़ा । ऐसा नहीं कि एकाएक यूनानी भाषा ने ही अरामी का स्थान ले लिया । स्थानीय भाषाओं का भी प्रादुर्भाव होने लगा । अब विद्वानो के दृष्टिकोण में अन्तर इस बात पर निर्भर रहता है कि साम्राजिक अरामी के इस उत्तरकाल मे उसे कितना महत्व दिया जाए । ई० कुत्शर् [(3)] के अनुसार ' मध्य अरामी ' की अवधि सा०स०पू० 300 से आरम्भ होती है और जे० फ़ित्स्मायर् [(4)] उसका आरम्भ एक सदी और स्थगित करते हैं ,परन्तु ' अरामी भाषा की विकास–सारिणी ' की निम्न तालिका में भिन्न प्रस्तुति है

---

(1) इस सदर्भ मे यह विदग्ध (ingenious) सुझाव भी उल्लेखनीय है कि सिंधु–घाटी एव प्राचीन सूमेर के आपसी सम्पर्क के कारण इस्राएल के कुलपिता अब्राहम पश्चिमोत्तर भारत के मूल निवासी थे दे० MADAN MOHAN SHUKLA, " The Hebrews belong to a branch of Vedic Aryans" ,Journal of the Oriental Institute of Baroda ,28, 1979, 3-4, 44-57 , BHARAT JHUNJHUNWALA, " Patriarchs of the Indus" (a private study), Jaipur, 1993 । लेकिन अब्राहम–सबधी साहित्यिक–धार्मिक प्रस्तुति सीधे ऐतिहासिकता की अभिव्यक्ति न मानी जाए । गभीर इतिहासकार किसी भी अभिलाषाकल्पित चिंतन से सतर्क रहते ,ठोस वैज्ञानिक आधार मिलने पर ही भावनात्मक अनुमान को प्रमाणित मानते । वास्तव मे , इब्रानी तॅनख् के व्यवस्था–विवरण ग्रथ 26.5 में इस्राएली आराधकों की यह उद्घोषणा मिलती है कि ' मेरे (आदि) पिता यहा–वहा भटकनेवाले अरामी जाति के पुरुष थे ' (मूल मे ॲरम्मी ओबेंध् आबीं) । इस पाठ के सदर्भ के अनुसार 'इस्राएल' (अर्थात् याकूब) की ओर संकेत है ,जो अराम–क्षेत्र से भटकते हुए ,भागते हुए लौट आये (उत 31) – दे० A MILLAR, " A wandering Aramean" ,Journal of Near Eastern Studies ,39, 1980, 153-155 ' " a refugee, a political fugitive from Aram" । मूल ' ओबेंध् ' का दूसरा अर्थ है कि इस्राएल/याकूब उस समय वृद्ध हो चुके थे , इसलिए ' कमजोर , मृतप्राय' ही थे – दे० P CRAIGIE, The Book of Deuteronomy, Grand Rapids, 1976 । हम ऊपर देख चुके हैं कि आदि–अरामी लोग ' अमोरी ' शाखा में सम्मिलित थे , वे कभी मेसोपोतामिया में भी फैले हुए थे । अत यह कहना अधिक सही लगता है कि " the ancestors of Abraham belonged to the Aramean tribes of North Mesopotamia" (K.LUKE, op cit ,p 28) । मूलत अरामी और इस्राएली (और सभी मानव!) जाति–भाई–बहिन है।

(2) दे० E.Y. KUTSCHER , " Aramaic " , in Encyclopaedia Judaica , Jerusalem , 1978 (1972), vol 3, p.260: " This particular Aramaic dialect served not only as the official language of Persia, but also as the lingua franca of the Near East " . (3) E.KUTSCHER (4) J.FITZMYER

अरामी भाषा की विकास–सारिणी

सा०सं०पू० 2000 से सामान्य पश्चिमोत्तरी सामी भाषा (Common Northwest Semitic)

सा०सं०पू० 1500 से आदि अरामी (Proto-Aramaic ,जर्मन में Uraramäisch)

सा०सं०पू० 1200 से पुरातन अरामी (Archaic Aramaic ,जर्मन में Früharamäisch)
– विभिन्न स्थानीय बोलियाँ , उदाहरणार्थ समाली (Sama'alian) ।

(1) सा०सं०पू० 11वीं सदी से 2री सदी सा०सं० तक **प्राचीन अरामी** (Old Aramaic) **की कालावधि**

सा०सं०पू० 1050 से प्रारम्भिक शासकीय अरामी (Early Official Aramaic अथवा Ancient Aramaic, जर्मन में Altaramäisch) – विभिन्न नगर–राज्यों में प्रयुक्त ।

सा०सं०पू० 900 से प्रमुख नगर–राज्य दमिश्क की मानक राजकीय अरामी (Standard Regal Aramaic)

सा०सं०पू० 732 में दमिश्क के पतन से अरामी का विस्तरण–काल (expansion period) आरम्भ ।

सा०सं०पू० 700 से **आद्य साम्राज्यिक अरामी** (Early Imperial Aramaic,जर्मन में Frühreichsaramäisch)
– असीरियाई / बेबीलोनी साम्राज्य में अक्कादी राजभाषा के साथ सीमित सम्पर्क–भाषा अरामी ।

सा०सं०पू० 500 से **श्रेण्य साम्राज्यिक अरामी** (Classical Imperial Aramaic ,जर्मन में Reichsaramäisch)
– फारसी साम्राज्य में ईरानी राजभाषा के साथ व्यापक सम्पर्क–भाषा अरामी ।
यद्यपि शासकीय प्रयोग में अरामी का एकीकृत स्वरूप था , फिर भी उसके क्षेत्रीय अभिलक्षण (dialectical features) दिखाई देने लगे
- पश्चिम में ऐलिफ़ैंटाइन् की ' मिस्री अरामी ' ,
- पूर्व में पर्सेपलिस् की प्रशासकीय अरामी ।

सा०सं०पू० 331 में फारसी साम्राज्य के पतन से अरामी का सिकुरण काल (reduction period) आरम्भ ।

सा०सं०पू० 300 से **अन्त्य साम्राज्यिक अरामी** (Late Imperial Aramaic)
– यूनानी राज्यों में अखमेनी प्रशासनकाल की सम्पर्क–भाषा अरामी का प्रयोग कम होता गया , लेकिन सीमान्त–क्षेत्रों में वह स्थानीय परिवेश में प्रबल रही
- पश्चिम में ऐनटोल्यन् और (इब्रानी से प्रभावित) ' बाइबिली ' अरामी ,
- पूर्व में पश्चिमोत्तर भारत की सीमा पर ' अशोकीय ' अरामी ।

सा०सं०पू० 247 में पार्थिया में अर्सकीदी प्रशासन की स्थापना से साम्राज्यिक अरामी की अवनति होती गयी , अरामी का विशाखन–काल (diversification period) आरम्भ ।

सा०सं०पू० 200 से सक्रामी अरामी (Transitional Aramaic)– इस अवधि को विद्वान चाहे मध्य अरामी का आरम्भ मानते है अथवा प्राचीन अरामी की शेष अवधि । जनभाषा अथवा मात्र साहित्यिक भाषा के रूप में यहा–वहा क्षेत्रीय प्रयोग बना रहा , परन्तु अरामी का भौगोलिक विभाजन और स्पष्ट होता गया
- दक्षिण–पश्चिम में यहूदी–कुमरानी और नबाती ,
- उत्तर–पूर्व में पालमीरी ,प्राचीन सीरी और हत्री ।

(2) 2री सदी सा०सं० से 7वीं सदी सा०सं० तक **मध्य अरामी** (Middle Aramaic)**की कालावधि**
- पश्चिमी शाखा उद० सामरी ,पलिश्ती (यहूदी और मसीही) ,दमिश्की ,
- पूर्वी शाखा उद० सीरी (विशेषकर इडेस में) ,बेबीलोनी (यहूदी) ,मन्दी ।

(3) 7वी सदी सा०सं० से वर्तमान तक **आधुनिक अरामी** (Modern Aramaic or Neo-Aramaic)**की कालावधि**
सीरिया (मल्लूल) और ईराक (कुर्दिस्तान) में नव–अरामी की कुछ प्रतिनिधि जीवित भाषाए ।

इस तालिका मे अरामी भाषा के स्वरूप के सबध मे परिणामस्वरूप सुझाव दिया गया है . जो अशोकीय अभिलेखो की भाषा के निर्धारण के लिए निर्णायक है । सा०स०पू० 300 के बाद की अवधि को "साम्राज्यिक अरामी" का अन्त्य काल माना गया है [1] । यद्यपि विशेषकर पूर्व क्षेत्र मे सम्पर्क-भाषा अरामी अपना स्थानीय परिवेश धारण करने लगी . फिर भी वह अब तक प्राचीन अरामी का साम्राज्यिक रूप कहलाने के योग्य रही । केवल सा०सं०पू० 200 के पश्चात् एक "सक्रामी" रूप बनता गया . जिसका पूर्व क्षेत्र मे ईरानी से मिश्रित या रूपान्तरित भ्रष्ट अरामी का उदाहरण मिलता है । इससे पहले एक विशिष्ट "अशोकीय अरामी" स्थापित करने का प्रावधान है . जिसे (कुछ प्राचीन-ईरानी व प्राकृत शब्दो के प्रयोग के बावजूद) "अन्त्य साम्राज्यिक अरामी" का शुद्ध रूप माना जाए ।

अरामी शब्द के साथ "साम्राज्यिक" जोड़ने का यह तात्पर्य नहीं है कि सम्पूर्ण साम्राज्य मे केवल अरामी प्रयुक्त होती थी । यूनानी इतिहासकार हैरोदोतोस् ने साक्षी दी है कि सम्राट दारा-प्रथम ने जब एक-साथ दो अभिलेख-स्तम्भ खड़ा किये . तब पहला लेख यूनानी लिपि मे अंकित किया गया और दूसरा लेख " अस्सुरिअ " लिपि मे — जिसका अर्थ यहाँ कीलाक्षर लिपि है (**इतिहास** 4:87) । यद्यपि कभी वही प्रशासनिक ईरानी भाषा कीलाक्षरो मे नहीं वरन् अरामी व्यजन-लिपि मे अभिलिखित की जाती थी . फिर भी सा०सं०पू० द्वितीय सदी के " उरुक "-लेख के नमूने से स्पष्ट है कि अपवाद के तौर पर अरामी भाषा को कीलाक्षरो में ही लिखा जा सकता था ।

दूसरी ओर प्रथम सदी सा०सं० के यहूदी इतिहासकार योसैपोस् का साक्ष्य उपलब्ध है । उसने रोम के विरुद्ध सन् 66-70 के यहूदी विद्रोह मे भाग लिया था . जिसके संबंध मे उसकी यूनानी रचना

---

(1) के० बेयर् की शब्दावली में "अखामेनी के बाद की साम्राज्यिक अरामी" = "nachachämenische Reichs-aramäisch" (दे०KLAUS BEYER .Die aramäischen Texte vom Toten Meer .Göttingen .1984 p 32)

"यहूदी महायुद्ध" प्रसिद्ध है । परन्तु ध्यान दे कि योसैपॉस् ने उस यूनानी इतिहास-रचना का पहला सस्करण अरामी भाषा में ही तैयार किया था , क्योकि " वह उन पाठको तक अपनी बात पहुचाना चाहता था जो मेसोपोतामिया से भी आगे रहते और यूनानी नहीं समझते हो " [1] । अनुमानत दूर पूर्व के वे अरामी-भाषाभाषी पाठक न केवल प्रवासी यहूदी थे । स्थानीय लोग भी पुरानी सम्पर्क-भाषा अरामी इसलिए पकड़े रहे कि वे बढ़ते हुए यूनानवाद व रोमवाद का सामना कर सके और शनै-शनै अरामी को अपनी सस्कृति के अनुकूल बना सके । उदाहरणार्थ , सीरिया (प्राचीन अराम) देश मे " सीरी " (सिरिऐक्) भाषा का विकास हुआ , जो अरामी-भाषाभाषी गुरु सुमुकुन्द के नवशिष्यो की धर्मशास्त्रीय भाषा-लिपि बनी और अनुष्ठानिक भाषा के रूप मे दक्षिण भारत के गुरु-पथियो की आराधना मे प्रयुक्त होती रही [2] । अब स्पष्ट होना चाहिए कि अरामी भाषा की विकास-सारिणी मे प्रतिपादित " मध्य अरामी " का आरम्भ केवल दूसरी सदी सा०स० से गिना जाए । लेकिन सातवीं सदी के बाद , अरबी भाषा की बढ़ोतरी से , अरामी प्रायः लुप्त होती गयी और " नव-अरामी " के नाम से आज तक जीवित बची रही [3] ।

145 विशिष्ट टिप्पणी : पूर्व की ओर उत्प्रवास करनेवाले अरामी-भाषाभाषी

SPECIAL NOTE : ARAMAIC-SPEAKERS EMIGRATING TO THE EAST

क्या यह सम्भव है कि सा०स०पू० तृतीय सदी मे कुछ अरामी-भाषाभाषी लोग पश्चिमोत्तर भारत तक पहुंच आये ? क्या ऐसे उत्प्रवासियो मे इस्राएली सम्मिलित थे ?

---

(1) दे० FERGUS MILLAR , "Empire , community and culture in the Roman Near East : Greeks, Syrians , Jews and Arabs " ,Journal of Jewish Studies ,38, 1987 ,p 151

(2) दे० THOMAS ARAYATHINAL , Aramaic (वास्तव में Syriac) Grammar ,Mannanam(Kerala) ,1957 : " The dialect of Edessa became the literary and liturgical language of the Aramaic Christians , most of them gave up their name 'Arameeans' and called themselves 'Syrians' and their language 'Syriac' " (Vol.I Introd)

(3) दे० E.LIPIŃSKI ,Studies in Aramaic Inscriptions and Onomastics ,Vol.I,Louvain,1975,p 12 " Western Aramaic is actually used in the Syrian villages of Ma'lula, Bah'a, and Guba'din , while East Aramaic dialects continue to be used by Christians in the dictrict of Ṭūr 'Abdin , by the Mandaeans of Persia (Khuzistan) , and both by Jews and by Christians in the regions situated between Lake Urmia and Lake Van, and in the region north of Mosul ".

145~(1) मेसोपोतामिया में निष्कासित इस्राएली

असीरियाई साम्राज्य के विस्तारवादी अभियानो मे विरोधी विजातियो को स्थानान्तरित किया जाता था। इब्रानी-अरामी तनख् के राजा-ग्रंथ के अनुसार सम्राट सारगोन ने इस्राएल की उत्तरी राजधानी सामरी के पतन के बाद (सा०स०पू० 722 मे) हजारो इस्राएलियो को पूर्व की ओर निष्कासित किया। आश्चर्य की बात नही कि महानगर नीनवे से प्राप्त अभिलिखित सामग्री मे ' ह् व् श् अ् ' (होशे) जैसे इस्राएली नाम मिलते हैं[1] ।

"प्राचीन यहूदी इतिहास" नामक ग्रंथ मे योसैपास् लिखता है कि इस्राएल के बारह कुलो मे से पूरे दस कुल हटाये गये (9:14) । जब सा०स०पू० 586 मे दक्षिणी राजधानी यरूशलेम का पतन हुआ, तब शेष दो कुल भी नव-बेबीलोनी साम्राज्य मे निष्कासित हुए । परन्तु फारसी साम्राज्य के आगमन पर उन्हे लौटने का अवसर मिला । योसैपास् के शब्दो में " दोनो कुल यहूदा तथा बिन्यामिन कुछ लेवीय पुरोहितो के साथ शीघ्रता से यरूशलेम को लौट आए , यद्यपि उनमे से बहुत-से इस्राएली बेबीलोन मे रह गये " (प्र०यहू०इति० 11:1) । उनके अतिरिक्त उपर्युक्त दस कुल भी फरात नदी के पार रह रहे थे : " एक विशाल समुदाय , जिसकी सख्या अनगिनत है । "

इस प्रकार यहूदियो-सबधी साहित्य मे " दस खोए हुए कुलो " की चर्चा होने लगी । पृथ्वी-भर के विभिन्न समुदायो मे परस्परविरोधी दावेदार उठे कि उन्हें खोए हुए कुलो के वशजों मे गिना जाए[2] । फिर भी, वास्तविकता यह है कि बहुत-से निष्कासित इस्राएली अपने निष्कासन के देश में प्रवासी के रूप मे बस गये और समृद्ध होते गये । प्रथम सदी सा०सं० मे बेबीलोन के यहूदियो की सख्या दस लाख तक बढ गयी ।[3] स्वाभाविक है कि उनमे से मेहनती व्यापारी और पूर्व की ओर जा निकले होगे ।

145~(2) ईरान में

प्राचीन इस्राएली धर्म-साहित्य मे अनेक ऐसी रचनाए मिलती है , जो केवल फारसी साम्राज्य की पृष्ठभूमि से समझ मे आ सकती हैं । उदाहरणार्थ ,एस्तर-ग्रंथ की कथा इस प्रकार आरम्भ होती है :

---

(1) W HALLO,"From Qarqar to Carchemish . Assyria and Israel in the light of new discoveries".Biblical Archaeologist . 23,1960,pp 34-61

(2) H MAY,"The ten Lost Tribes",Biblical Archaeologist ,6,1943,pp.55-60 " Dubious and unverifiable tradition,superficial similarities of customs, absurdly fantastic etymologies,and pseudo-archaeology are made to support the hypothesis, while contrary evidence is ignored, rationalised or distorted " उदाहरणार्थ , तनख् के व्यवस्था-विवरण ग्रंथ 29·28 मे कहा गया कि इस्राएलियों को सुधारने हेतु उन्हें " दूसरे देश की ओर " हटाया गया । " दूसरे देश " के शब्द "दूसरे" को मूल इब्रानी पाठ मे " अखेरेथ् " पढना चाहिए , लेकिन गलत उच्चारण से उसे किसी देश का नाम " अर्सारेथ् " समझा लिया गया (दे० 2 एस्द्रास 13.45)। चूंकि कुछ अफगानी अपने को इस्राएल के वशज मानते हैं , इसलिए तथाकथित " अर्सारेथ् " देश को अफगानिस्तान का " हजारा " क्षेत्र से मिलाया गया (दे०The Jewish Encyclopedia ,art "Afghanistan") । उसी प्रकार बाइबिली स्थान "नदी-तट गोजान " (2 रा 17 6) को अफगानिस्तान का " गोजकान " माना गया , यहाँ तक कि 15वीं सदी के इब्राहीम फरिसोल ने उसे गंगा नदी-तट का क्षेत्र बताया ।

(3)दे० RAN ZADOK, "Notes on the early history of the Israelites and Judaeans in Mesopotamia" Orientalia 51 1982 pp 391-393,A OPPENHEIMER,Babylonia Judaica in the Talmudic Period ,Wiesbaden 1983,J NEUSNER A History of the Jews in Babylonia , vol I : The Parthian Period,Leiden,1968

" सम्राट क्षयर्ष , सिन्धु (इब्रानी मे : होद्दू) से इथियोपिअ तक, एक सौ सत्ताईस प्रदेशो पर राज्य करता था " । इस कथा मे सुन्दरी एस्तर सम्राट की पटरानी बन जाती है और अपने सहजातीय यहूदी प्रवासियो की रक्षा के लिए निवेदन करती है । ग्रथ मे ईरानी नामो की भर-मार है[1] ।

प्राचीन यूनानी बाइबिल-अनुवाद मे उपलब्ध तोबीत-ग्रंथ की कथा किसी इस्राएली परिवार के सबध मे है ,जो असीरियाई साम्राज्य मे निष्कासित है ; लेकिन कथा की प्रस्तुति मे अनेक प्रसग है जो फारसी साम्राज्य के प्रभाव से रगे हुए है । उदाहरणार्थ , सुहाग-रात मे नव-दूल्हे को मारनेवाले भूत का नाम : " अस्मोदेव " (यूनानी मे : अस्मोदेव्स्) , जो अवेस्ता में उल्लिखित दुष्टात्मा " aēšma daēva " को याद दिलाता है । वृद्ध तोबीत के उपदेश मे भी ईरानी विचारधारा के अश मिलते हैं , जैसे शुभ कर्मो की " अच्छी निधि "(तो 4:9)[2] ।

यूनानी बाइबिल-अनुवाद के अतिरिक्त ग्रथो मे एस्द्रास नामक प्रथम ग्रथ , अध्याय 3-4 मे सम्राट दारा के अगरक्षको के उस दिलचस्प विवाद का वर्णन सुरक्षित है , जिसमे अगूरी को नही , राजा को नही , स्त्री को नही , वरन् सत्य को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है । जब इस विषय को राजदरबार की आम सभा मे पेश किया गया ,तब " अिन्दिकै " का भारतीय क्षत्रप भी उपस्थित था (1 एस्द्र 3:2)। इस प्रसग पर आगे भी विचार करेगे ।

यहूदी-ईरानी (एव भारतीय) अन्त सास्कृतिक आदान-प्रदान का अद्वितीय नमूना उस व्यापारिक केन्द्र का है , जिसका द्विभाषीय नाम " **दूरा-अेव्रोपोस्** " है (अर्थात् अरामी शब्द " दूरा " = दीवार और यूनानी विशेषण " अेव्-रोपोस् " = सुविस्तृत)। वह फरात नदी पर स्थित एक प्राचीन पार-वहन स्थल था[3] । यूनानी राजा सेलेव्कोस् - प्रथम ने इसे विकसित किया , लेकिन इस्राएली व्यापारी पहले से वहाँ सक्रिय थे । सन् 245 सा०स० में उन्होने अपने एक छोटे प्रार्थनालय के स्थान पर एक भव्य सभागृह का निर्माण किया[4] ,जो कलात्मक ढंग से सजाया गया और अरामी,यूनानी एव पहलवी अभिलेखो से

---

(1) दे० E.YAMAUCHI Persia and the Bible .Grand Rapids. 1990 ,R MAYER,"Iranischer Beitrag zu Problemen des Daniel- und Ester-Buches",Lex tua Veritas (Fest. H Junker),Trier,1961 ,pp 127-135 -- उदहरणार्थ "paršan-dāta(created for war?), ari-data". यहूदियो की परम्परा है कि अब तक रानी एस्कर की कबर ईरान में मौजूद है , लेकिन दे० E. HERZFELD. Archaeological History of Iran ,1935 ,p 106 "The Jewish colonies of Hamadan and Isfahan do not go back ,as is supposed, to the Assyrian and Neo-Babylonian epoch, but to the beginning of the fourth century A.D . 'Esther's Tomb' is in fact of Shūshandukht, wife of Yazdegerd-I ,who founded a Jewish colony at Isfahan"

(2) दे० G WIDENGREN,"Quelques rapports entre Juifs et Iraniens a l'epoque des Parthes" Supp to Vetus Testamentum. 4,1957,pp 197-241 -- लेखक निष्कासनेतर यहूदी धर्मदृष्टि मे इन विषयों पर फारसी धर्म का प्रभाव स्वीकारते हैं : पुनरुत्थान , न्यायदिवस , नरक , स्वर्गलोक , शैतान , युगपुरुष का आगमन . । 200 सा०सं०पू० के पश्चात् धार्मिक समन्वय (Judaeo-Iranian syncretism) और बढ़ता गया बाइबिली आदि-मानव आदम को ईरानी Gēhmurd को माना गया (दे० J de MENASCE,"Les religions de l'Iran et l'Ancien Testament " . Sacra Pagina ,1,1959,pp 280-287) ।

(3) "a centre of Greco-Semitic and Greco-Iranian amalgamation .on the land route which ran from Syria through Persia and Afghanistan to India" (M ROSTOVTZEFF,Dura-Europos and its Art ,Oxford,1938,p 140).

(4) दे० MARIE-H OATES,"Dura-Europos, a fortress of Syro-Mesopotamian art",Biblical Archaeology Sept.1984,pp 166-181 उसी प्रकार यहूदी-मसीहियों ने बगल में अपना प्रार्थना-घर (सुगुरु-मन्दिर) बनाया "This is the earliest building thus far discovered specifically devoted to Christian assembly"।

अकित था । दीवारो पर चित्र-कला की शैली भारत से आविर्भूत मालूम पड़ती है[1] । यह अशोक-काल से चार-पाच सदियो के दौरान सास्कृतिक सम्पर्क का परिणाम है ।सभागृह के अरामी अभिलेख मे उसी मनोभाव के शब्द मिलते है जो तक्षशिला के अरामी अभिलेख मे प्रयुक्त हुए थे [2] : दूरा का अभिलेख-कर्ता सभा के धर्मवृद्धो की प्रमुखता (क् श् य् श् व् त् ह्) का आदर करता है ; वह उन सब दाताओ पर शान्ति की आशिष (श् ल् म्) मागता है , जिन्होने इस (सभा)-घर (ब् य् त् ह्) के निर्माण मे दान दिया ; " उनके पुत्र भी " (व् - ब् न् य् ह् व् न्) आशिष प्राप्त करे । किसी उदार दाता का नाम " ब् र् - त् द् अ् " है , जो सम्भवत द्विभाषीय नाम है , अर्थात् अरामी " ब् र् " (पुत्र) और यूनानी " थेओ़-दोरोस् " (देव-दत्त) के सक्षिप्त रूप [3] का जोड़ ।

दूरा-अभिलेख और तक्षशिला-अभिलेख के अरामी पाठ मे कुछ समानता होने पर भी पूज्य आचार्य सी०डी० चैटर्जी का यह सुझाव स्वीकार्य नही है कि तक्षशिला का अभिलेखन-स्थान कोई यहूदी सभा-गृह था । धर्मनिष्ठ इस्राएली परम्परा के अनुसार केवल एक ही आराधना-मन्दिर हो सकता था ,अर्थात् यरूशलेम मे स्थित पवित्र मन्दिर — चाहे राजा सुलेमान द्वारा निर्मित "प्रथम" मन्दिर अथवा निष्कासन के बाद सा०स०पू० 515 मे पुनर्निर्मित "द्वितीय" मन्दिर [4] । केवल सन् 70 सा०स० के बाद ,जब से उस द्वितीय मन्दिर का पूर्ण विनाश हुआ ,भवन-रूपी " सभागृह " निर्मित होने लगे । इससे पहले ईद-गाह के समान खुले आराधना-स्थल ही बन सकते थे ,जिन्हे यूनानी मे "सुन्-अगोगे "(समागम) अथवा "प्रौस्-अेव्खे "(प्रार्थना)[के स्थान] कहते थे । स्वाभाविक है कि यरूशलेम से अधिक दूर वे कच्चे स्थल आच्छादित घर-आगन मे कुछ पक्के दिखाई देने लगे [5] ।

ऐसे प्राचीनतम आराधना-स्थल मिस्र के सिकन्दरिया नगर मे पाये गये , जहा हजारो इस्राएली बसने आये । यूनानी शासको के प्रति निष्ठा व्यक्त करने के लिए उन्होने समय-समय पर समर्पण-अभिलेख ज्ञापित किये । सब-से पुराना लेख प्तोलेमर्योस्-प्रथम (?) को अर्पित है । एक अन्य लेख निश्चित रूप से

---

(1) "In illustrating the Jatakas, the stories of the life of the Buddha the early artists of Buddhism proceeded in almost exactly the same way as did the Jewish artists How are we to explain the coincidence in method of narration between the Hindu art and the art shown in the synagogue of Dura?"(M ROSTOVTZEFF,op cit ,p 128) ; दे० COMTE du MESNIL du BUISSON, Les Peintures de la Synagogue de Doura-Europos ,Rome ,1939

(2)दे० F ALTHEIM & R STIEHL "Inscriptions of the synagogue of Dura-Europos" . East and West ,9,1958,pp 7-28

(3) F ZORELL, Lexicon Graecum Novi Testamenti ,Paris,1961,p 575 श्रीगुरु सुमुकुन्द के शिष्य तद्दै का नाम उसी यूनानी थेओ़-दोरोस् का नामैकदेश रूप (hypocoristic form) है ।

(4)फिर भी कम-से-कम एक अपवाद है मिस्र के सैन्य शिविर इलेफ़ैंटाइन् में अरामी-भाषाभाषी इस्राएलियो द्वारा निर्मित छोटा याहो-मन्दिर । अत: उन इस्राएलियो की उपासना-पद्धति शास्त्रविरुद्ध थी अथवा सा०सं०पू० पाचवीं सदी के समय तक उनके यहा धर्मव्यवस्था " तोरा " (तौरेत) के सिद्धांत लागू नही हुए । इस शिविर के विषय में आगे चर्चा करेंगे ।

(5) दे०RICHARD OSTER,"Supposed anachronism in Luke-Acts' use of ΣΥΝΑΓΩΓΗ" , New Testament Studies , 39 1993 p 192 " There is a building in Delos [island of Aegean Sea] which many ,but not all , archaeologists believe was a Jewish synagogue from the second century B.C."; I LEVINSKAYA " A Jewish or Gentile prayer house ? The meaning of προσευχή " Tyndale Bulletin ,41,1990,154-159 और L GRABBE "Synagogues in pre-70 Palestine : a reassessment" Journal of Theological Studies , 39,1988,pp.401-410

(6) दे०B.LIFSHITZ, Donateurs et Fondateurs dans les Synagogues Juives ,Paris,1967, समर्पण-लेख न० 92

प्तोलेमयोस्-तृतीय (सा०स०पू० 246-241) के नाम समर्पित है [1] और सम्भवत इस्राएली आराधना-स्थल मे लगाया हुआ था [2] । आराधना-स्थल अथवा बाद मे सभागृह-भवन की पहचान के लिए उसमे चित्रित धर्मप्रतीक सहायक हो सकते है , जैसे : तुरही , सप्तशाखाओ का दीपाधार और खजूर की डाली । किन्ही स्थानो मे मगलचिह्न " स्वस्तिक " भी प्रयुक्त हुआ , जो निस्सदेह दूर पूर्व से पश्चिमी इस्राएलियो के सम्पर्क का सकेत है [3]। लेकिन यदि पूर्व मे तक्षशिला के खडहरो मे ही खोजे , तो वहा पश्चिमी इस्राएलियो की ओर सकेत करनेवाला कोई ऐसा स्पष्ट धर्मप्रतीक नही मिल रहा है जो किसी सभागृह मे शोभायमान हो [4]। अत हमे यह आशा छोड़नी चाहिए कि तक्षशिला मे कोई अरामी सभागृह-अभिलेख मिल जाए । आगे विचार करे कि वास्तव मे ,अरामी-भाषाभाषी पूर्व की ओर कितने दूर तक पहुच सके।

145 ~ (3) **अफगानिस्तान में** ·

यदि इसमे कोई सदेह नही है कि फारसी साम्राज्य के मध्य क्षेत्र मे अरामी-भाषाभाषी , और विशेषकर इस्राएली , रह रहे थे , तो पूर्व क्षेत्र की ओर उनके निकल जाने मे कठिनाई नही थी [5] । कैसरिया के धर्माध्यक्ष अेव्सेबिओस् के वक्तव्य के अनुसार सम्राट अर्तक्षत्र-तृतीय ने सा०स०पू० 350 मे कुछ विरोधी इस्राएलियो को उनके मिस्र निवास से हुर्कनिअ (पार्थिया) की ओर स्थानान्तरित किया [6] । पूर्व क्षेत्र मे इस्राएलियो के दीर्घ उत्प्रवास का अप्रत्यक्ष प्रमाण उनका रूढ़िवादी भाषा-प्रयोग है [7] । अफगानिस्तान मे इस्राएलियो से सबधित अभिलिखित सामग्री केवल पार्थियो के काल के अन्त मे मिलने लगती है ; फिर भी डॉ० जी० ओली अनुमान लगाते हैं थोड़े-बहुत यहूदी इससे पहले अफगानिस्तान मे रहे होगे [8] । उनकी प्रथाओ से भी पता चलता है कि उन्होने आरम्भिक परम्पराओ को

---

(1) *तत्रैव* , न० 99 (2) E.SUSENIK (Ancient Synagogues in Palestine and Greece London.1934) इस अभिलेख को " synagogue inscription of the third century B C E. " मानते है ।

(3) उद० मृत सागर के पश्चिमी तट पर , एनगेदी के सभागृह के कुट्टिम (mosaic) फर्श मे स्वस्तिक साफ दीखता है । यह तीसरी सदी सा०स० के आरम्भ का है (Revue Biblique ,81,1974,pp 96-97,Plate XI-b) ।

(4) यदि Sir JOHN MARSHALL ,Taxila,1951 के तीन खण्डो में ढूंढे , तो तारा (Plate 190),दीपाधार (Plate 231,Nr 15),मछली (Plate 172) आदि यहूदी आराधना-स्थल के स्पष्ट सकेत नही माने जा सकते । शोधकर्ता को E.GOODENOUGH Jewish Symbols in the Greco-Roman Period ,1953-1968 के तेरह खण्डों की छानबीन करने का अवसर नहीं मिला ।

(5) "Just as the Jewish settlements in Babylonia served as a reservoir out of which Jewish settlers streamed into the interior of Persia, so, in turn, did those Jewish settlements [in Iran] function as a springboard which released a new stream of Jewish wanderers moving into the most eastward regions . "(W.J FISCHEL," The contribution of the Persian Jews to Iranian culture and literature" ,Acta Iranica ,13,Leiden,1974,p 300) - लेखक रोमन काल की बात कर रहे है ।

(6)P DAFFINA (East and West ,9,1958,p 189) यह उल्लेख Eusebius of Caesarea · Hieronymi Chronicon से करते है " This was perhaps the first settlement of a Jewish colony on the territory of Parthia proper ".

(7) E.YAR-SHATER , " The Jewish communities of Persia and their dialects" in P GIGNOUX & J JAFAZZOLI,Mémorial Jean de Menasce, Louvain,1974,p 453 : "Whereas the localities in which these dialects are spoken have ,with few exceptions , lost their original language to Persian, the Jewish communities have generally preserved the original language [Iranian] "

(8) G.GNOLI , " Jewish inscriptions in Afghanistan " East and West ,13,1962,p 312.

नही छोड़ा [1] । क्या स्थानीय लोक-विश्वास मे भी कुछ ऐतिहासिक सत्याश है ,जब अफगान-पठान अपने को प्राचीन " बनी इस्राइल " (इस्राएल के वशज) कहते है ?[2]

145~(4) **पश्चिमोत्तर भारत में**

जो तर्क फारसी साम्राज्य के पूर्व क्षेत्र के सबध मे प्रस्तुत किया गया , वह सिन्धु क्षेत्र पर भी लागू किया जा सकता है । उस क्षेत्र मे अरामी-भाषाभाषियो की उपस्थिति के समर्थन मे एक अतिरिक्त तर्क इस बात पर निर्भर करता है कि भारत के प्रथम सुगुरु-पथी वास्तव मे यहा के इस्राएली उत्प्रवासी ही थे । पहली सदी सा०स० के उत्तरार्ध मे यदि पश्चिमोत्तर भारत के किसी अरामी-भाषाभाषी व्यक्ति ने गुरु सुमुकुन्द को " सत्याभिषिक्त " (मसीह) के रूप मे स्वीकारा[3] ,तो ऐसा नव-दीक्षित यहूदी-मसीही हमे अप्रत्यक्ष प्रमाण देता है कि सामान्य सवत् के आरम्भ से पहले (सम्भवत अशोक-काल मे ही) उस क्षेत्र मे अरामी-भाषाभाषी बस चुके थे [4] ।

---

(1) दे० E L RAPP," On the Jewish inscriptions from Afghanistan" East and West ,15 1965,p 199 "It seems certain that they left the Jewish zone of Palestine and Babylonia at an early time, because they rigidly observe the Sabbath, the circumcision,and the food prescriptions but do not uphold the [later] Talmudic tradition which they ignore completely" (2) दे० R C TEMPLE, " Remarks on the Afgháns found along the route of the Tal Chotiali Field Force,in the spring of 1879",Journal of the Asiatic Society of Bengal ,1,1880 , विशेषकर पृ० 92-93 , यात्रा-वर्णन की प्रत्यक्ष साक्षी के अनुसार अफगान अपने को राजा सुलेमान के उच्चाधिकारी के वशज मानते है और "पठान" नामक नायक पर गर्व करते , जिसने ईमान को स्वीकारा । फिर भी लगता है कि लोक-विश्वास के सारे इस्राएली-बाइबिली नाम यहा इस्लाम की देन है । यूनानी इतिहासकार हेरोदोतोस् ने बहुत पहले " पक्तुअिके गें " का उल्लेख किया - दे० M A.STEIN,"The ancient geography of Kaśmīr " , Journal of the Asiatic Society of Bengal , extra Nr 2 , 1899, p 11 " It is the earliest mention of the ethnic name Pakhtūn or the modern Indian Pathăn"
(3)भारत खण्ड मे उन आदिम यहूदी-मसीहियो के गुरु के सक्षिप्त नाम का शुद्ध अरामी रूप है " येशु " , दे० प्राचीन अरामी शब्दकोश JOHANNES BUXTOFORIUS , Lexicon Chaldaicum [=Aramaic] , Talmudicum et Rabbinicum ,Basel , 1640 । याद दिलाए कि श्रीनाम के पूर्ण इब्रानी-अरामी रूप " ये-शूअ़् " का अर्थ है " प्रभु-उद्धारे " , जिसे स्वामी ब्रह्मबान्धव उपाध्याय ने " सुमुकुन्द " अनूदित किया , जब कि स्वामी विवेकानन्द ने सुगुरु को यूरोप के नहीं वरन् " एशिया के सुपूत " माना । अरामी रूप " मशीख़ा " का अर्थ है " विशेष अभिषिक्त जन " (the Anointed One), जो जनता के लिए नायक , याजक एव वाचक का शुभ कार्य करे । अप्रमाणित लोकश्रुति के अनुसार वह " मसीहा " स्वय काश्मीर मे आए ,चाहे गृह-नगर नासरत से अपने दीक्षाकाल मे अथवा मृत्युदण्ड से जागने के बाद (दे० *हजरत मिर्जा घुलाम अहमद* , **हिन्दुस्तान में मसीह** , 1899 , QAZI ABDUL HAMID Jesus in India The London Mosque, 1978 ,p 3 " From Afghanistan Jesus went to Kashmir His tomb [Qabr-i-Masih] has been found in . Srinagar".
(4) पी० दफीना इसे एक गभीर सम्भावना मानते है कि अखामेनी शासनकाल से ही इने-गिने इस्राएली व्यापारी उत्तर-पश्चिम भारत मे आए " It cannot be excluded that some scattered Jews might have penetrated into India(particularly into North-Western India) on trading purposes as far back as the Achaemenian period " (PAOLO DAFFINA,"The early spread of Christianity in India An old problem re-examined" , East and West ,9,1958,p 189) हम पहले भी देख चुके है कि सम्भवत राजा सुलेमान के समय से निर्यातित भारतीय माल भूमध्यसागर-तट तक पहुच जाता था और कि बाइबिल के "नया-विधान" नामक यूनानी खण्ड में भारत-सबधी कुछ शब्द है । यहा सप्तसप्ताह-पर्व के उस वर्णन का उल्लेख करे ,जिसमे विदेश से आये हुए यहूदी तीर्थयात्रियो की सूची में (प्राचीन यूनानी पाठभेद के अनुसार) " अिन्दिअ " देश भी सम्मिलित है (प्रेरितो के कार्य 2 9 पर B.Metzger, A Textual Commentary on the Greek New Testament ,London, 1971 की टिप्पणी) । यूनानी बाइबिल के प्रथम मक्काबी ग्रथ 8.7 में "अिन्दिअ " को मादय तथा लीदिया के साथ सेल्यूकी साम्राज्य के प्रान्तों मे उत्तम देश माना गया है ।

यदि हम पश्चिम एशिया मे सामान्य सवत् के आरम्भ का यहूदी अथवा यहूदी-मसीही साहित्य देखे , तो भारत से सास्कृतिक सम्पर्क के और सकेत मिलते है । परन्तु उन्हे तौलने की आवश्यकता है । साहित्यिक आदान-प्रदान दीर्घ गति से चलता है और परस्पर प्रभाव दोनो ओर से पड़ सकता है । यदि किसी कथा-प्रसग मे समानता दीखती है , तो यह सयोग की बात हो सकती है अथवा किसी अन्य सस्कृति के माध्यम से व्यापकतर सम्पर्क का परिणाम भी हो सकता है । उस समानता मे कुछ अप्रत्याशित असाधारण विषय-वस्तु एक-समान हो , यहा तक कि किसी शब्द के प्रयोग मे स्पष्ट भाषाई सबध हो ,तो बीते सम्पर्क की सम्भावना बढ़ती है । उदाहरणार्थ ,गुस्ताफ् रोथ्[1] लूकस-रचित शुभ-समाचार 19:11-27 मे प्रस्तुत "सोने के सिक्को के दृष्टात " को जैन श्वेताम्बर सिद्धात 7.6 के उस दृष्टात से मिला देते है ,जिसमे एक व्यापारी ने विदेश जाते समय अपनी चार पुत्रियो को पाच-पाच धान के दाने सुपुर्द किये । रखैया नामक तीसरी पुत्री ने अपने पाच दाने "शुद्ध वस्त्र" (प्राकृत मे **सुद्धे वत्थे**) मे छिपा दिये , जब कि शुभ-समाचार के वर्णन मे तीसरे सेवक ने सुपुर्द किया हुआ सिक्का "अगोछे" (यूनानी मे **सोव्दरिंओ**) मे छिपा दिया। यदि "शुद्ध वस्त्र" और "अगोछे" की तुलना करे ,तो मूल भाषाओ मे ध्वनि-समता है और दोनो दृष्टातो मे वही निष्क्रियता अफलित रही । लगता है ,दृष्टात का मूल स्रोत पूर्व मे है। गुस्ताफ् रोथ् सम्पर्क-काल के निर्धारण हेतु द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखो के अभिलेखन-काल को उचित वातावरण मानते हैं[2]।

पश्चिमोत्तर भारत के सीमान्त मे अरामी-भाषाभाषियो की उपस्थिति का ठोस साहित्यिक सकेत ,तीसरी सदी मे मूल अरामी-सीरी भाषा मे रचित " सन्त प्रेरित थोमस के कार्य " नामक रचना से प्राप्त होता है। यहा भी यह पूर्वव्यापी (retro-active) तर्क लागू है कि यदि यहूदी-मसीही धर्मदूत थोमस ने[3] भारत की सीमा तक पहुंचकर सर्वप्रथम वहां बसे हुए अपने सहजातीय इस्राएली व्यापारियो से सम्पर्क स्थापित किया , तो वे इस्राएली और उनके पूर्वज पहले से ही वही निवास किया करते होगे । " थोमस के कार्य "-रचना

---

(1) GUSTAV ROTH , " The similes of the entrusted five rice-grains and their parallels",German Scholars on India,vol I, Varanasi,1973,pp 234-244 (2) दोनो दृष्टातो की प्रस्तुतियो में जैन प्रस्तुति (उत्तराध्ययन 7.14-21) सब से पुरानी लगती है (लगभग सा०सा०पू० 300?) : "A literary interrelation between the two passages is likely . Since the discovery of the bilingual Aśoka-inscription in Greek and Aramaic language in Kandahar ..there can be no doubt about how close Indians,Iranians and Greek were at the time of emperor Aśoka "(p 242). एक अन्य उदाहरण बौद्ध साहित्य से प्राप्त है . दिव्यावदान 33 के प्रसग मे भिक्षु आनन्द कुएं पर एक पतिता नारी से वार्तालाप करते है ,जब कि योहन के शुभ-समाचार 4 1-42 की प्रस्तुति मे गुरु सुमुकुन्द स्वय उससे बात करते है । लेकिन यही प्रस्तुति यहां मौलिक लगती है , दे०J D. DERRETT,"The Samaritan woman's pitcher",The Downside Review,102,1984,p 259 "A Buddhist post-canonical writer probably used a Sogdian .version or direct copy of Jo 4·1-42 ca A.D 200 . from a Jewish-Christian merchant " इसी प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन के लिए दे० KALIPADA MITRA," Some tales of ancient Israel, their originals and parallels". The Indian Histrorical Quarterly,29 1943,pp 225-233 344-354 ; The Jewish Encyclopaedia art "Aesop"; W RUBEN,"The Bible and Purana",Indian Studies,7,1966,pp 135-151

(3) अरामी मे " तॅओमा " , जिसका अर्थ है "जुड़वा भाई" -- कहा जाता है कि वह इतने निकट से सुगुरु का अनुसरण-अनुकरण करता था कि वह उनका प्रतिछाया-रूप ही बना । सुगुरु-शिष्य थोमस के भारत-आगमन के संबंध में तीसरी सदी के धर्माध्यक्ष ॲव्सेबिऑस् का कथन आचार्य रुफ़ीनुस् के लातीनी इतिहास (Historia Ecclesiastica 10 9) में सुरक्षित है । उसी धर्माध्यक्ष की मूल यूनानी रचना " हिस्तोरिॲ ॲक्क्लैसिअस्तिकॅ " का वह अंश (5.10 3) भी उपलब्ध है ,जिसमे यह विश्वासनीय वर्णन है कि मिस्र के सिकन्दरिया नगर के ज्ञानपीठ का आचार्य पन्ताय्नोस् सन् 193 मे भारत आया । उसे वहां मत्ती-रचित शुभ-समाचार की एक प्रति दिखायी गयी, जो " इब्रानियो के अक्षरों में " -- अर्थात् अरामी लिपि मे (दे०J OGILVIE,The Apostles of India London 1915 p 47) लिखी थी और जिसे सन्त थोमस के गुरु-भाई बरतुलमय ने (अरामी-भाषाभाषीय !) शिष्यों के पास छोड़ा था (दे०A.PERUMALIL," The apostles of Kalyana (Bombay) St Bartholomew the Apostle and St Pantaenus" Journal of Indian History,22,1943,pp.71-92 .

के अनुसार पूर्व देश के राजा गुदनाफर के दूत खब्बान ने, इस्राएल मे कारीगर खोजते-खोजते, थोमस को निमन्त्रण दिया कि वह राजा के लिए भव्य महल बनाएं। यदि इस कथा को ऐतिहासिक सदर्भ मे रखा जाए ,तो राजा का नाम पार्थियो का महाराजाधिराज विन्दफरना (यूनानी मे "गुन्दफोर्रास्") है । परन्तु उसका शासनकाल (सा०स०पू० 30से 11तक?) कथा के प्रसग के समय से (लगभग सन् 45 सा०स०) मेल नही खाता । कथाकार एक अज्ञात राजा को शायद "गुदनाफर" के नाम से प्रस्तुत करता है , क्योकि वही नाम पश्चिम के व्यापार-केन्द्रो मे याद रहा [1] । फिर ,राजदूत का नाम "खब्बान" ईरानी नही है ; डा० चेरियन का सुझाव है कि वह एक यहूदी था [2] । कथाकार स्वयं इसकी पुष्टि करता है, क्योकि जब थोमस राजदरबार पहुचे , तब एक बासुरी बजानेवाली "इब्रानी" कन्या से उनकी भेट हुई । राजमहल के निर्माण हेतु थोमस को पर्याप्त राशि एव सामग्री उपलब्ध कराई गई , लेकिन उन्होने सब-कुछ गरीबो मे बाट दिया और इस प्रकार राजा के लिए अतिसुन्दर स्वर्गिक पुण्य-महल तैयार किया !

निस्सदेह , थोमस के कार्य की कथा शिक्षात्मक है और वास्तविकता से कोसो दूर [3] । इसलिए, कई इतिहासकार थोमस के भारत-आगमन की परम्परा का आधार पश्चिमोत्तर भारत की अपेक्षा पश्चिम-दक्षिण मे खोजते है ,जहा केरल के सुगुरु-पथी अपने को " थोमस-मार्गी "कहते है [4] । लेकिन यहां हमारा यह

---

(1) दे० JOHANNA VAN LOHUIZEN-DE LEEUW,The Scythian Period,New-Delhi, 1995(1949) p 355 "The only thing that can be said is that the name of Gondophernes was already known in the West in the third century A.D and that the Indian association with his name was the cause that he was connected with the legend of St Thomas " सामान्यत इतिहासकार मानते है कि गॉण्डफर्नीज़् " पूर्व ईरान और पश्चिमोत्तर भारत के शक-पह्लव दोनो राज्यो का स्वामी बन बैठा " और सन् 19 से लेकर 45 सा०सं० तक राज्य किया (*रतिभानु सिंह नायर* , **प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास** ,इलाहाबाद,1983,पृ० 333-334)।

(2) C V CHERIYAN, A History of Christianity in Kerala,Kottayam 1973,p 18 "He was a Jewish subject of the Parthian king It was possibly the existence of a Jewish colony that drew St Thomas to Thakshasila [sic]" दे० J GUNTHER , "The meaning and origin of the name Judas Thomas",Le Muséon,93,1980,p 120 "Jews were settled in North West Pakistan and Afghanistan" लेखक थोमस का कार्य यहूदी निवास-क्षेत्र तक सीमित रखते · "Thomas need not have gone any farther south-eastward,outside the Arsacid Parthian Empire than Afghanistan",इसी विचार के लिए दे०M.BUSSAGLI, "The apostle St Thomas and India",East and West,3,1952,pp 88-98 परन्तु अधिकाश विद्वान उस परम्परा की यथार्थ सम्भावना को अधिक महत्व देते है कि थोमस ने भारत भूमि मे कदम रखा और यहूदी बन्धुओं मे ही सुगुरु-पन्थ का प्रचार किया । इसके फलस्वरूप भारत के प्रथम सुगुरु-पन्थी किसी अन्य समुदाय से " धर्मान्तरित " नहीं हुए , वे भारत-वासी यहूदी-मसीही थे , जिनके पूर्वज सम्राट अशोक की प्रिय प्रजा मे अरामी-भाषाभाषियों के रूप में सम्मिलित थे और आगे चलकर भारतीय सस्कृति में समाहित हुए। दे०J OGILVIE,op cit .p 47 "[The first Indian Christians] were probably the descendants and spiritual children of nameless Jewish-Christian traders of the first and second centuries " अपवाद के तौर पर, सन्त हिएरोनिमुस् (जरोम्) की उक्ति के अनुसार ,पन्तय्-नोस् जैसे धर्मदर्शन के ज्ञानी प्रचारक भी आए "Pantaenus onaccount of the rumour of his excellent learning,was sent by Demetrius(bishop of Alexandria) into India, that he might preach Christ among the Brahmans andphilosophers of that nation"(St Jerome ,Epistola70 , "Ad Magnum") (3)A.KLIJN, The Acts of Thomas,Brill,Leiden,1962 .

(4) A.PERUMALIL,The Apostles of India Patna 1971(1952) "Thomas came to India,but there is no evidence for his presence in North West India We have,therefore,to look for it in the South!",G SORGE L'India di S Tommaso Bologna, 1983 (लेखक दक्षिण मे थोमस के भारत-आगमन का वर्ष सन् 53 सा०सा० ठहराते है), V C GEORGE,Apostolate and Martyrdom of St Thomas,Ernakulam,1984,E Hambye "St Thomas and India" The Clergy Monthly,16,1952,pp 363-375; P KOSYH "The evolution of the Syrian Orthodox Church of Kerala",Journal of Indian History ,49 1971,pp 248-280

तर्क कि "जहा यहूदी-मसीही थे वहा पहले अवश्य अरामी-भाषाभाषी यहूदी थे ", पश्चिमोत्तर भारत पर केन्द्रित है ; क्योकि दक्षिण मे अरामी अशोकीय अभिलेख प्राप्त नही हुए![1]

145 ~ (5) **भारत से भी आगे**

निष्कर्ष यह है कि भारत-उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर-क्षेत्र मे जिन अरामी-भाषाभाषियों को अशोकीय अभिलेखो मे सबोधित किया गया है , उनमे इस्राएली उत्प्रवासियो का शामिल होना असम्भव प्रतीत नही होता है । मध्य या दक्षिण भारत मे , और पूर्व की ओर भारत से कही आगे भी , जितने अधिक उनकी उपस्थिति के पुराने सकेत मिलते है , उतने ही अधिक ठोस यह सम्भावना होती है कि वे अशोक-काल में ही पश्चिमोत्तर भारत मे प्रवास कर रहे थे ।

आज भी भारत के यहूदी नागरिक ,जो "बॅने यिस्राऍल् " कहलाते है , अपने को "प्रथम विसर्जन की सतान" मानते है — अर्थात् यह दावा करते है कि वे सा०स०पू० आठवी सदी के अन्त मे प्राचीन उत्तरीय इस्राएल के पतन के पश्चात् निष्कासित होकर भारत मे आए[2]। लेकिन गभीर इतिहासज्ञो का अनुमान है कि भारत के पश्चिमी तट पर तभी इस्राएली व्यापारी आने लगे , जब सा०स०पू० तीसरी सदी से मिस्री सिकन्दरिया के साथ अथवा बाद में रोम के साथ व्यापारिक सबध स्थापित हुए[3]। एक अप्रत्यक्ष प्रमाण कि यह संबध सन् 70 सा०स० मे यरुशलेम-मन्दिर के विनाश से काफी पहले शुरू हुआ , मन्दिर-उपासना हेतु यह निर्देश है : " प्रायश्चित दिवस की सध्या वेला मे महापुरोहित कीमती भारतीय मलमल का परिधान धारण करे "[4] ।

---

(1) फिर भी ,यदि थोमस दक्षिण भारत आए, तो वहा भी उनके प्रथम दीक्षार्थी स्वभावत इस्राएली थे (दे०J SEGAL,"White and Black Jews at Cochin The story of a controversy",Journal of the Royal Asiatic Society,1983,p 228 "It is no accident that the first Christian communities in Kerala are ascribed to the sites at which Jews were probably already established"). बाद मे ,जब पार्थिया के शासक " नासरानियों " (अर्थात् सीरी-भाषाभाषी मसीहियो)पर अत्याचार करने लगे , तब उन देश-निष्कासित सुगुरु-पथियो ने दक्षिण भारत मे शरण ली । उनमें " थोमस काना " नामक व्यापारी भी सम्मिलित था, जो लगभग सन् 345 मे केरल पहुचे (दे०H.HOSTEN,"Thomas Cana and his copper plate grant" , Indian Antiquary , 56, 1927,pp 121 186,T K.JOSEPH,"Thomas Cana",ibid ,pp 161-166,57,1928,pp 103 214)। शायद इससे पहले भी केरल के आरम्भिक " थोमस-मार्गियों" का सम्पर्क फारस देश से हुआ था (दे०E.HAMBYE," The Syrian Church in India", The Clergy Monthly,16,1952,p 378, E.LASCARIDES-ZANNAS "Greece and South-India",Bharatiya Samskriti,Calcutta, 1983,vol 2,p 635 "Persia was the missionarizing centre for the East")। अपने यात्रा-वर्णन " ख्रिस्तिअनिके् तोपोग्रफ़िअ" मे मिस्री सिकन्दरिया का ईश-भक्त व्यापारी " कॉस्मास् इन्दिकोप्लेव्स्थॅस् " ने लिखा कि मलाबर-तट पर एवं कल्याण के आसपास विश्वासी भाई-बहन मिलते है ,जिनके धर्माध्यक्ष फारस से नियुक्त होकर आया करते थे ।

(2) SHIFRA STRIZOWER,The Children of Israel : The Bene Israel of Bombay,Oxford University Press,Indian Branch, 1971,esp ch.2 — लेखिका का अपना विचार है कि केवल सा०सं०पू० 175 से (जब अन्ताकिया के यूनानियों द्वारा यहूदा प्रान्त के धर्मनिष्ठ यहूदियो पर अत्याचार आरम्भ हुए) कई इस्राएली शरणार्थी भारत में बसने लगे ; Encyclopaedia Judaica Yearbook 1975-76,art "Bene Israel" (3) दे० S GRAYZEL,art." Cochin",The Jewish Encyclopaedia ,"It may well be that individual Jews lived in Cochin even before the destruction of the Temple [of Jerusalem in 70 C E.] Commer- cial relations between India and the numerous Jewish merchants of Alexandria in Egypt are known to have existed , so that the Alexandrians may have had representatives there" ,J SEGAL,op.cit ,p 229 "Jews may well have been at Cranganore already in Roman times , when its port was famous under the name of Muziris (Muyirikodu) "कोचिन का यहूदी समागृह केवल सन 1568 मे निर्मित हुआ । सब से प्राचीन लिखित प्रमाण सन् 750 का सासनम कास्य पट है ।

(4) Mishnah II,Yoma 3 7 ," he wore Indian linen,worth 800 zuz "(प्राय: 2800 ग्राम सोने का मल्य) ।

सम्राट अशोक की उदार समदृष्टि के अनुरूप भारत ने उत्पीड़ित इस्राएलियो को सहानुभूतिपूर्वक अपनी गोद मे ग्रहण किया [1] और उन्हे उनकी अपनी प्रथाओ के अनुसार पनपने दिया । यही से वे एशिया के अन्य देशो मे सौदागरी करने लगे । उदाहरणार्थ , चीन मे बसे हुए यहूदियो को गर्व है कि उनके पूर्वजो ने हन राजवश के समय (सा०स०पू० द्वितीय सदी से) कैफेग मे अपना मुख्य केन्द्र बनाया । चीनी यहूदी मानते आ रहे है कि उनके आदि धर्मगुरु भारत के थे [2] ।

15 ईरानी प्रभावक्षेत्र का अभिज्ञान

IDENTIFICATION OF THE IRANIAN / PERSIAN SPHERE OF INFLUENCE

पिछले अध्याय के अध्ययन मे हमारा ध्यान अरामी-भाषाभाषियो पर और विशेषकर इस्राएलियो पर टिक गया । परन्तु यह न भूले कि अरामी भाषा का प्रयोग करनेवाले लोग मूलत और फारसी साम्राज्य के आगमन तक प्रधानत अरामी (ऐरमीयन्स्) ही थे । असीरिया एव बेबीलोन के प्रशासन-तन्त्र मे धीरे-धीरे अरामी लिपिको का प्रवेश हुआ , यहा तक कि फारसी नौकरशाही मे उनका बाहुल्य था । इतने मे स्वय ईरानी भी अरामी भाषा-लिपि के प्रयोग मे निपुण हुए । अत इस अध्याय मे हम पिछले अध्याय की विपरीत दिशा मे जा रहे है : यद्यपि इस सम्भावना से इन्कार नहा किया जा सकता है कि मौर्य साम्राज्य के पश्चिमोत्तर क्षेत्र मे अरामी-भाषाभाषी (इस्राएली?) प्रवासी रह रहे थे , फिर भी उनकी उपस्थिति इतना आवश्यक नहीं है , क्योकि उस क्षेत्र के प्रशासनिक कर्मचारियो में पर्याप्त (ईरानी?) लिपिक थे जो अशोकीय धर्मनीति के प्रचार-प्रसार हेतु अरामी भाषा-लिपि का प्रयोग कर सकते।

---

(1) जैसे स्वामी विवेकानन्द ने कहा : "I am proud to tell you that we gathered in our bosom the purest remnants of the Israelites who came to Southern India and took refuge with us in the very year in which their holy temple was shattered to pieces by the Roman tyranny" (SWAMI ANANDA , Hindu View of Judaism ,N Delhi,1996,p 45).

(2) "The Jews of K'ai-Fung-Foo themselves claim that they received their religion from India" (art "China" in the Jewish Encyclopaedia) चीन में सब-से प्राचीन यहूदी अभिलेख सन् 1489 का है (दे० J.TOBAR,Inscriptions juives de K'ai-fong-fou ,Chang-Hai,1900. rev. in Revue Biblique .11.1902,pp 141-142)। चीन के यहूदी, चीनी प्रथाओं को अपनाते हुए, स्वसंस्कृतीकरण की दशा में इतने बढ़ गए कि वे चीन की संस्कृति में ही समा कर प्रायः लुप्त हो गए (NATHAN KATZ," The Judaisms of Kaifeng [China] and Cochin [India] : parallel and divergent styles of religious acculturation " Numen (International Review for the History of Religions),1998."Kaifeng's community assimilated itself out of existence !") । परन्तु कैफेग-केन्द्र की प्राचीनता (आठवीं सदी सा०सं० से ?) निश्चित नहीं है (P WEXLER, "Jewish languages in Kaifeng,Henan Province,China",Zeitschrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft,135. 1985,p. 247).

ईरानी प्रभावक्षेत्र का सर्वेक्षणात्मक परिचय देने की इतनी जरूरत भी नही है . क्योंकि प्राचीन ईरान के इतिहास के सबध मे अधिक पाठ्य सामग्री उपलब्ध है [1] ।

151 अधिकतम या न्यूनतम प्रभाव ? MAXIMUM OR MINIMUM INFLUENCE ?

निस्सदेह , अखमेनी शासनकाल मे ईरान एक प्रबल प्रभावक्षेत्र था । उसकी प्रशासनिक पद्धति, वास्तु-कला और धर्मनीति पड़ोसी भारत पर प्रभाव डाले बिना नही रह सकती । लेकिन प्रश्न है कितना प्रभाव हुआ । अफ़० शिअल्पी [2] जैसे विद्वान अशोकीय अभिलेखो के सबंध मे ईरानी पक्ष को अत्यधिक महत्व देते है । तब प्रभाव ग्रहण करनेवाले भारत का अपनत्व घट जाता है ; आदर्श राज्यशासन हेतु उसे अपने अर्थशास्त्र के सुनीतिपूर्ण सिद्धात भूलकर बाह्य प्रतिमान की नकल करनी है !

ईरानी प्रभाव का एक स्वीकार्य उदाहरण वास्तुकला की नई उपलब्धि है : पाटलिपुत्र के मौर्य-महल का स्तम्भयुक्त सभामण्डप परसेपोलिस में सम्राट दारा के महल के स्तम्भो का निर्माणकुशल याद दिलाता है । स्तम्भ-तक्षण आरम्भ करने का गौरव ईरान को प्राप्त है । जी० फ़ुस्मन् " तथा-कथित अशोकीय स्तम्भ " की बात करते है [3] । स्तम्भो पर अभिलेख और विशेषकर द्विभाषीय अभिलेख अकित करने की मौलिकता अशोक की नही रह जाती है । अरामी प्रस्तुति और शब्दावली का विश्लेषण करने से इस बात की पुष्टि होती है कि उनमे "ईरानीपन" (Iranianism) की परछाई है। कई विद्वानो ने सामान्य अशोकीय अभिलेखो के सबध में भी स्वीकारा कि उनके आरम्भिक प्राधिकारी पदाश " **देवानंपियो पियदसि राजा एवं आह** " और अखमेनी अभिलेखो के तद्-रूप पदांश मे स्पष्ट सूत्रगत समरूपता (formulaic parallelism) है।

---

(1) उद० *भगवतशरण उपाध्याय* , **बृहत्तर भारत** , अध्य० 3 "ईरान और भारत ". *उदय नारायण राय*, **विश्व-सभ्यता का इतिहास** , पृ० 343-358 "भारतवर्ष और ईरान " ।

(2) F SCIALPI." The ethics of Aśoka and the religious inspiration of the Achaemenids " East and West ,34,1984,pp 55-74

(3) G FUSSMAN . " Aśoka and Iran " . E.YARSHATER ed Encyclopaedia Iranica,London 1987,vol 2,fasc.7 p.780 " The so-called Aśokan columns, many of which were erected after Aśoka present a complex mélange of Iranian influences. and Indian elements".

श्रीराम गोयल भी कुछ प्रतिबंध जोड़कर स्वीकार करते है कि ' ईरानी लेखो के समान अशोक के लेख भी प्रारम्भ तो होते है अन्य पुरुष से ,परन्तु इसके तत्काल बाद इनमे उत्तम पुरुष का प्रयोग कर दिया गया है'[1], उद० 'देवाना-प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहते है : ... मैने इस लेख को उत्कीर्ण करवाया' । ईरानी लेखो मे प्रयुक्त वाक्याश के शब्दक्रम मे भी अन्तर है , उद० सम्राट दारा का नाम द्वितीय स्थान पर है :' **था(ह)ति दारयव(ह)उश् ख्शायथिय** ' (शब्दश 'कहते दारा राजा') । इसलिए राधाकुमुद मुखर्जी ने प्रबलता से भारतीय पक्ष का समर्थन किया : ' 'एवं आह ' के प्रयोग को हम नितात भारतीय भी मान सकते है। कौटिल्य ने प्रज्ञापन-शासन (सूचना लेख) के लिए निश्चित फिकरो मे इसका भी उल्लेख किया है '[2] ।

अखमेनी सम्राटो के भारतीय क्षत्रप-क्षेत्र मे भी ऐसा अधिकारी-तन्त्र (ब्यूरॉक्रसी) जम गया कि जो शासन-आदेश ईरानी भाषा मे प्रसारित हुआ, उसे अधिकतर अरामी लिपि मे ही लिपिबद्ध किया जाता था। अखमेनी शासन की समाप्ति के सत्तर वर्ष बाद भी सम्राट अशोक स्थानीय नौकरशाहो के उत्तराधिकारियो से अपने अभिलेखो को लिखवाने के लिए अरामी का प्रयोग करने के लिए बाध्य थे। वे स्थानीय दफतरी लिपिक अच्छे अनुवादक नही थे। जैसे वे पहले सरकारी दस्तावेज़ो की अरामी भाषा मे प्रशासनिक ईरानी शब्दो को मिला देते थे, अब मौर्य प्रशासन के अधीन वे न केवल अपनी ईरानी-मिश्रित अरामी जारी रखते थे, वरन् कभी मूल प्राकृत शब्दो को अरामी लिपि मे लिप्यन्तरित करने लगे । प्राकृत का उल्लेख करते समय वे अरामी लिपि मे रहस्यमय अक्षर ' **स् ह् य् त् य्** ' जोड़ देते थे । यह शायद एक ईरानी शब्द ही है : चाहे ' **सह्यतय्** ' , अर्थात् 'कहा जाता है' , अथवा ' **अयह्य** ' , अर्थात् 'कहा गया है' ।

ईरानी शब्दावली के प्रभाव से अशोक का प्राकृत पाठ भी बच न सका। 'धम्मलिपि' जैसे शब्द में 'लिपि' कहने मे ईरानी उच्चारण 'दिपि' का अनुकरण है , यहा तक कि शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा की खरोष्ठी

---

(1) *श्रीराम गोयल* , **प्रियदर्शी अशोक**, पृ० 27 । (2) *राधा मुखर्जी* , **अशोक** ,पृ० 90, टिप्पणी 1 ।

प्रतियो मे "ध्रमदिपि" शब्द प्रयुक्त हुआ । इसके अतिरिक्त ईरानी "निपिश्-" के प्रभाव से सामान्य प्राकृत रूप "लिखित" के स्थान पर शाहबाजगढी के खरोष्ठी लिपिक ने "निपिस्त" अकित किया। बीते राजनयिक सम्पर्क के कारण लिपिकीय परम्पराओ मे इस प्रकार के प्रभाव "स्वाभाविक" होते है; परन्तु पूर्वोक्त विद्वान अफ्०शिअल्पी न केवल शिलास्तम्भ-अकन को ईरानी प्रज्ञप्ति-प्रणाली की देन मानते है, विशेषकर जब राजादेश के प्रसारण मे बहु-लिपि का प्रयोग होता है[1], वरन् प्रस्तुतिकृत धर्मादेश की नैतिक प्रेरणा मे भी ईरानी नमूने की प्राथमिकता पहचानते है । अफ्०शिअल्पी के अनुसार अशोकीय अभिलेखो का प्रेरणा-स्रोत ईरानी ही है[2] . जब कि एच्० हुम्बख् जैसे ईरान-विशेषज्ञ केवल द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखो की अनूदित अभिव्यक्ति मे कुछ ईरानी प्रभाव देखते है[3]। निस्सदेह, अभिलेखो के अरामी रूपान्तर मे कुछ अधिक ईरानी शब्दावली का प्रवेश हुआ; लेकिन इस हद तक नही कि जिन (ईरानी) लोगो के लिए अशोकीय सदेश अनूदित हुआ, वे स्वय उस अनूदित अभिव्यक्ति मे अपने ही विचारों को अभिव्यक्त करते हों।

अफ्०शिअल्पी सम्राट अशोक की नैतिक अवधारणा मे फारसी सम्राटो की धार्मिक उत्प्रेरणा ढूढ निकालने की कोशिश मे तीन पहलुओ पर प्रकाश डालते है : (1) अशोकीय अभिलेखो मे कई बार एक युग-परिवर्तन की बात कही गई , उद० " [पहले हिसा का वातावरण था] परन्तु अब धर्मपालन के भेरीनाद द्वारा धर्म की घोषणा हुई है " (चौथा मुख्य शिलालेख) ; पहले धर्ममहामात्र नियुक्त नहीं थे प्रत्येक क्षण राजकार्य नही होता था . पूर्वकाल मे राजा विहार-यात्रा पर जाता था...मनुष्य देवताओ के सम्पर्क मे नहीं थे. परन्तु अब धर्म का राज्य है। — उसी प्रकार सम्राट दारा ने दावा किया था कि ससार मे व्यापक अव्यवस्था को देखकर सर्वोच्च अहुर्-

---

(1) "The joint use of two languages in the same Edict .. is reminiscent of the Persian prototype" (F SCIALPI,op cit .p 83).

(2)"Also Aśoka's ideological and ethical inspiration may somehow,at least in part, have been drawn from the impressive example offered by the great Iranian sovereigns"(ibid p 82)

(3)H HUMBACH,"The Aramaic Aśoka inscription from Taxila",in German Scholars on India,vol 2,Mumbai,1976,pp 118-130 "The translator of the Aramaeo-Iranian version of Qandahar I made use of Zoroastrian terms to express Buddhist ideas" और विस्तार से देखो H HUMBACH,"Buddhistische Moral in aramäoiranischem und griechischem Gewande",in J HARMATTA,ed., Prolegomena to the Sources on the History of Pre-Islamic Central Asia,Budapest,1979,pp.189-196

मज्द ने मुझे न्यायधर्म के अधीन सुव्यवस्था लाने का कार्य सौपा (दारा का नक़्श-इ-रुस्तम अभिलेख) ।

(2) धर्मसंस्थापनार्थ सैन्यबल नही. वरन् नैतिक बल की आवश्यकता है। इसलिए सदाचरण को बढ़ाना है। लोगो मे विविध धर्माचरण. सयम तथा दान करने की प्रवृत्ति बढ़े (चौथा मुख्य स्तम्भलेख).उद० "सत्य बोलना चाहिए"(लघु शिलालेख 2,ब्रह्मगिरि सस्करण) — फारसी राजाओ ने भी अपना निश्चय दुहराया कि वे अहुरमज़्द की इच्छानुसार न्याय और भलाई के कार्य ही करेगे ;वे निर्बलो और सबलो के प्रति पक्षपात नहीं करेगे (बेहिस्तून 4:64); वे झूठ का विरोध करेगे। सब-कोई सर्वथा शुभ की ओर बढ़ते जाए ।

(3) इसलिए राजनीति भी एक धर्मनीति है : सभी सम्प्रदायो का आदर किया जाए (छठा मुख्य स्तम्भलेख); सम्राट अशोक सब के लिए उपकार करते है,उद० 'आजीविको ' को गुहा दान करते है — उसी तरह विजयी कुरुश ने बेबीलोन मे मरदूक के पूजारियो के प्रति और यहूदी बंदियो के प्रति उदारता दिखायी थी । सम्राट अशोक ने अपने अधीनस्थ लोगो को पिता के समान सबोधित किया : " सवे मुनिसे पजा ममा "(पृथक् कलिंग शिलालेख 2,धौली सस्करण) — हैरोदोतोस् के अनुसार कुरुश भी पिता के सदृश सब का कल्याण चाहता था (इतिहास 3:89) । अशोक की धर्मनीति इहलोक तक सीमित नहीं है : 'धर्ममगल द्वारा इस ससार का लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तथा परलोक में भी पुण्य मिलता है (नवा मुख्य शिलालेख.शाहबाजगढी सस्करण) — सम्राट क्षयर्ष के परसेपोलिस-अभिलेख मे आश्वासन दिया जाता है कि अहुरमज़्द की इच्छा करने से धार्मिक जन पारलौकिक पुण्य प्राप्त करते और यथासम्भव इस जीवन मे भी सुखी रहते ।

सम्राट अशोक की अभिलिखित धर्मघोषणा को ईरानी पृष्ठभूमि मे देखने का प्रयास सराहनीय है; लेकिन कुछ समानताओ के आधार पर व्यापक एकतरफी ईरानी उत्प्रेरणा स्थापित नहीं की जा सकती है. जब तक असमानताओ की सूची पर भी गंभीर विचार न किया गया हो। प्रत्येक असमानता के सबध मे उचित कारण देना चाहिए कि उसमे विपरीत उत्प्रेरणा क्यो प्रबल हुई। ऐसा सम्भव नहीं है। अॅफ़्०शिअल्पी का अनुमान अतिशयोक्तिपूर्ण है। फिर भी उन्होने इसपर ध्यान दिलाया कि द्विभाषीय अभिलेखो मे कुछ 'ईरानी तथ्य'

(ईरेनियन् अॅलिमण्ट्स्) विद्यमान है जो अशोक के एकभाषीय (प्राकृत) अभिलेखो मे दिखाई नही देते। उन तथ्यो से मालूम होता है कि प्राकृत प्रारूप मे यत्रतत्र परिवर्तन किया गया है ताकि मूल सदेश सीमान्त-वासियो के लिए सुबोध हो। उन तथ्यो के बल पर शायद निर्धारित किया जा सकता कि वे स्थानीय लोग कौन थे।

152 क्या "कम्बोज" ईरानी थे ? COULD THE "KAMBOJAS" BE IRANIANS ?

तेरहवे मुख्य शिलालेख मे यौगिक शब्द ' **योन-कंबोजेषु/कंबोयेषु** ' मिलता है, अर्थात् 'यवन-कम्बोजो मे ', जिसका प्रथम अश स्पष्टत अल्पसख्यक यूनानी प्रवासियो की ओर सकेत करता है। अत 'कम्बोज' भी ऐसे अल्पसख्यक प्रवासी होगे। अॅफ्० शिअल्पी दृढतापूर्वक उन्हे ईरानी तथा पारसी धर्मावलम्बी कहते है[1]। अशोक ने उनके लिए ईरानी-मिश्रित अरामी भाषा मे अभिलेख लिखवाये[2]। यहा भी डॉ०शिअल्पी अपने कथन के समर्थन मे केवल एकपक्षीय अर्धप्रमाण जुटा पा रहे है। उदाहरणार्थ, जातक की कथाओ मे यह अनोखा चरित्र-चित्रण है कि "कम्बोज" किसी धर्मव्यवस्था के कारण कीड़े-मकौड़े,साप और मेढक मारते है। यही प्रथा ईरानियो के लिए आदेशित है[3]। डॉ०शिअल्पी ईरानियो-कम्बोजो मे भाषाई संबध भी खोजते है[4]। प्राचीन ईरानी नाम 'कम्बुजीय-'(अ०कैम्बाइसीज़) को भी याद दिलाते है। लेकिन वैकल्पिक सुझावो की कमी नहीं है। भारतीय वाङ्मय के अनुसार "कबोज" प्राचीन महाजनपदों मे से एक था, जो गांधार के साथ उत्तरापथ मे स्थित था (महाभारत 7:4:5)। उसके आदिम वासियो के अवशिष्ट वशजो को वर्तमान मे भी खोज लिया जा रहा है[5]।

---

(1)"The Kambojas formed a rather large community of Mazdean faith within the confines of the Mauryan empire"(op cit . p.86).

(2)"using an Aramaic pepperedwith Iranian words"(ibid) परन्तु न भूलें कि " अवेस्ता पूर्वी ईरान की भाषा थी . और प्राचीन फारसी पश्चिम एवं दक्षिण-पश्चिम ईरान की भाषा थी "(*शारदा चतुर्वेदी*, संक्षिप्त प्राचीन फारसी-व्याकरण,पृ०45)।

(3) दे० विदेवदात 14.5-6 और हैरोदोतस् का उल्लेख :"[The Magi] kill ,as readily as they do other animals. ants and snakes. and such- like flying or creeping things"(G RAWLINSON Herodotus Histories. I.140)। लेकिन इस तर्क में यह कमजोरी है कि अन्य समुदायो मे भी मक्खियों,मच्छरो,मेंढकों आदि के प्रति घृणा की भावना है (तॅनख्-बाइबिल मे ये ही जन्तु मिस्रियों के लिए विपत्ति का कारण बनते है और इस्राएलियो के लिए अशुद्ध-अखाद्य है)।

(4)दे०G.A.GRIERSON,"The language of the Kambojas".The Journal of the Royal Asiatic Society,July 1911.pp 801-802,SUNITI KUMAR CHATTERJI,Iranianism,Calcutta,1993,p 7 "The Kambojas in North-West India,from the evidence of the Vedic linguistic treatise the 'Nirukta',had Iranian affinities" (5)दे०B.C LAW,Geography of Early Buddhism .p 51:"The Western boundaries of Kamboja must have reached Kafiristan,and there are still in that district tribes... whose names remind us of the Kambojas".

कफीरिस्तान / नूरिस्तान के कबीलो और पुराने कम्बोजो मे कोई सबंध हो सकता है [1]। शायद प्रश्न ही गलत है, जब हम सवर्गीकरण की चिता करते हुए और जाति-भाषा-क्षेत्र की सम्मिश्र वास्तविकता न सोचते हुए किसी को शुद्ध "ईरानी" सुनिश्चित करना चाहते।

फारसी साम्राज्यकाल मे सीमावर्ती क्षत्रप-प्रान्तो के निवासियो के सबंध मे विशाल पृष्ठभूमि को समझे। वैदिक शब्दावली मे "पर्शु" नामक हिन्द-ईरानी जनजाति पश्चिम मे गाधार-क्षेत्र तक बसी हुई है, लेकिन फारसी कहलानेवाले सभी लोग "पर्शु" तो नहीं है , न सभी मादय (अ० मीड्ज़) उस "मद्र" जनजाति के सदस्य हो सकते है जो पच-नदी (पजाब) के क्षेत्र मे रहते थे[2]। कुरु-पचाल से पश्चिम के लोग "वाहीक"(बाह्य) माने जाते थे, परन्तु "वाह्लीक" उनसे और आगे उत्तर-पश्चिम की ओर बाख्त्री (बलख़) क्षत्रप-प्रान्त मे रहते थे[3]। इसलिए, कम्बोजो के सबध मे कुछ निश्चित कहना दुरूह है — इतना ही कहें कि वे कभी पूर्व-अफ़गानिस्तान[4] के वासी थे। जी० फुस्मन् काबुल एव कन्दहार के बीच का क्षेत्र "कम्बोज-स्थान" के लिए सब-से अनुकूल ठहराते[5]।

---

(1)दे० N T ALLEN,"Some gods of pre-Islamic Nuristan",Revue de l'Histoire des Religions 208 1991 p 145 "due to tenacious tribalismthe non-literate religious traditions survived until recently" [The languages of the Kafirs of N E.Afghanistanrespresent] a third branch of proto-Indo-Iranian, besides the two well-known branches of Sanskrit and Avestan", LOUIS DUPREE,Introduction to Sir GEORGE SCOTT ROBERTSON,The Kafirsof the Hindu-Kush,Karachi,1987(1896)

(2)दे० SUNITI KUMAR CHATTERJI,op cit ,p 7 "The ' Parśu'. (the sickle or battle-axe tribe) in India not at all a powerful group is one of the most famous and puissant in Iran. .And we have the ' Madra' tribe in India,and the ' Mada' in Iran (from the same root mad,to be exhilarated) . The Persians and the Medes,Pārsa and Mada. . were the two largest and most important Iranian tribes ,who virtually became one, after they were united by the first Achaemenian princes and emperors" आगे दे० M WITZEL, "Localisation of Vedic Texts",in G POLLET,ed ,India and the Ancient World,p.202 "The occurrence of the same name intwo areas among the Indo-Iranian peoples is nothing that should surprise".

(3)बी०अन्० पूरी के अनुसार कम्बोज एक "तुखारी" शाखा है (B N PURI,Buddhism in Central Asia,Delhi,1987,p 90), परन्तु ऍम० वित्सल् पश्चिमोत्तर-भारत मे उनका आगमन इतना पुराना नहीं मानते : अथर्ववेद-परिशिष्ट में तुखारों का उल्लेख संदिग्ध है (M WITZEL,op.cit p.208)

(4)"प्राचीन साहित्यकारों ने इसको आरयाना नाम दिया,अर्थात् आर्यों का देश। इस्लाम धर्म के आने के बाद इसका नाम ख़ुरासान पड़ा, अर्थात् सूरज के निकलने का स्थान। १४-१५वीं सदी में कन्धार,काबुल,हेलमन्द घाटी का भाग 'बहतर जामिन' कहलाता था। १८वीं शताब्दी मे, जब अहमद अब्दाली (दुर्रानी) सत्ता में आए, तो उन्होंने इसका नाम 'अफ़गानिस्तान' रखा।"(*नासिरा शर्मा,* **अफ़ग़ानिस्तान - बुज़कशी का मैदान**, नई दिल्ली,1990 भाग-1,पृ० 23)

(5) G FUSSMAN,op cit p 780 "a remote area open to Iranian influences" और यह आचार्य ऍस०चट्टोपाध्याय का उल्लेख करते है, क्योंकि उन्हे भारतीय स्रोतो का अच्छा-खासा ज्ञान है (S CHATTOPADHYAYA,The Achaemenids and India Calcutta,1974); लेकिन इस शोधकर्ता ने आचार्य-जी की कृतियो मे कुछ अशुद्धिया पायी है ,उद०"The Rule of the Achaemenids in India",The Indian Historical Quarterly 25,1949,p 195 में छपा है कि फारस देश के दरबार मे मगध के राणा की ओर से दूतगण भेजे गये ,मानो यह यहूदी इतिहासकार योसैपोंस् की रचना Jewish Antiquities XI,3 a(33) में वर्णित हो, परन्तु किसी भी प्रामाणिक सस्करण मे योसैपोंस्

निष्कर्ष यह है कि अशोक-काल के कम्बोज अवश्य भूतपूर्व अख़मेनी ईरान से प्रभावित लोग है ; लेकिन इस अर्थ मे वे निश्चित रूप से ईरानी नही है कि वे जाति, धर्म अथवा भाषा की दृष्टि से भी ईरानी हो, क्योकि वे अरामी लिपि का प्रयोग करनेवाले / अरामी भाषा समझनेवाले स्थानीय जनजातीय लोग अथवा अरामी-भाषाभाषीय अरामी / इस्राएली प्रवासी भी हो सकते है। धर्मपथ की दृष्टि से वे (तब तक) अ-बौद्ध हो सकते है[1] , और यह असम्भव नही है कि वे सनातनी[2] , अवेस्ती अथवा जनजातीय आदिम धर्म के अनुयायी हो । उदारचरित सम्राट अशोक उन्हे अरामी मे ही सबोधित करते है, क्योकि उनका क्षेत्र पहले फारसी प्रशासन-व्यवस्था के अधीन रहा।

153 ईरानी प्रशासन PERSIAN ADMINISTRATION

फारसी साम्राज्य का आरम्भ प्राय सा०स०पू० 550 से गिना जाता है, जब अख़मेनी वश का कुरुू-महान् संयुक्त फारस एव मादय महादेश का "राजाओ का राजा" (अरामी मे मेलेख् मल्‌कय्या) अथवा "राजाओ का स्वामी" (अ० मारे मल्‌कीन्) बना[3] ; फिर उसने "एशिया का राजा" की उपाधि धारण की[4] और अन्त मे "पृथ्वी-भर का राजा, महान् एव शक्तिमान्" । अशोकीय अभिलेखो मे प्रयुक्त उपाधियो को देखते हुए हमे अख़मेनी प्रशासन

का ऐसा कोई वर्णन नही मिलता।इतना ही लिखा है दारा-प्रथम के उत्सव में सिन्धु (अिन्दिकै) के स्थानीय शासक (तोप्-अर्‌ख़ोय्) भी सम्मिलित हुए । सही यही है कि यूनानी इतिहासकार क्सेनोफोन् अपनी रचना "कूरौ-पय्देय"(अर्थात् राजा कुरुू का प्रशिक्षण) मे किसी हिन्द राजा के दूतगण का वर्णन करता है ·"Ambassadors arrived from the king of India to learn the particulars of the quarrel between Media and Assyria And Cyrus [the Great] sagaciously conciliated them by proposing that the king of India should be made arbitrator in the question"(A.GRANT Xenophon Edinburgh.1871.p 133–Cyropaedeia 8 2) एक अन्य लेख में आचार्य चट्टोपाध्याय लिखते है कि सम्भवत: यूनानी व्यापारी ही अरामी लिपि का प्रयोग करने लगे और कि पाणिनि ने उसी अर्थ मे अरामी को "यवन लिपि" मान लिया था (दे० "The tribal immigration in Achaemenid India" The Indian Historical Quarterly.25. 1949.p 274, इसके सबंध मे बहुत पहले का निबंध देखें RAJENDRALAL MITRA."On the supposed identity of the Greeks with the Yavanas of the Sanskrit writers",Journal of the Asiatic Society of Bengal.43.1874.246-279.विशेषकर कम्बोजों के विषय में,पृ०260)। लेकिन अब अशोक के यूनानी अभिलेख भी प्राप्त हो चुके है और यह तर्कसंगत नही लगता है कि एक ही प्रकार के लोगों के लिए दो प्रकार की लिपियो का प्रयोग किया गया हो। फिर भी इतिहासकार हमेशा नया तर्क करने के लिए सतर्क रहे, क्योकि कभी भी सामान्य मान्य-सिद्धांत को चुनौती देनेवाली बात उठ सकती है ,उद० मथुरा के संग्रहालय की "कम्बोजिका" figure of a Greek lady. commonly known as Kambojika the daughter of Kamboja country" (JITENDRA KUMAR .Museum.Mathura.1989.p 48).

(1)दे०B.N PURI op cit p 91."The progress of Buddhism to the north of Afghanistan is also borne out by a Kharoṣṭhī inscription on a clay object recovered from the Begram excavations in the first layer,placed between the third and second centuries B.C ,recording a Buddhist name" (2) दे० D.C SIRCAR,Select Inscriptions,vol I,p 8. (यह प्रथम सदी सा०सं०कालीन कन्दहार प्रात के सबंध में कहते है)" Hindu civilisation prevailed in this country which remained more Indian than Iranian"

(3) दे० दानिएल ग्रंथ 2 37 और 2.47 (4) यूनानी इतिहासकार अर्रिअनोस् के अनुसार पसर्गदेय् में कुरुू की समाधि पर "पेर्‌सिक " (फारसी) अक्षरो में अंकित (King of Asia :ARRIAN,Anabasis of Alexander 6 29.8).

की उपाधियो पर ध्यान देना चाहिए । हम आगे देखेगे कि तक्षशिला के अरामी अभिलेख मे अशोक को "स्वामी" (अ० म्‌र्‌न्‌) कहा गया है। इसका तात्पर्य यह नही है कि वह उस समय तक 'राजा' नही बल्कि केवल राज्य-पाल थे ; क्योकि स्वय कुरुष् . जो प्राचीन ससार के सब-से विस्तृत क्षेत्र पर शासन कर रहा था. 'स्वामी' भी कहला सकता था। क्षत्रप-क्षेत्र के प्रमुख शासक को ईरानी भाषा मे 'ख़्शाफपाव-' कहते थे . यूनानी मे 'सत्रपैस्' और अरामी मे "अॅख़्शदर्पन्"[1]। प्रात के शासक उसके अधीन थे। उन प्रात-अधिकारियो को अरामी मे **पॅख़ा** कहते थे. जो प्राचीन अक्कादी प्रशासन का शब्द है[2]। फिर भी. एक शक्तिशाली पॅख़ा-प्रातपति कभी क्षत्रप के समान ही था.उद० बेहिस्तून अभिलेख[3] के अरामी रूपातर मे बख़्त्रिया के क्षत्रप ददर्शिस को पॅख़ा बताया गया है। साधारण उच्चाधिकारी के लिए सरकारी-अरामी शब्द **सॅघन्** प्रयुक्त होता है, जब कि यूनानी प्रयोग मे 'अर्‌ख़ोन्' अथवा 'स्त्रतैगॉस्' मिलता है ।

फारसी साम्राज्य की सुव्यवस्थित शासन-प्रणावी के कारण चारो ओर के छोरो पर स्थित देशो के बीच सम्पर्क-सेतु बद गया ; व्यापारिक एव सास्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया गतिशील हो गई। यद्यपि केन्द्रीय शासन की औपचारिक भाषा प्राचीन-ईरानी बनी रही. फिर भी सम्पूर्ण प्रशासनिक जाल साम्राज्यिक सम्पर्क-भाषा अरामी से ही बुना हुआ था। बाहर-वालो की दृष्टि मे ईरानी शासक निरंकुश थे। यूनानी अपने को धन्य मानते थे कि वे उन के चगुल से बच निकले। तौभी यूनानी इतिहासकार उनमे दिलचस्पी रखते थे। क्सेनॉफोन् अपनी रचना 'कूरॉ-पय्दॅय' मे राजा कुरुष् का यह आदर्श-वाक्य प्रस्तुत करता है कि शासक को अपनी शासित प्रजा से अधिक गुण-वान होना चाहिए[4]। सामारिक सहायता हेतु सम्राट कभी भारत की जन-शक्ति की आशा कर रहा था[5]।

---

(1) दे० दानिएल 3 2 । (2) T.PETIT " L'évolution sémantique des termes hébreux et araméens PHH et SGN .".Journal of Biblical Literature 107 1988 pp 53-67 यूनानी में प्रांतपति को ऑप्‌-अर्‌ख़ॉस् अथवा तॉप्‌-अर्‌ख़ॉस् कहते है (दे०ऊपर,योसेपॉस् का उल्लेख)। (3) बेहिस्तून के त्रिभाषीय अभिलेख और उसके अरामी अनुवाद के सबध में नीचे देखें ।

(4) सर् ए०ग्राट् के अनुवाद मे:"No man has any business with government who is not himself better that those whom he governs".

(5) A GRANT,Xenophon,p.148 " (Cyrus said) ' From the Indian king I should be glad to accept a contribution,if he would offer it !' (And the Indian king sent this message) ' I am glad,Cyrus,that you let me know what you needed I desire to be your friend ' "

दारा-प्रथम की अभिरुचि व्यापारिक सबध बढ़ाने मे थी और उसने सिन्धु की धारा का पता लगाने के लिए यूनानी नाविक स्कुलक्स् को खोज-यात्रा मे भेजा। यूनानी इतिहासकार हैरोदोतोस् की प्रसिद्ध करदाता-सूची मे 'अिन्दिअ' बीसवा व अन्तिम क्षत्रप-क्षेत्र गिना गया (**इतिहास** 3:90-94)[1], जो पूर्व सीमान्त पर सब-से दूर और सब-से समृद्ध था। ईरानी 'हिन्दुश-/ हिदुश्- नाम के इस क्षत्रप-क्षेत्र का विस्तार निश्चित नही है। सम्भवत दर्दिस्तान (पजाब) तक फ़ारसी राजसत्ता की पहुंच थी। लेकिन जब हम अशोक-काल मे फ़ारसी प्रशासन के परिणाम पर विचार कर रहे है, तब उसका सम्भावित प्रभाव केवल उस एक हिन्दुश-क्षत्रपक्षेत्र के कारण नही समझना चाहिए; क्योकि मौर्य राजसत्ता पश्चिम की ओर सिन्धु के पार अन्य चार-पाच पूर्वकालिक क्षत्रपक्षेत्रो अथवा अर्ध-क्षत्रपक्षेत्रो मे पहुच सकी थी और एकाध पड़ोसी क्षत्रपक्षेत्रो से भी उसका सीधा सम्पर्क बना था। इस प्रकार यूनानी नामकरण मे 'अिन्दिअ' के अतिरिक्त कम-से-कम आठ प्रभाव-क्षेत्र गिने :

1. सोग्दिअनै (ईर० सुगुद-), ऑक्सोस्-नदी के उत्तर मे
2. बक्त्रिअनै (ईर० बाख्त्रिश-), ऑक्सोस्-नदी के दक्षिण मे
3. अरैयनै (ईर० हरैव-), बक्त्रिअनै के नीचे , पश्चिम की ओर
4. परपमिसदय् (प्राचीन अक्कादी Paruparaessana[2]) हिन्दूकुश-पर्वत के इर्दगिर्द
5. गन्दरिअ (ईर० गन्दार-/गदार-) स्वात और सिन्धु नदियों के बीच[3]
6. द्रङ्गिअनै (ईर० ज्रक-) अरैयनै के नीचे , पश्चिम की ओर
7. अर्खोसिअ (ईर० हरखुवतिश-) उसी के नीचे , पूर्व की ओर
8. गद्रोसिअ (ईर० मक-) दक्षिणी समुद्र-तट तक

फिर भी हमे इस बात को दुहराना चाहिए कि ईरानी शासन-प्रणाली का इस हद तक प्रभाव न समझे कि मौर्य प्रशासन का समूचा ढांचा अख़मेनियो की अनुक्रिया में ही खड़ा किया गया हो।[4]

---

(1) दे० PAUL BERNARD, "Les Indiens de la liste des tributs d'Herodote", Studia Iranica, 16, 1987, fasc.2, pp.177-191 दारा-प्रथम के बेहिस्तून-अभिलेख, परसेपोलिस-अभिलेख और नक़्श-इ-रुस्तम-अभिलेख तथा क्षयर्ष के परसेपोलिस-अभिलेख में 20 से अधिक, याने 29 या 30 क्षत्रप-क्षेत्रों के नाम मिलते है। (2) अर्थात् "पर्वत के पार का देश जो गरुड़-उड़ान से ऊंचा है" ।

(3) दे० B.N PURI, op cit, p.305 "The ancient Indian *mahājanapada* or state of Gandhāra, bounded on the west by Lamghan and Jelalabad, on the north by the hills of Swat and Buner, and on the east by the river Indus and on the south by the Kalabagh hill"

(4) दे० यह अतिशयोक्तिपूर्ण उक्ति : "The Mauryan administrative boards, state departments and officers were echoes of Achaemenian Iran" (SUNITI KUMAR CHATTERJI, op.cit., p.27)

बेबीलोन महानगर से मादय देश की राजधानी एकबतना की ओर जाते समय बेहिस्तून से होकर चलना पड़ता है, जहा सम्राट दारा-प्रथम ने अपने शासनकाल (सा०स०पू० 522-486) के आरम्भ मे अगम्य स्थान की ऊची चट्टान पर अपना प्रसिद्ध त्रिभाषीय शिलालेख खुदवाया। कोई भी यात्री इसे देखकर[1] स्तम्भित रह जाता था; अत पाटलिपुत्र के अशोक-महल मे इसकी अवश्य चर्चा हुई कि आदर्श चिरस्थायी चट्टान-लेख कैसा दीखना चाहिए।
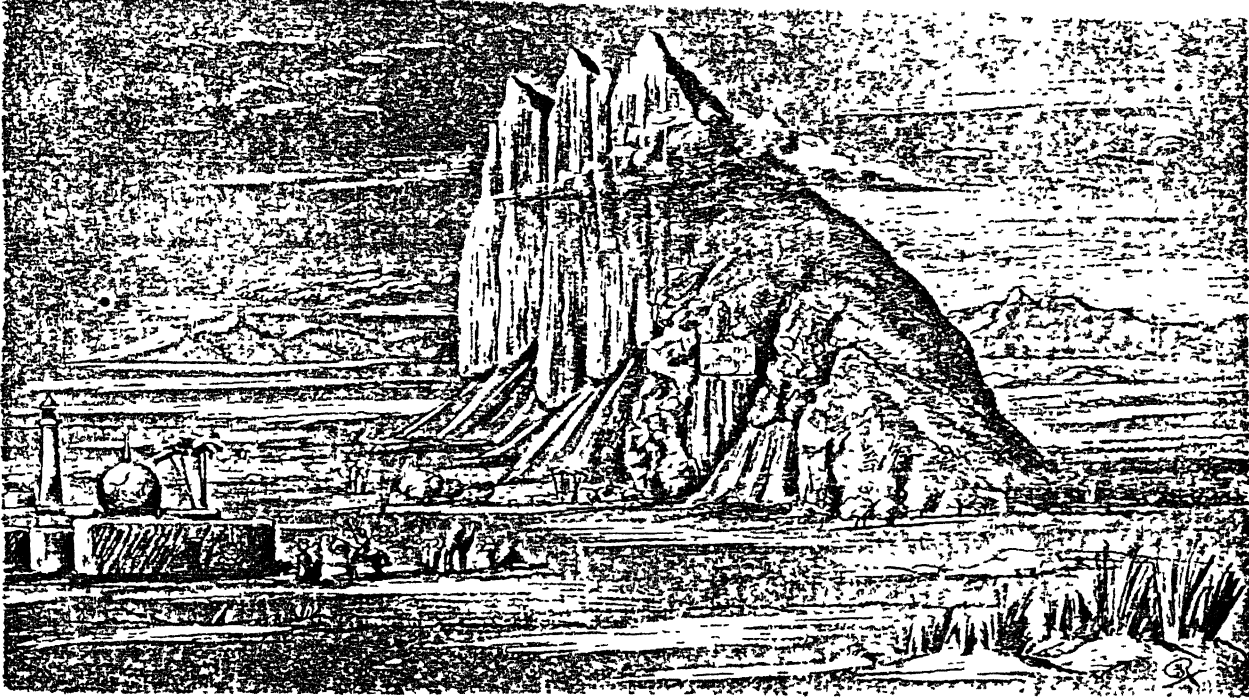
बेहिस्तून अभिलेख में अगल-बगल प्रदर्शित तीन प्राचीन भाषाओ का प्रयोग हुआ : ईरानी, एलामी और (बेबीलोनी) अक्कादी [2]। सम्राट दारा दावा करता है कि उसने पहली बार फारस की भाषाओ के लिए नई लिपि प्रयुक्त की है। वास्तव मे, यह सिर्फ प्राचीन कीलाक्षर-लिपि का सरलीकृत रूप है [3]। इसी बहुभाषीय शिलालेख के आधार पर हेन्री रॉलिसन् ने सन् 1835-1847 में कीलाक्षर-लिपि का रहस्योद्घाटन कर पाया। यद्यपि दारा की अपनी राजभाषा

---

(1)निम्न क्रेयन चित्रण G RAWLINSON.Memoir of Major-General Sir H C.Rawlinson p 146 (2) दे० *ईश्वर चन्द्र राही*, **लेखन कला का इतिहास**,लखनऊ,1983,खण्ड-1.पृ०257-281 विद्वान लेखक बेहिस्तून का अवेस्ती में अर्थ "बाग-स्तान",देव-स्थान, बताते है।

(3) दे०DAVID TESTEN."Old Persian Cuneiform" in P DANIELS & W BRIGHT.eds.The World's Writing Systems Oxford 1996.p 134: "Although inspired by cuneiform the Old Persian script is essentially an alphabetic writing system invented early in the reign of Darius I"- इसमे 3 स्वर-वर्ण (अ,इ,उ),13 स्वर-रहित व्यंजन-वर्ण,20 स्वर-सहित आक्षरिक वर्ण, 7निर्धारक भावचित्र वर्ण (ideogram- राजा,देश,देव,भूमि और अहुर-मज़्द के तीन रूप) तथा एक-एक शब्द-विभाजन का चिह्न और अंक-चिह्न । अशोक द्वारा ब्राह्मी का प्रयोग / आविष्कार कोई कम उपलब्धि नही है।

ईरानी थी, फिर भी इस अभिलेख का आधारभूत प्रारूप अक्कादी मे तैयार किया गया था ; क्योकि इसमे कुछ अतिरिक्त विशेष सामग्री है। फलत हमे मानना पढ़ेगा कि बहुभाषीय अभिलेखो मे यह अनिवार्य नही है कि विभिन्न मूल अथवा अनूदित पाठ एक-समान हो । वैसे तो भव्य ऊचाई पर शोभायमान मूल बेहिस्तून शिलालेख अपठनीय है। वह मूक अमर साक्ष्य के रूप मे अकित किया गया ;लेकिन इसका सदेश अन्य माध्यम से जनता तक पहुचाया गया - जैसे अन्त मे लिखा है : "अहुरमज़्द की कृपा से मैने अपूर्व ढग से ये लेख खुदवाये और सभी देशो मे उनकी प्रतिलिपिया भिजवाई, ताकि लोग उन्हे पढ सके"। उदाहरणार्थ, बेबीलोन मे एक खण्डित शिलाफलक प्राप्त हुआ, जिसपर बेहिस्तून की अक्कादी प्रतिलिपि अकित है। व्यापकतर प्रसार हेतु अरामी भाषा का सहारा लिया गया और अनूदित पाठ को पटेरपत्र (पपाइरस) पर उतारा गया। बेहिस्तून अभिलेख की ऐसी अरामी प्रति मिस्र देश के एक फारसी सैन्य-शिविर मे मिली है, जो नील-नदी के ऐलिफैंटाइन् नामक द्वीप पर स्थित था [1]। लगता है कि बेहिस्तून अभिलेख एक उपयुक्त नमूना बन गया, जो राजसी अधिकार जताने के लिए प्रशिक्षित दरबारी लिपिको की शैली मे बार-बार प्रयुक्त होनेवाला था [2]। इसका सकेत यह है कि ऐलिफंटाइन् का अरामी पटेरपत्र दारा-प्रथम के शासनकाल का नही है ; वह एक साहित्यिक स्मृतिलेख मात्र है, जो सा०स०पू० 423 मे दारा-द्वितीय के राज्याभिषेक के अवसर पर राजभक्ति प्रदर्शित करने हेतु पुन: उतारा गया।

इसके अतिरिक्त बेहिस्तून की अरामी प्रतिलिपि एक कृत्रिम रचना है : इसमे कुछ अश छोड़ा गया, कुछ अश जोड़ा गया और वह सम्पूरक अश दारा-प्रथम के अन्य अभिलेख से लिया गया, जो उसकी नई राजधानी परसे-पोलिस के निकट शाही समादि-स्थल नक़्श-इ-रुस्तम से प्राप्त हुआ। उसमें उत्तम शासक का गुणगान किया गया है, जो धार्मिको का मित्र एव निर्बलो का सहायक हो। सम्राट दारा विनम्रतापूर्वक स्वीकारता है कि उसके राजवैभव

---

(1)ए० काउली उस अरामी प्रति-अभिलेख के सबंध में यह जानकारी देते है, जो अशोकीय अरामी पाठ के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकती है" For international purposes Aramaic was used,and it is natural that the official Aramaic version should follow the official Babylonian text So important a piece of work was no doubt done officially by the great king's own scribes, and sent out to the chief men of the provinces, who would preserve the record and make it known by public reading to their people or by publishing copies of it " (A.COWLEY.Aramaic Papyri of the Fifth Century B.C..1923.p 249) (2) दे०A.LEMAIRE."Les écrits araméens" in A.BARUCQ e a . Écrits de l'Orient Ancien et Sources Bibliques Paris,1986.p.247

का स्रोत सर्वोच्च प्रभु का अनुग्रह है ; परन्तु एक पथ दो काज. उसी वाक्य मे वह आत्माभिमान से घोषित करता है कि मुझे अहुरमज्द की कृपा इसलिए प्राप्त हुई कि मै कभी झूठ नही बोला. न मैने क्रूर व्यवहार किया. अपितु निर्बल और सबल दोनो पर मै निष्पक्षता से शासन करता था और हमेशा धर्मनिष्ठ रहा हूँ।

दारा-प्रथम ने न केवल लिपि और बहु-भाषा के प्रयोग द्वारा. वरन् राजधर्म उद्घोषित करने के द्वारा भी एक नई परम्परा का सूत्रपात किया[1]। उसके अभिलेखो मे राजनीतिक उद्देश्य के साथ धर्मनीति भी जुड़ी हुई थी । इसके सबध मे हम ऍफ्० शिअल्पी के विचार से अपनी यह असहमति व्यक्त कर चुके कि अशोक के धर्मलेखो की नैतिक अभिप्रेरणा ईरानी शाही परम्परा के अनुरूप नही है। जैसे आर्० व्हीलर् ठीक ही कहते हैं : चट्टान पर लेखाकन को सचरण का माध्यम बनाने मे फारसी सम्राट ने अवश्य पहल की है. लेकिन प्रियदर्शी अशोक के धम्म-अभिलेखन की शैली मे अभूतपूर्व मौलिकता है । एक ओर. फारसी सम्राट स्वधर्म के गर्व से अपने शत्रुओ को ललकारते हुए शेखी बघारता है ; दूसरी ओर. बौद्ध राजा अपनी प्रजा को विनम्रतापूर्वक सम्बोधित कर सद्धर्म के व्यावहारिक आदर्शो की शिक्षा देते है [2]।

ईरानी और विशेषकर अरामी लिपिकारो की मडली मे साम्राज्यिक अभिलेख अभ्यास एव अनुकृति की वस्तु बने रहे और नकल-नवीसो की परम्परा अशोक के दिनो तक कायम रही। इसलिए अभिलेखन के उन नमूनो पर गौर करे. जिससे अशोकीय अभिलेखो की प्रतिरूपता या असमानता निखर आए। लेकिन बेहिस्तून और नक्श-इ-रुस्तम अभिलेखो के उस आशिक अरामी अनुवाद पर. जो ऍलिफैंटाइन् के पटेरपत्र मे सुरक्षित है. हम बाद में. पुरालेखीय अध्ययन के अध्याय मे. ध्यान देगे। यहां बेहिस्तून एव नक्श-इ-रुस्तम के आरम्भिक अंश "क" के ईरानी पाठ को

---

(1)दे०J DUCHESNE-GUILLEMIN.Religion of Ancient Iran.Mumbai.1973(1962).p.53 "[Darius]proclaimed in this inscription and others. the supremacy of a god whom Cyrus did not even mention.'Ahurmazda.the greatest of the gods' "

(2)R WHEELER."Iran and India in pre-Islamic times".Ancient India.4.1947-8.p 98-" The Behistun rock-inscription of Darius I dates from c 518 B.C , there is in India no precedent for the rock-edicts cut at the bidding of Aśoka in and after 257 B C> In these things.the Mauryan emperor was deliberately adopting the methods of the Great Kings. whose mantle had in a sense descended upon him. But the resemblance is one of technique. not of spiritual or aesthetic content Save for an occasional formula nothing could be more unlike the commemorative and administrative records of the proud Persian despots than the gentle exhortations of the equally despotic but more humble-minded Buddhist king"

अपने तुलनात्मक विमर्श के लिए चुन ले, क्योकि प्राचीन ईरानी और सस्कृत-प्राकृत एक ही भाषा-परिवार के सदस्य है। बेहिस्तून की प्रथम ईरानी पक्तियो के लिप्यन्तरित रूप और इनके शाब्दिक सस्कृत अनुवाद की समानता देखें[1]:

प०1 (ईर०) **अदम दारयवउश्, ख्शायथिय वज़रक, ख्शायथिय ख्शायथियानाम, ख्शायथिय पारसईय,**
(स०) अहम् दारयवहु: . क्षत्रिय वप्रक . क्षत्रिय क्षत्रियानाम् . क्षत्रिय पार्से .
(हि०) *मैं दारा [हूँ] , सामर्थी राजा , राजाओ का राजा , फारस मे राजा ,*

ख्शायथिय दह्यूनाम, विश्तास्पह्या पतर, अर्शामह्या नपा, हखामनीशीय !
क्षत्रिय दस्युनाम् . विश्तास्पस्य पुत्र . अर्शामस्य नप्ता . हखामनिशिय !
[अनेक] देशो का राजा , विश्तास्प का पुत्र , अर्शाम का पौत्र ,[और] अखमेनी-[वशीय] !

दारा ईरानी नाम "दारय-वउश" का अर्थ है "सम्पन्नता (स० वसु) धारण करनेवाला"। लेकिन अन्य भाषाओ मे व्यक्तिवाचक शब्दो के ध्वनि-परिवर्तन मे कोई सीमा नही है अरामी मे "दार्यावॅश्", यूनानी मे "दरॅयॅास्", अग्रेजी मे "डरायस्" ।

प०3 **...थाति दारयवउश् ख्शायथिय : ...**
शसति दारयवहु क्षत्रिय
...राजा दारा कहते हैं : ...

कहते है इस बहु-प्रयुक्त अधिकारपूर्ण सूत्र पर पहले भी (दे०ऊपर पृ०106) विचार किया गया है , क्योंकि अशोकीय अभिलेखो मे राजादेश ऐसी ही नियत उक्ति से आरम्भ होता है। उनके अरामी अभिलेखों के रहस्यमय व्यजन -स् ह् य् त् य् उसी ईरानी सूत्र की नकल मे अथवा उसके प्रभाव से प्रयुक्त हुए - चाहे ये मूल प्राकृत राजाज्ञा के आशिक उल्लेख का सकेत देते है अथवा मूल का सही अनुवाद करने मे अरामी अनुवादक की असामर्थ्यता दर्शाते है।

प०10 *...अहुरमज़्द की इच्छा से मै राजा हूँ । ... अहुरमज़्द ने ही मुझे राज्य प्रदान किया है । ...*

अहुरमज्द अर्थात् "देव (स०असुर),जो सर्वज्ञानी (स० मेधस्) है"। ध्यान दें कि बेहिस्तून के अक्कादी प्रारूप में प्रभु अहुर-मज्द का नाम कभी छोड़ा गया अथवा उसके स्थान पर कभी बेबीलोनी देवता मरदूक का नाम रखा गया। बहु-भाषीय अभिलेखों मे अनुकूलन (adaptation) की प्रवृत्ति अनजान में भी अनुवादक को रूपान्तरकार बना सकती है[2]।

प०15 *...[उस-उस देश के लोग] मेरे पास आए ...*

पास आए ईरानी मे **पतिय-अइश** , अर्थात् जो किसी की ओर (प्रति) गये (सं० धातु " ई")। अशोकीय अरामी मे ईरानीकरण के ऐसे अनेक पूर्वप्रत्यय अथवा उपसर्ग मिलते है प् त् य् (=ईर० पतिय) , ह् व् (=ईर० हु- , स० सु-) ।

---

(1)दे०SUKUMAR SEN,Old Persian Inscriptions of the Achaemenian Emperors,Calcutta,1941 (E.HERZFELD,1938 के संस्करण पर निर्भर) , D C SIRCAR,Select Inscriptions ch 1 "Inscriptions of the Akhaemenians",pp 1-14

(2)दे०A.COWLEY,op cit .p 249 "The mention of Auramazda was purposely omitted as unacceptable to the Babylonians It seems that the copies distributed either were intentionally adapted to their readers, or that they unintentionally diverged from the original"

प०24 ...*जो देश मुझसे अलग हुए, वे अब अहुरमज्द की इच्छा से मेरे अधीन हुए और मुझे कर देते हैं। ..उन देशो मे जो मनुष्य अनुकूल था, उसे मैंने अच्छा इनाम दिया ; लेकिन जो मनुष्य प्रतिकूल था, उसे विधि के अनुसार बड़ा दण्ड दिया। . .*

कर ईरानी मे **बाजिम** , जो शायद एक देय "भाग" है (सं०धातु "भज्")। अहुरमज़्द को ईरानी मे **बग-**, अर्थात् भाग्य का विधाता "भगवान" , कहा गया है।
विधि उस ईरानी शब्द **दात-** (सं० धातु "धा" से "हित"-की-विधि) को सामान्य साम्राज्यिक अरामी मे ग्रहण किया गया है। आश्चर्य नही कि तक्षशिला के अरामी अभिलेख मे (सम्भावित पाठ-निर्धारण के अनुसार) उसका प्रयोग "धम्म "के लिए हुआ।

आगे, बेहिस्तून "क",पक्ति 96 तक, उस व्यापक देश-द्रोह (ईर० **द्रौग-**) का विस्तृत वर्णन है, जिसे सम्राट ने सफलतापूर्वक दमन किया। प्रत्येक दुष्ट विद्रोही के सबध मे बताया गया कि कितने महीने (ईर० **माह-**, अशोकीय अरामी मे भी प्रयुक्त) वह दुष्कर्म करता रहा और अपेक्षाकृत कितना दण्ड उसे भोगना पड़ा। अन्य विरोधियो के विषय मे द्वितीय खड "ख" मे विवरण मिलता है ; तब उसकी 16वी पक्ति के मध्य से ऐलिफैंटाइन् का अरामी अनुवाद उपलब्ध है (जिसके बारे मे आगे देखे)।

अब नख्श-इ-रुस्तम अभिलेख, खड "क" की आरम्भिक पक्तियो पर दृष्टि डाले :

प०1 *अहुरमज्द एक शक्तिमान ईश्वर है, जिसने इस पृथ्वी को रचा , उच्च लोक को रचा , मनुष्य को रचा और मनुष्य के लिए ही सुख-शान्ति को रचा। उसी ने दारा को राजा बनाया है ,जो बहुतो के एक ही राजा हैं और बहुतो के प्रमुख।*

रचा ईरानी मे भूतकाल का क्रिया-रूप **अदा** , जिसकी धातु **दा** (सं० "धा") ऊपर विश्लेषित शब्द **दात-** (विधि)मे भी मिली। इसी कारण, तक्षशिला के पाठ में, उस शब्द का वैकल्पिक अनुवाद "रचाया गया" , अर्थात् सृष्ट प्राणी , ठहराया जा सकता है।
सुख-शान्ति ईरानी मे **शियतिम** , इस शब्द का प्रभाव अशोक के अरामी अनुवादक पर पड़ा, जब राज्य की सुख-समृद्धि के लिए उसने **श्‌त्‌य्** को चुना (दे० श०अ०3)।
प्रमुख ईरानी मे **फ़्रमातर्** , अर्थात् **फ़्र-** (प्रधान) और धातु **मा** (मापना) ।

प०8 ...*मैं , दारा हूँ , सामर्थी राजा , राजाओ का राजा ,विश्व-जनो के देशो का राजा और दूर-दूर तक विस्तृत पृथ्वी का राजा।... मैं आर्य हूँ तथा आर्य-वंशी ।...*

विश्व-जन ईरानी मे **विस्प-ज़न** , समस्त मानव-जाति। समास का पहला अश **विस्प-**(=सब) **अशोक के** खडित अरामी पाठ की पुनर्स्थापना के लिए काम आ सकता है ।
आर्य ईरानी मे **अरिय** , अर्थात् गुणी ।

नख्श-इ-रुस्तम, खड-"क", के अन्त (प०58-60) मे धर्मनीति का आह्वान है : *ओ मनुष्यो ! अहुरमज्द की जो भी आज्ञा हो, वह तुम्हे अप्रिय न लगे । तुम सीधा पथ मत छोड़ना ! विद्रोह न करना ... ।*

आज्ञा ईरानी मे **फ़माना** (स० प्रमाणम्) , ऊपर विश्लेषित शब्द **फ़मातर्** (प्रमुख) से तुलना करे ।
सीधा ईरानी मे **रास्त-** , जिसकी धातु **रज्** सस्कृत "ऋज्" के समान है ।
पथ ईरानी मे **पथि** , जो शब्द सम्भवत लघमान के दोनो अरामी अभिलेखो के रूप " क्र्-पत्य् " मे पहचाना जा सकता ।

नख़्श-इ-रुस्तम के शेष पाठ (खण्ड "ख") का अरामी अनुवाद बेहिस्तून के एलिफैंटाइन्-पटेरपत्र मे सम्पूरक के रूप मे जोड़ा गया। साम्राज्यिक अभिलेखो का नैतिक पक्ष उसी मे सर्वाधिक उजागर हुआ (इसपर आगे विवेचन होगा)। अच्छा होता कि अशोक के बहुभाषीय अभिलेखो मे सम्भावित ईरानी शब्दावली ढूँढ़ने के लिए हम सभी अखमेनी अभिलेखो की छानबीन करे; लेकिन यहाँ इससे सतोष करे कि लिपिकीय परम्परा के प्रभाव के प्रति हम जागरूक बने। उदाहरणार्थ, हमारे अध्ययन हेतु ईरानी-अरामी अभिलेखन की परम्परा का शब्द "स्तम्भ" किसी पाठ-निर्णय मे काम आ सकता है : ज्ञात हुआ कि सूसा के राजमहल-लेख,खण्ड "ग"-प०45, मे ईरानी शब्द **स्तूना** (स० स्थूणा) तो प्रयुक्त हुआ, पर सदर्भ से मालूम हुआ कि इसका तात्पर्य यहाँ "स्तम्भावली" (कॉलनेड्) है।

फारसी साम्राज्य के इतिहास से हम यह भी सीखते है कि दारा के उत्तराधिकारी क्षयर्ष-प्रथम के शासनकाल (सा०स०पू० 486-465) मे अखमेनी धर्मनीति इतनी उदार नही रही। उसका कुख्यात "दैव-अभिलेख" असहिष्णुता का नमूना है : प० 35-40मे राजा का फरमान है कि " विद्रोही देशो मे ऐसा देश था जहाँ पहले 'दैवो ' की पूजा होती थी ; लेकिन अहुरमज्द की कृपा से मैने 'दैवो ' के मन्दिर नष्ट किये और यह घोषित किया : अब से कोई 'दैवो ' की पूजा न करे ! जहाँ पहले 'दैवो ' की पूजा होती थी, वहाँ मै अहुरमज्द की आराधना कराऊँगा "। क्या सम्राट पश्चिमोत्तर भारतवर्ष के देव-स्थानो की बात करता है — जैसे डा० दिनेशचन्द्र सरकार मानते है[1] ? लेकिन क्षयर्ष की यह अधर्म की नीति भी एक राजनीति है ; अपना ही शासन दृढ करने हेतु वह फारस के सम्प्रदायो मे एकीकरण का धर्मसुधार चलाता है[2]। फिर भी दैव-अभिलेख के अन्त मे धर्मपुण्य के मगल का सदेश है: "जो कोई अहुरमज्द के सत्य विधि-नियम का आदर कर केवल उसी की आराधना करता है . . वह अपने जीवनकाल मे

---

(1) D C SIRCAR,op cit ,p 14 (2) दे० MARY BOYCE,"Persian religion in the Achemenid Age",in D FINKELSTEIN,Cambrige History of Judaism,vol I p 294 The obvious explanation of Xerxes' statement is that he as a Zoroastrian had destroyed an Iranian sanctuary where those gods of ware [idols] were still worshipped . whom Zarathushtra had condemned as having 'afflicted the world and mankind' (Yasna 30.6)",

सुखी होगा और मृत्यु के बाद धन्य (ईर० अर्तवान// स० ऋतवान्) माना जाएगा "। क्षयर्ष के बाद "धन्य"(अर्त-) अर्तक्षत्र-द्वितीय (सा०स०पू० 404-359) आया, जिसके दीर्घ शासन का रहस्य राजदरबार का वैद्यनाथ क्तैसिअस् था। वह यूनानी था और फोतिऑस्[1] के अनुसार उसने तेईस खंडो का ग्रन्थ " पेर्सिक " लिखा तथा उतना ही विशाल ग्रन्थ "अिन्दिक"। काश कि वे अनुसधान के लिए उपलब्ध होते। तदुपरान्त क्रूरतम सम्राट अर्तक्षत्र-तृतीय आया, जिसने राजपरिवार मे सहोदर बधुओ की हत्या की ,विद्रोहियो का सहार किया और मिस्र मे मदिरो का भी सफाया कर दिया। मिस्र के दमन मे हजारो इस्राएली प्रवासी कैस्पियन-सागर के दक्षिण-पूर्वी तट पर, हुर्कनिअ मे, जबरन बसाये गये । सम्भवतः ॲलिफ़ैटाइन् के अरामी-भाषाभाषी भृतिक सैनिको को भी अन्यत्र (सिन्ध की ओर ?- देखिए नीचे विशेष टिप्पणी) हटाया गया। क्या दमनकारी फारसी सेना मे भारत से भी भाड़े के सैनिक शामिल हुए ? कटु सत्य है कि वैश्विक आदान-प्रदान न केवल व्यापारिक एव सास्कृतिक क्षेत्र मे , वरन् सैन्य-माध्यम से भी हो जाता है। लेकिन भारतीय गज-सेनादल का प्रयोग विशेषकर बढ़ती हुई नव-यूनानी शक्ति रोकने के लिए होने-वाला था। अगले अध्याय मे देखेगे कि सिकन्दर की दिग्विजय के कारण ईरानी प्रभाव-क्षेत्र मे क्या परिवर्तन हुआ।

155 विशिष्ट टिप्पणी : क्या अेलेफ़नृतिनै का ईरानी सैन्य-शिविर पूर्व में स्थानान्तरित हुआ ?

SPECIAL NOTE : WAS THE IRANIAN CAMP OF ELEPHANTINE SHIFTED TO THE EAST ?

ऊपर अनेक बार " ॲलिफैटाइन् " के अरामी-भाषाभाषी भृतिक सैनिको (mercenaries) का उल्लेख हुआ। वे ईरानी शासन के अधीन थे और ईरानी शासको से पत्र-व्यवहार करते थे। यद्यपि उनका शिविर साम्राज्य के दूर पश्चिम मे स्थित था, उनके हाल-चाल से विशाल ईरानी प्रभाव-क्षेत्र के दूर पूर्व के लिए भी तात्पर्य हो सकता है।

155~(1) : **अरामी-भाषाभाषी भृतिक सैनिक**

फारसी साम्राज्य के आरम्भिक दिनो से नील नदी के प्रथम जल-प्रपात पर एक सैन्य शिविर स्थापित हुआ , क्योकि नावो का माल यहाँ स्थल-मार्ग से ऊपर-नीचे उतारा-चढ़ाया जाता था और निग्रानी की आवश्यकता थी। माल मे हाथीदात भी था, जिसके कारण उस स्थान का नाम प्राचीन कॉप्टिक भाषा मे "इएब"(हाथी-पुर) पड़ा ,

---

(1) नवी सदी (सा०स०) की रचना " बिब्लिओथेके " मे उल्लिखित ।

अरामी रूपातर मे " यॆभ् "और यूनानी अनुवाद मे " ऎलेफन्तिनै "। इस स्थल में बहुत-से अरामी पटेरपत्र प्राप्त हुए, जिनमे यॆभ् के शिविर को "बीरा", अर्थात् किला या गढ, कहा गया है। आज इसके सामने अस्वान बाध का निर्माण हुआ। पास मे एक बाजार था, जिसे कॉप्टिक मे "सुअन", अरामी अक्षरो मे "स्वन्"और यूनानी मे "सुऎनै" कहते है। यहॉ भी अरामी पत्र प्राप्त हुए (इस शोध के द्वितीय भाग मे उन सारे पटेरपत्रो का ब्योरा दिया जाएगा)। इसलिए अनुमान लगाया जाता है[1] कि यॆभ् के गढ मे तैनात सब भृतिक-सैनिक अरामी-भाषाभाषी इस्राएली थे, जो पहले यहूदा प्रदेश के वासी थे और यरूशलेम के पतन के बाद मिस्र मे शरणार्थी बने। तब उन्हे फारसियो के गढ मे नौकरी मिली । लेकिन यहूदी व्यवस्था की दृष्टि से वे धर्मभ्रष्ट हुए, क्योकि उन्होने अपना एक नया मन्दिर खड़ा किया – जब कि इब्रानी-अरामी धर्मग्रथ तॅनख् का स्पष्ट आदेश है : प्रभु-नाम का मन्दिर केवल यरूशलेम मे होगा।

विद्वानो ने ए०व़न् होनकर् के उस सुझाव पर कम ध्यान दिया कि ऎलेफन्तिनै के सभी अरामी-भाषाभाषी सैनिक यहूदा-वासी "यहूदी" नही हो सकते है[2]। सा०स०पू० छठी सदी तक उन दक्षिणी इस्राएलियो मे अरामी भाषा इतना प्रचलित नही हुई थी । ध्यान दे कि यॆभ् के सैनिको ने उस मन्दिर को अरामी मे "ऎघोरा" कहा , जो एक मूल असीरियाई-अक्कादी शब्द है। दूसरी ओर, वह मन्दिर "**यह्व्** "(=यहो अथवा याहु)के नाम पर प्रतिष्ठित था, जब-कि सामान्यत इस्राएल के प्रभु के नाम को पूर्ण रूप से "य्-ह्-व्-ह्" लिखा जाता है (जिसे अति-श्रद्धा से उच्चरित नही किया जाता ,परन्तु जिसके बदले मे "अॅधोनाय्" ,अर्थात् स्वामी-प्रभु, कहते थे ; फिर भी अनुमान है कि इसका मूल उच्चारण "यह्वॆ" था)[3]। इसलिए व़न् होनकर् का विचार है कि यॆभ् के सैनिक पहले उत्तर-इस्राएल (सामरी प्रदेश) के वासी थे। पड़ोसी देशो के प्रभाव से उत्तरी इस्राएलियो का धर्म समन्वयात्मक था और अपधर्म की अनधिकृत प्रथाओं से रंगा हुआ था, विशेषकर जब असीरिया के आक्रमण के बाद उनके बीच गैर-इस्राएली[4] भी बसाये गये।

हाल ही मे, के० वन् दर् तोर्न् ने उस विचार का समर्थन किया कि यॆभ् के अरामी-भाषाभाषी सैनिक मुख्यत

---

(1) जैसे *पीटर एक्रोयड,* **इस्राएली लोगों का इतिहास** ,लखनऊ ,1971(=PETER ACKROYD 1959),J A.THOMPSON The Bible and Archaeology Exeter.1976(1963) (2)A.VAN HOONACKER Une Communauté Judéo-Araméenne à Eléphantine en Égypte, aux 4e et 5e siècles av J C ,London,1915(ब्रिटिश् अकैडमी मे 1914 का भाषण – उसी वर्ष तक्षशिला का अरामी अभिलेख प्राप्त हुआ)।

(3) सच पूछा जाए तो "यहो / याहु " के रूप-परिवर्तन पर अधिक बल नही देना चाहिए, क्योकि पवित्र चतुर्वर्णी **य्-ह्-व्-ह्** के अनेक सक्षिप्त रूप अथवा समास के सधि रूप मिलते है, जैसे **यॅहो** (उद० यॅहो-शूअ़्), **यो** (उद० यो-शाफाट्), **याहू** (उद० यॅशअ़्-याहू), **याह्** (उद० हलॅलू-याह् = प्रभु की स्तुति करो।), **या** (उद० होशॅअ़्-या), **ये** (उद० ये-शूअ़् , ये-शू।)। फिर, सामी (सॅमिटिक्) भाषाओ मे यह स्पष्ट नही है कि शब्द के सामने-पीछे लगनेवाले अक्षर किसी क्रिया-रूप के अंग है अथवा सचमुच प्रभु-नाम य्-ह-व्-ह् के अवशिष्ट अश। अत प्रभु-नाम की व्युत्पत्ति और विस्तृत प्रयोग के सबध मे परस्परविरोधी तर्क प्रस्तुत किये जाते है (दे० M DAHOOD," The god Ya at Ebla ?" Journal of Biblical Literature ,100 1981,p 608 "There should be no difficulty in admitting that the god ya was worshipped by the people of Ebla This does not authorize one however, to equate Eblaite ya with Biblical Yahweh", S NORIN, "Jo-Namen und Jeho-Namen ", Vetus Testamentum 29,1979 , pp 87-97 & 30 1980 pp 239-240, A WRIGHT "A history of Israel" in R BROWN ed,op cit p 1228 " Thus far there is no clear evidence for a god yhwh before the time of Moses")। इस प्रकार की अटकल तक्षशिला के अरामी अभिलेख के सबध में भी लगायी जा सकती है, क्योकि त०5 मे अरामी अक्षर य् ह् व् ह् ही मिलते है। यह कदापि प्रमाण नही है कि यहूदी आराधकों ने इस अभिलेख को लिखवाया । यह केवल क्रिया-धातु **ह् व् ह्** (होना) का सामान्य क्रिया-रूप है—यद्यपि सही है कि चतुर्वर्णी श्रीनाम य् ह् व् ह् का वही अर्थ है . " वह है ", परम सत् प्र-भु । सक्रमण की सभावना इस बात से भी बढ जाती है कि य् ह् व् ह् के उच्चारण मे अन्तिम अक्षर " ह् " अनुच्चारित रहता है और केवल स्वर-आधार के लिए लिखा जाता है ।

(4) उद० "कूती" (दे० 2 राजा 17 24), जिसके विषय मे योसेफॉस् कहता है कि ये फ़ारस देश से लाये गये (Antiquities of the Jews 9 14)।

उत्तर-इस्राएल और अराम (सीरिया) देश के जवान थे, जो फारसी सेना मे भर्ती हुए[1]। बाद मे दक्षिण-इस्राएल के यहूदा-वासी उनसे मिल-जुल गये[2]। धीरे-धीरे अेलेफन्तिंनै का सैन्य शिविर और आसपास की बस्तियां एक अरामी उपनिवेश (कॉलनी) बनते गये।

155~(2) : स्थिति-परिवर्तन

एक शताब्दी तक अेलेफन्तिंनै के सैन्य शिविर मे बसे अरामी-भाषाभाषियो के जीवन मे कोई हलचल नही हुई। भाड़े के ये सैनिक फारसी साम्राज्य के प्रति वफादार रहे। इसलिए,जब सा०स०पू० 410 मे स्थानीय मिस्री लोगो ने विद्रोह किया, तब शिविर के यहो / याहु - मन्दिर को क्षति पहुचायी गयी। मिस्रियो ने मन्दिर पर इसलिए भी धावा बोल दिया क्योकि उसमे पशु-बलि की व्यवस्था थी, जो उनके लिए (और फारसियो के लिए) घृणा का विषय थी। जब सैनिको ने फारसी अधिकारी के नाम पत्र भेजा ,तब मन्दिर की मरम्मत हेतु वित्तीय सहायता मागते हुए,उन्होने यह प्रतिज्ञा की कि भविष्य मे बलि-पशु का वध बद होगा और मन्दिर मे केवल धूप एव अन्न-बलि चढायी जाएगी। उनकी इस उदारता मे अनजाने मे अशोक का एक प्रिय सिद्धात लागू हुआ !

कुछ वर्ष बाद, सा०स०पू० 398 मे, मिस्र के राष्ट्रवादियो ने नेफेरतिस के नेतृत्व मे पुन उपद्रव किया और इस बार उन्होने यहो / याहु - मन्दिर का सर्वनाश किया। सा०स०पू० चौथी सदी के आरम्भ मे मिस्र देश पर फारसियो का नियन्त्रण प्राय समाप्त हुआ और यैभ् के गढ का भी रहस्यमय अन्त हुआ ।[3]

155~(3) : याहे विसर्जन अथवा स्थानान्तरण

अब प्रश्न उठता है कि अेलेफन्तिंनै / यैभ् के अरामी-भाषाभाषियो का क्या हुआ। क्या उन्हे फारसी सेना के साथ पीछे की ओर हटाया गया और कही पूर्व-क्षेत्र मे स्थानान्तरित किया गया ? अथवा क्या वे भागकर विसर्जित हुए ? कुछ विद्वानो ने सभावनाओ और समानताओ के आधार अपने काल्पनिक अनुमान प्रस्तुत किये : जे० विल्यम्स् का विचार है कि अेलेफन्तिंनै के सैनिको ने, जो उनकी दृष्टि मे यहूदी ही थे,भागकर इथियोपिअ मे शरण ली[4]। नही तो, वे सूदान मे बस गए, क्योकि वहॉ अब तक "यहूद" नामक जनजाति रहती है[5]। लगता है, यदि कोई अपना विचार गभीरतापूर्वक एवं अधिकार-सहित व्यक्त करे ,तो उसके द्वारा प्रस्तुत किया हुआ अनुमान ऐतिहासिक प्रमाण-जैसा आभासित होता है !

---

(1) K.Van Der Toorn, " Anat-Yahu Some other deities and the Jews of Elephantine",Numen,39,1992,p 97 "The Jews and Aramaeans of the colonies at Elephantine and Syene originated predominantly from Northern Israel The ultimate origins of the Aramaean settlers go back to North Syria" सीरिया के अरामियो की दृष्टि मे "यहो / याहु" निम्न देवता था ,जो महादेवी अनंथ् या ॲशेरा का स्वामी-पति था (दे० R NOTH & P KING,"Biblical Archaeology" in R BROWN ed op cit p 1213 कुन्तिल्लत अजरूद का पूजास्थान-अभिलेख)। (2) तत्रैव,पृ०94 · "The ' Jewish' character of the Ele phantine colony is probably based on an important influx of Judahites who joined the Israelite settlers" (3)दे०E.KRAELING," New light on the Elephantine colony" The Biblical Archaeologist,15 1952,p 67 "The Jewish[अथवा अरामी कहे]colony which burst mysteriously into the historical picture with the coming of Cambyses disappears from it equally mysteriously a few years after the eclipse of the Persian rule" , JOHN BRIGHT, A History of Israel London 1988(1980) p 407 "Presumably with its long record of loyalty to Persia, it fell victim to resurgent Egyptian nationalism" (4)J WILLIAMS,Hebrewisms of West-Africa,1939,p 277 "When attacked by the Egyptians many of this Jewish garrison must have retreated into the territory of the Ethiopians" (5) उसी तर्क के अनुसार, कोई न कहे कि भारत के "यादु , यादव" भी उन्ही के वशज है (दे० P.CHANDA,"Indo-Aryan Races",Indian Studies,10,1988,p 84,"The Ārya immigrants from Mesopotamia must have absorbed a good deal of Semitic blood in their Syrian home ")।

फिर भी सम्भावना एक सम्भव बात ही है , और इसपर सोचे बिना वैज्ञानिक अनुसधान भी ठप हो जाता है । पूज्य आचार्य प्रो० सी०डी० चटर्जी ने पाणिनि की अष्टाध्यायी मे 'यँभ् .यहो / याहु .यँहूधाय् (=यहूदी. अरामी मे)' जैसे शब्दो की ओर सकेत करनेवाले भाषाई सबध की सम्भावना खोजी । पर वह ठोस परिणाम तक नही पहुचे । उन्होने तक्षशिला का अरामी पाठ देखकर माना कि वह अरामी-भाषाभाषी यहूदियो से सबधित है और कि सम्भवत वे यँभ् / अेलेफन्तिनै से स्थानान्तरित यहूदी ही होगे । माने या न माने. सब-से-अधिक सम्भावना यह है कि उन भगोड़े अरामी-भाषाभाषियो ने मिस्र देश मे ही अपने जाति-बन्धुओ के यहां शरण ली[1] । मिस्र से प्राप्त अरामी पटेरपत्रो से स्पष्ट है कि मिस्र मे अन्य बस्तिया थी , जहा अरामी-भाषाभाषी प्रवासी रहते थे , उदाहरणार्थ हेर्मो-पोलिस् मे [2] । स्थानीय मिस्री लोग ऐसे प्रवासियो पर सौहार्दपूर्ण दृष्टि रखते थे. जब तक वे फारसियो की सेवा अथवा सेना मे कार्य नही करते।

अेलिफैटाइन् के भृतिक सैनिको का महत्व इसलिए नहीं है कि उनके भारत-आगमन की एक-प्रतिशत सम्भावना है. बल्कि इसलिए कि उन्होने अरामी भाषा मे एक विपुल लेख-भण्डार छोड़ा है , जिसका प्रभाव पश्चिमोत्तर भारत मे अवशिष्ट अरामी लेखन-परम्परा मे भी दीख पड़ता है । दूर पश्चिम से ही ऐसी सामग्री उपलब्ध हुई .जो फारसी साम्राज्य के अधीन होने के कारण एक ईरानी से मिश्रित अरामी मे अभिव्यक्त हुई। इसलिए. दूर पूर्व मे. अशोकीय अरामी अभिलेखो की व्यजनात्मक लिपि पढ़ सकने के लिए यह सामग्री अत्यन्त लाभदायक है। आगे के पुरालेखीय और पुरालिपीय अध्ययन मे मिस्र से प्राप्त उन अरामी लेखो की भाषा एव लिपि पर विवेचन करेगे।

16 यूनानी प्रभाव-क्षेत्र का अभिज्ञान

IDENTIFICATION OF THE GREEK / HELLENISTIC SPHERE OF INFLUENCE

सम्राट अशोक के पचम (5:10) तथा त्रयोदश (13:14) मुख्य शिलालेखो मे ' ईरानियो ' (अर्थात् ईरान से प्रभावित लोगो) की ओर सकेत करनेवाले **कंबोज** शब्द के साथ **योन** शब्द भी जुड़ा हुआ है । क्या उन्हे तुरन्त ' यूनानी ' समझना उचित है ?

161 "योन" शब्द का प्रसंगार्थ CONTEXTUAL MEANING OF THE TERM "YONA"

त्रयोदश अभिलेख की नौवीं पक्ति मे ' योन ' का तात्पर्य अवश्य यवन अथवा यूनानी है , क्योकि महानगर

---

(1) दे०B A.AYAD.The Jewish-Aramaean Communities in Ancient Egypt .Cairo.1975 p 109 " No Aramaic papyri from the second period of the Persian rule of Egypt (341-333 B C) were found . which indicates the final dispersion of the Aramaeans from Elephantine and Aswan and their moving on to other places in Egypt where there were Aramaean communities"

(2) दे० J -T MILIK." Les papyrus araméens d' Hermoupolis et les cultes syro-phéniciens en Égypte Perse" .Biblica 48.1967.pp 546-.622 ; J HAYES & J HOFTIJZER."Notae Hermopolitanae".Vetus Testamentum.20.1970 pp 98-108

अन्ताकिया मे अपने विस्तृत यूनानी राज्य पर शासन करनेवाले यूनानी राजा अन्तिऑखॉस् के सबध मे ही कहा गया है कि वह " **अंतियोको नम योन-रज** " है । इसलिए सरसरी तौर पर योन और यूनानी को पर्यायवाची शब्द माना जाए। लेकिन आरम्भिक यूनानी प्रयोग मे "ॲिओन्" (जिसका आदि रूप ॲिअर्वोन् था) ऐसे व्यक्ति की ओर सकेत करता है, जो आधुनिक तुर्की देश के पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित प्राचीन " ॲिओनिअ" नामक क्षेत्र का निवासी हो। उस सीमित प्रयोग से इब्रानी-अरामी मे **यावान्** , ईरानी मे **यौन** , सस्कृत मे **यवनः** और प्राकृत मे **योन /योनक** जैसे रूप बने। उसी क्षेत्र मे लगभग सा०स०पू० 900 से श्रेण्य (क्लासिकी) यूनानी भाषा का युग आरम्भ हुआ । आदिकवि हॉमैरॉस् (अं० होमर्) ने अपनी अमर कृति "ॲिलिअस्" (अं० इलियड्) नामक महाकाव्य के लिए एशियाई यूनानियो की मधुर उपभाषा "ॲिओनिकै" (अं० आयॉनिक्) को ही प्रयुक्त किया। धीरे-धीरे यूनानी सभ्यता का मुख्य केन्द्र 'अख़ॲिअ' नामक प्रायद्वीप (यूरोप के आधुनिक यूनान देश) की ओर स्थानान्तरित हुआ और सा०स०पू० छठी सदी से अथैनय् (ऐथिन्ज्) नगर की उपभाषा 'अत्तिकै' प्रबल होती गई। हम आगे देखेगे कि अशोक के यूनानी अभिलेखो मे उन दोनों उपभाषाओ का मिश्रित रूप क्यो प्रयुक्त हुआ ।

भारतीय प्रयोग मे "यवन" शब्द का भी विस्तार हुआ। डा० ई० पुस्कस् के अनुसार[1] श्री महाभारत मे तीन प्रकार के "यवनो "के उल्लेख मिलते है : 1) दूर पश्चिम के, ॲिओनिअ-क्षेत्र के यवन, उद० दिग्विजय-पर्व 32:17 मे — वे अच्छे लड़ाकू थे और भृतक सैनिक के रूप मे उनकी बड़ी माग थी ; 2) पूर्व की ओर बसने वाले उपनिवेशिक यवन, उद० सभाक्रिया-पर्व 4:25 मे — धर्मज की सभा मे वे भी अतिथि बने (सम्भवतः एक यूनानी उपनिवेश-नगर " नूस " (अंoNysa) स्थापित हुआ[2] था) ; 3) भारत के अप्रवासी यवन, जो महाभारत के उत्तरकालीन श्लोकों मे ("रोमको " के समान) राजदूत, व्यापारी अथवा दरबारी चाकर-चाकरानी बने ।

---

(1) I PUSKÁS,"Herodotus and India",Oikumene ,4,1983,pp 201-207;"Trade contacts between India and the Roman empire", G POLLET,ed ,India and the Ancient World,Leuven,1987mpp 141-158 (2) ARRIAN Anabasis of Alexander,5 1

दक्षिण भारत-तट पर बसे ऐसे व्यापारी यवनो के रोचक प्रसग प्राचीन तमिल काव्य शिलप्पदिहारम् मे मिलते है : उनके "दृष्टिनिरोधक अक्षय-धन आवास थे" और नगर-द्वार पर "खड्गधारी यवन पहरा दे रहे थे" [1]। सस्कृत साहित्य मे यवनो को श्रुत-गति से चलनेवाले, मिलनसार, सर्वज्ञा माना गया ; परन्तु उनके सबध मे अशोभनीय बाते भी कही जा रही थी ! [2]

कबोजो के विषय मे हमारा निष्कर्ष था कि वे कबोज-क्षेत्र के लोग है — चाहे अन्य-जाति के हो अथवा जन-जाति के ही हो । अब प्रश्न उठता है क्या योन शब्द मे मात्र उस क्षेत्र का अर्थबोध रह गया है जहा कभी यूनानी लोग वास करते थे ? द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखो का विश्लेषण करते समय आचार्य-जी प्रो० बी०अेन्० मुखर्जी ने **योन** को योन-प्रान्तवासी का क्षेत्रीय अर्थ दिया : यह आवश्यक नही है कि वह कोई यूनानी हो [3]। अनुमानित योन-प्रान्त तो राजा अन्तिओखोस् के योन-राज्य से भिन्न था ; उसे प्राचीन क्षत्रप-प्रान्त अरखोसिअ के अन्तर्गत कन्दहार के आसपास के क्षेत्र तक सीमित रखा जाए।

प्रो० मुखर्जी अपने इस प्रस्तावित अर्थ के समर्थन मे कि "योन" अ-यूनानी भी हो सकते है शक नरेश रुद्रदामा-प्रथम के जूनागढ-शिलालेख, पक्ति 8 का उल्लेख करते है, जिसमे ईरानी नाम "तुषास्फ" धारण करनेवाले व्यक्ति को "यवन-राज" कहा गया है। यह सस्कृत अभिलेख लगभग सन् 155 सा०स० का है, जब उस सुदर्शन झील को साफ करा जा चुका , जो सदियो पहले यवनराज तुषास्फ के द्वारा अशोक मौर्य के लिए (**अशोकस्य मौर्यस्य कृते**) नहरो से सुशोभित की गई[4]। हमे यह उदाहरण कोई अकाट्य प्रमाण नही लगता, क्योकि सिकन्दर-महान् के शासनकाल से लेकर स्थान-स्थान के शासको / क्षत्रपो के

---

(1) *ति०शेषाद्रि*, अनु० ,**शिलप्पदिहारम्** , भुवन वाणी ट्रस्ट,लखनऊ ,1990,पृ० 81 और 212 ।

(2) ये "विदेशी" और "जगली" है - दे० *वामन आप्टे* , **संस्कृत-हिन्दी कोश** में उद्धृत मनुस्मृति 10 44 ।

(3) B N MUKHERJEE,Stydies in the Aramaic Edicts of Aśoka p.35,"**Yona-Yavana**.the earliest connotations of the terms". Journal of Ancient Indian History 14.1983-84.pp 234-237." People of Greek or non-Greek origin. living in the Yona-province could have been called Yona Thus in Indian context the term Yona or Yavana began to mean by the time of Aśoka. not only a person of Greek origin but also sometimes a non-Greek"

(4)दे०*श्रीराम गोयल*,**प्राचीन भारतीय अभिलेख-संग्रह**,खण्ड 1 ,जयपुर ,1982, पृ०321-345 ।

नामो मे अनेक ईरानी नाम भी मिलते रहते हैं। तुषास्फ एक निश्चित योन-क्षेत्र के छोटे ईरानी राजक का वशज-जैसा नही लग रहा है ; उसे कही जूनागढ / गिरनार-क्षेत्र मे "राष्ट्रिय "(राज्यपाल) का शासन-भार इसलिए सौपा गया था, क्योकि वह (सभवत बक्त्रिअनै मे अथवा भारत से लगनेवाले अन्य क्षेत्र मे) भूतपूर्व यूनानी राज्य के अधीनस्थ उच्चाधिकारी का कोई उत्तराधिकारी था ।

पाणिनीय अष्टाध्यायी 4:1:49 मे स्त्रीलिग रूप "यवनानी " मिलता है ; वह किसी यवन की पत्नी या पुत्री हो सकती है, लेकिन कात्यायन की व्याख्या के अनुसार उस शब्द को "यूनानी लिपि" का अर्थ दिया जाए। प्रो० मुखर्जी ध्यान दिलाते है कि वैयाकरण पाणिनि स्वय योन-प्रान्त के पड़ोसी प्रान्त "कबोज " के मूल निवासी थे, क्योकि उनका जन्मस्थल शलातुर (लाहुर) सिन्धु एव काबुल नदियो के सगम पर स्थित था । उन्होने दोनो यवनो एव कबोजो के मुड़े हुए बाल भी देखे थे [1]। पाली साहित्य के अनुसार वहा का मुख्य केन्द्र " योन-नगर अलसन्द " था[2] और योन-कबोजो मे वर्णव्यवस्था नही थी क्योकि उनमे परिवर्तनीय वर्ग ही थे : जो आज स्वामी था वह कल सेवक बन जा सकता था[3] ।

उसी क्षेत्र मे नव-प्राप्त यूनानी अभिलेखो से यह तुरन्त सिद्ध नही होता है कि अशोक के दिनो तक यूनानी-भाषाभाषी उपनिवेशक वही बसे हुए थे। शिलास्तम्भ-अभिलेखन मे एक प्रतीक-अर्थ भी अभिप्रेत है : सम्राट अपनी राज्य-सीमा पर पड़ोसी योन-राज्य की ओर अभिमुख एक यूनानी लेख अकित कर सकते है, यद्यपि उन्हे मालूम है कि उनका संदेश सीमान्त-प्रान्त के अधिकाश स्थानीय लोगो के लिए अपठनीय ही था ! याद रहे, बेहिस्तून की त्रिभाषीय राजघोषणा अगम्य स्थान की चट्टान पर अंकित थी, जहा न कोई ईरानी, न बेबीलोनी, न एलामी पढने आता ; क्योकि अभ्यंकन का अभिप्राय केवल

---

(1) दे०A.K.NARAIN The Indo-Greeks, Delhi, 1980(1957), p 1." [Pāṇini must have seen] the' shaven-headed' Yavanas and Kambojas, who were probably known as such because, unlike the Indians, they wore their hair short ."

(2) महावंस 29 30 - दे०H P Ray, "The Yavana presence in Ancient India" in M -F BOUSSAC & J F SALLES, eds, Athens, Aden Arikamedu, New-Delhi, 1994, p 77; B C LAW op cit p 54 "identified with Alexandria near Kabul in the Paropanisadae country" (3) मज्झिम निकाय 2 149 ।

प्रतीकात्मक था । इस प्रकार , यदि मान ले कि स्थानीय लोग अनपढ न हो , तो भी कन्दहार का यूनानी- अरामी सदेश उनके लिए मूक ही रहा होगा। फिर, वहा यूनानी-भाषाभाषी कम थे । ॲम्० ॲल्फिन्स्टन् ने जो बख्त्रिया के सबघ मे कहा था, वह सिधु-क्षेत्र पर भी लागू है जब सिकन्दर की सेना पीछे हट गई, तब कम ही साहसी यूनानी पुरुष वही रह गए जिन्होने स्थानीय गैर-यूनानी स्त्रियो से विवाह किया। दूसरी पीढी मे अर्ध-यूनानियो की पहचान और धूमिल होने लगी [1]।

यहा फ्रास के पुरातत्वज्ञ पॉल् बॅर्नार्[2] की खोज का भी उल्लेख करे उनका मानना है कि फारसी शासनप्रणाली का यूनानीकरण प्रभावशाली ढग से नही हो सका, क्योकि मौर्यकाल के अन्त मे भी ऐसे सिक्के मिलते है जिनपर ईरानी क्षत्रपो की आकृतिया दीखती है। प्रो० बॅर्नार् दो सिक्को का उदाहरण देते है, जिनपर खरोष्ठी लिपि मे '' केदरे नेकमे '' अकित है (जिसे वह सिन्धु एव झेलम की मध्य-भूमि मे स्थित ''नगर-मण्डल'' का अर्थ देते है)[3] । ये सिक्के मौर्य काल के है और उन पर स्थानीय शासक को फारसी क्षत्रप की शैली मे (à la perse) दर्शाया गया ।

योन-क्षेत्र के अल्पसख्यक यूनानी लोग किस सम्पर्क-भाषा का प्रयोग करते थे ? स्त्रॅबोन् ने अपनी कृति '' गेओग्रफिंअ '' की 15वी पुस्तक मे वर्णन किया कि सिकन्दर के विश्वस्त दूत ऑनैसिक्रितॉस् तीन दुभाषियो के माध्यम से ही भारत के ज्ञानियो से बातचीत करने मे सफल हुआ। निस्सदेह , एक ओर शुद्ध यूनानी भाषा (हेल्लैनिकै) थी और दूसरी ओर कोई भारतीय भाषा थी ; परन्तु बीचवाली

---

(1) M ELPHINSTONE,"The Greek kingdom of Bactria", in S GUPTA,ed ,Ancient India,Calcutta 1953,p 39 "The second generation of Bactrians must have been much more Persian than Greek. Fresh importations of Greek adventurers would take place during the ascendancy of the Seleucids. " निम्न प्रकाशनो से स्पष्ट है कि उस क्षेत्र के नृजाति वर्णन में ब्रिटिश राज की विशेष रुचि थी F B.RICHARD,Sindh and the Races that inhabit the Valley of the Indus (1851),M H ELLIOT,Memoirs on the History,Folklore and Distribution of the Races of the North-Western Provinces of India (1869),G W LEITNER [Races Of] Dardistan,(1868 1893),E.W CROOKE,The North Western Provinces of India their History,Ethnology and Administration(1897),M IBBETSON & H ROSE,A Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and the North-West Frontier Province(3 vols 1911-1919) ..कौन योन-कम्बोज को पहचान सकेगा ?

(2) PAUL BERNARD,"Les Indiens de la liste des tributs d'Hérodote" Studia Iranica,16,1987,fasc 2 pp 177-191

(3) Cabinet des Médailles de Paris,Nr M 5345 & British Museum Catalogue of the Coins of Ancient India Taxila inscribed coins, Nr 215

भाषा कौन-सी थी (ईरानी-अरामी ?) और तीसरे दुभाषिये की क्या आवश्यकता थी (किसी स्थानीय भाषा से जोड़ने के लिए [1]) ? ऊपर के विवेचन से शोधकर्ता सतर्क तो हुआ , परन्तु वह यूनानी अभिलेखो की भाषा के शुद्ध एव उत्तम स्वरूप से इतना प्रभावित हुआ कि मौर्यकाल के तथा-कथित योन-क्षेत्र मे भी वह यूनानी प्रभाव को घटाना नही चाहता । उन अशोकीय अभिलेखो को समझने के लिए " हेल्लैनिस्मोस् " (अर्थात् यूनानवाद[2]) के व्यापक प्रभाव पर सहानुभूतिक दृष्टि डालनी होगी ।

162 यूनानवाद की अन्तर्धारा THE UNDERCURRENT OF HELLENISM

यूनानी कला-सस्कृति के उद्भव क्षेत्र को यूनानी भाषा मे " हेल्लस् " कहते है और देशज यूनानी व्यक्ति को "हेल्लैन् "[3] (अथवा कभी "ग्रय्कोस् ",जो पूर्वजो के वश-नाम पर आधारित नामकरण है[4])। सा०स०पू० चौथी सदी के मध्य मे यूनानी सुवक्ता अिसोक्रतैस् ने ऐथिन्ज् के नगरवासियो को बताया कि "अपनी मीमासा एव विचार-अभिव्यक्ति मे हमारा नगर शेष मानवता से इतना आगे निकला कि हमारे शिष्य ही विश्व-गुरु बन गए। इसलिए अब ' हम-यूनानी ' (हेल्लैनस्) किसी जाति-विशेष का नाम नही है, वरन् एक जीवन-दर्शन की बात है जो भी हमारी सस्कृति मे भागीदार हो , वे सब-के-सब ' यूनानी ' है "[5]।

इतिहास के पाठ्यक्रमो मे "हेलिनिस्टक् पीरियड् " को प्राय सिकन्दर-महान् के समय से तीन सदियो तक गिनते है , जब तक पूर्व की ओर यूनानी प्रभाव बना रहा और विशेषकर मिस्र के सिकन्दरिया नगर मे

---

(1) " Probably a connecting link would be required between Persian and Indian" (E.Cowell) quoted in M ELPHINSTONE op cit .p 18 अर्रिहअनोस् ने बताया कि ज्ञानी कलनोस् स्वय अन्तिम क्रिया की चिता की ओर बढते हुए अपनी भारतीय भाषा मे (तै अिन्दोनि ग्लोस्सै) देवस्तुति के गीत गा रहा था (ARRIAN, Anabasis of Alexander, 7 3 3)

(2) अग्रेजी मे हेलिनिज़म् (Hellenism) , लेकिन यूनानी मे भी " हेल्लैनिस्मोस्" बलकृत यूनानीकरण का अप्रिय अर्थ धारण कर सकता है , उद० यूनानी बाइबिल के द्वितीय मक्काबी ग्रथ 4·13 मे । यूनानवाद के अध्ययन के लिए देखो उद० " हेलेनिस्टिक सभ्यता " , *उदय नारायण राय* ,विश्वसभ्यता का इतिहास , पृ० 1-64 अथवा " भारत और यूनान " , *भगवतशरण उपाध्याय* , **बृहत्तर भारत** , अध्या० 4 ।

(3) सम्भवत भारोपीय धातु ' सल् ' से , जिसका अर्थ है . चलना , भ्रमण करना (सं० सृ / सल्) ।

(4) दक्षिण इटली के यूनानी उपनिवेशिक को लातीनी में ' ग्रय्कुस् ' कहते थे , जिससे अग्रेजी शब्द ' ग्रीक् ' बना ।

(5) ISOCRATES, Panegiricus 50 .

और सीरिया के अन्ताकिया नगर मे यूनानी राजवशज शासन कर रहे थे [1]। यूनानवाद के विस्तार मे यह आवश्यक नही था कि आक्रमक उपनिवेशवादी यूनानी किसी क्षेत्र मे आकर गैर-यूनानियो पर प्रभुत्व करने लगे । वह अपने आप मे एक मानववादी बन्धुत्व का व्यापक आन्दोलन था[2] । इसका एक दिलचस्प प्रतिनिधि दिओगेनैस् था , जिसने सिकन्दर की मृत्यु से कुछ ही दिन पहले कहा था " मै विश्वनागरिक (कोस्मो-पोलितैस्) हू " और वह दिन के प्रकाश मे जलता हुआ दीप लेकर इधर-उधर खोजता रहा "मै एक (सच्चा) इन्सान ढूढ रहा हू " [3]। प्रोतगोरस् उस उक्ति को प्रतिध्वनित कर कहता है " मानव ही सभी बातो का मापदण्ड है "[4] ।

सिकन्दर के जीवनीकार यह भावनात्मक दृश्य प्रस्तुत करते है कि दिग्विजयी सेनापति "महान् राजा" की उपाधि ग्रहण कर दजला नदी पर स्थित ओपिस् नगर मे सब के लिए महाभोज तैयार करता है और विश्वमानवता के नाम से सभी धर्मो के आराध्य देवताओ को तर्पण चढाकर " समस्त आबाद ससार " (ओय्कोमेनै) के लिए प्रार्थना करता है। आदर्शीकृत सिकन्दर की दृष्टि मे यूनानवादी जन (हैल्लैनिस्तैस्) किसी भी जाति का हो सकता है ; वह सरलीकृत सामान्य यूनानी भाषा (कोय्नै दिअलेक्तोस्) बोलता है और प्रगतिशील यूनानी जीवनशैली अपनाता है[5] ।

---

(1) दे० टार्न् की परिभाषा "Three Hellenistic centuries, from the death of Alexander in 323 to the establishment of the Roman empire by Augustus in 30 B C Hellenism is merely a convenient label for the civilization of the three centuries during which Greek culture radiated (far) from the homeland"(W TARN,Hellenistic civilization , London,1930,p 1f) लेकिन टॉइन्बी इससे व्यापक अर्थ प्रस्तुत करते है "Hellenism was a civilization which came into existence towards the end of the second millenium B.C and preserved its identity from then onwards until the seventh century of the Christian Era It made its first appearance astride the Aegean Sea and the Mediterranean, and eventually expanded overland eastwards into Central Asia and India, and westwards as far as the Atlantic coast of North Africa and Europe, including part of the island of Britain"(A.TOYNBEE,Hellenism The History of a Civilization,London,1959,p 1)

(2) दे० M HENGEL,Judaism and Hellenism ,1973 , p 2 . " It is J G DROYSEN, who in 1831 first gave ' Hellenism " the significance it now bears i e the epoch characterised by the union of Greece and the Orient . when East and West were ripe for fusion and cross-fertilization"

(3) "Diogenes whose eccentric lifestyle made him a tourist attraction in the Athens of his day" (G BETTS & A.HENRY Ancient Greek ,London ,1989). (4) प्लतोन्-रचित ' थेअय्तैतोस् ' नामक वार्तालाप मे उल्लिखित ।

(5) दे० M HENGEL ,Jews Greeks and Barbarians,Philadelphia 1980(G 1976) p 55 " The community of ' Hellenes ' manifested itself in a way of life with a particular stamp, a culture governed by a view of the freedom of man and the political institutions that went with it , like shared games and sanctuaries drawing worshippers from wide areas ..[Yet] prejudices prevailed even after 300 B.C.... Mixed marriages were the exception rather than the rule".

सिकन्दर की एकीकरण-समीकरण की नीति मे भाषा का एक-समान होना महत्वपूर्ण था। लेकिन शुरू मे "कोय्नै" यूनानी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क-भाषा बनने के लिए अरामी की बराबरी नही कर सकी[1]। सास्कृतिक दृष्टि से यूनानी अधिक समर्थ भाषा थी और वैचारिक आदान-प्रदान मे गहरा एव स्थायी प्रभाव डालनेवाली। यूनानवाद के भाषाई विस्तरण के साथ सास्कृतिक धरोहर का भी प्रसरण हुआ। किसी भी ठोस यूनानी अभिव्यक्ति मे — यह मात्र अभिलेखीय अनुवाद क्यो न हो — वह महती विरासत गूज उठती थी , जिसे स्मरण दिलाने के लिए हम यहा उसकी एक झलक प्रस्तुत कर रहे है[2]।

निस्सदेह , अपने पिछले गौरव के कारण , "अथैनय्" नगर यूनानवाद का प्रेरणात्मक केन्द्र रहा । बौद्धिक विकास एव विवेक-स्वातन्त्र्य के उस अलौकिक स्थल पर विद्या-देवी "अथैनै" को ही प्रगाढ चैतन्य और कला-कौशल की अधिष्ठात्री मानी जाती थी। यद्यपि उच्चसभ्यता के उस आदर्श पोलिस् (पुरी) में दास्य-प्रथा अपरिहार्य मानी गई, फिर भी उसके नागरिक इतने स्वतन्त्रता-प्रेमी थे कि वे हमेशा दैमो-क्रतिअ (जनतन्त्र-प्रणाली) की माग करते रहे[3]। सा०स०पू० 594 मे उन्होने निरकुश शासक के विरुद्ध सुधारक सोलोन् के पक्ष मे अपने मताधिकार का प्रयोग किया। उसने जनता को अन्याय के प्रहार से बचाने के लिए

---

(1) एक ओर मार्टिन् हेंङल् कहते है "The bond which held the Hellenistic world together despite the fragmentation which began with the death of Alexander and continued thereafter, was Attic koine Its sphere of influence went far beyond that of Aramaic "(MARTIN HENGEL Judaism and Hellenism,p.58) ,पर दूसरी ओर जी० मुस्सीस् का कहना है "This paramount status of Greek did not imply, however, that Aramaic lost its position of international language in the East for in south-eastern Afghanistan a century or so after the downfall of the Persian empire , when that province was no longer ruled by the Macedonians either the Indian emperor Asoka set up a bilingual decree in stone , and he did so not in an India n language , but in Aramaic and in Greek"(G MUSSIES," Greek as the vehicle of early Christianity",New Testament Studies, 29,1983,p 356) (2) यूनानी सभ्यता को अधिकतर पश्चिमी दृष्टिकोण से आंका जाता रहा , उद० (शीर्षक से ही पता चलता है।) E.HAMILTON The Greek Way to Western Civilisation New York 1948 अथवा A.VON HILDEBRAND का यह उल्लेख "One glance thrown at occidental culture as a whole confirms always again the unique role which Greek culture and genius played and are still playing in the history of Europe"(Greek Culture The Adventure of the Human Spirit,New York,1966 p 37) फिर भी यूनानवाद पूर्व की ओर उन्मुख था , जैसे निम्न अध्ययनो में स्वीकारा गया A AYMARD & J AUBOYER, L'Orient et la Grèce Antique,Paris,1953, A.KHURT & S SHERWIN-WHITE,eds,Hellenism in the East The Interaction of Greek and non-Greek Civilizations from Syria to Central Asia after Alexander,Berkeley,1989, M ROSTOVTZEFF The Social and Economic History of the Hellenistic World, 3 vols, Oxford,1953

(3) छदोबद्ध महाकाव्य इलिअस् का यह मार्मिक प्रसंग कटाग्र होते हुए भी, इसके छद बोलकर सभी नगरवासियों का कठ भर आता था वीरगति प्राप्त करने के पहले, अपनी सुप्रिया अन्द्रोमखे से अन्तिम विदा लेते समय, सुधीर हैक्तोर् तभी रोने लगता है जब यह अटालनीय दृश्य सामने आता है कि उसकी पत्नी दासी बनकर अपने "स्वतन्त्रता के सुदिन" खोएगी।

शक्तिशाली ढाल के रूप मे विधि-विधान का निर्माण किया। अ॑म्० फिन्ली[1] सॉलोन् की तुलना बेबीलोन के प्रसिद्ध विधि-निर्माता हमुराबी से करते है, जिसने लगभग सा०स०पू० 1820 मे अपनी विधि-सहिता को शिलाखण्ड पर अकित किया, जिससे "देश मे न्याय प्रकट हो, अधर्मिये का पापाचार मिट जाए और बलिष्ठ व्यक्ति निर्बलो का शोसन न करे"। सॉलोन् ने मानव-अधिकार को अपेक्षाकृत अधिक मानवी आधार पर ही स्थापित किया है, न कि ईश्वर की आज्ञा के सहारे । उसने सर्वहित मे समष्टि के स्वशासन पर अधिक बल दिया, न कि दण्डाज्ञा की चेतावनी के द्वारा। अशोकीय अभिलेखो मे निरे मानव-धर्म की और स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलेगी।

फारसी साम्राज्य के विस्तारवाद का डटकर मुकाबला करने के पश्चात् यूनानियो ने अपने सास्कृतिक स्वर्ण युग मे प्रवेश किया। उनके मध्य मे एक-एक ज्ञान-पिपासु "फिलॉ-सॉफॉस्" अपने ढग से परम सत्य की खोज करने लगा। सॉक्रॅतैस् (सुक्रात) एक ही सूत्र-कथन दुहराता था कि "ग्नॉथि सेअव्तॉन्" (अपने आपको पहचानो) और दिव्य ज्ञान से प्रेरित होने से इन्कार किया,क्योकि वह "अन्थ्रोपिनै सॉफिअ" (मानवी बुद्धि) का पक्षधर था, यहा तक कि सा०स०पू० 399 मे मानवी मूल्यो के सिद्धात छोड़ने की अपेक्षा विष-रस पीने को तैयार हुआ। ऐथिन्ज् मे एक दार्शनिक अकादमी की स्थापना हुई, जिसके दो प्रमुख आचार्य हुए आदर्श अनुभूति के प्रत्ययवाद का प्रवर्तक प्लॅतोन् (अफलातून) एव यथार्थ अनुभव के वास्तववाद का समर्थक अरिस्तॉतॅलैस् (अरस्तू) ! वे यूनानी धर्म-दर्शन और राजनीति के प्रतिनिधि विचारक है[2] और कोई आश्चर्य नही कि अशोक के द्विभाषीय अभिलेखो की यूनानी शब्दावली मे उन द्विरत्नो की भाषा का कुछ आभास मिले (इस शोधप्रबन्ध के पांचवे भाग में एक-एक यूनानी शब्द के विश्लेषन मे उन्ही महारत्नो का अधिकतर उल्लेख करना ही होगा)। न भूले कि अरिस्तॉतॅलैस् मकिदुनिया के युवराज अलॅक्सन्द्रॉस् (सिकन्दर) का गुरु था, यद्यपि "ॲिन्दिअ" को विश्व का सीमान्त समझकर उसने अपने महत्वाकाक्षी शिष्य के मन मे एक

---

(1) M.FINLEY,The Ancient Greeks,N.Y.,1963,p 42. (2)*बी०पी पाण्डेय*,**प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक**,इलाहाबाद,1982

भूमण्डलीय साम्राज्य स्थापित करने का निराधार स्वप्न जगाया। लेकिन देवपुत्र समझे जानेवाले सिकन्दर महान् को अपना महान् अभियान अधूरा छोड़ना पड़ा और साधारण मरणशील मनुष्य के सदृश वह असमय मृत्यु का ग्रास बना। अविकल्प एव भावशून्य "दिकै" (भाग्य) से लड़नेवाले मनुष्य की यह दुर्दशा यूनानी नाटककारो का प्रिय विषय थी। सॉफ़ॉक्लैस् ने अपनी श्रेष्ठ दु खान्तकी "अन्तिगोनै" की प्रस्तावना मे कहा " ससार मे बहुत-कुछ रहस्यमय तो लगता है, परन्तु सब-से गूढ रहस्य है मानव ! "। एक अन्य प्रसिद्ध नाटककार ऍव्रिपिदैस् ने "ऍरोस्" (प्रेम-मुहब्बत) को देवलोक और मनुष्यलोक का तानाशाह माना है, जब कि अय्स्खुलोस् (अ० ईस्कलस्) के उत्कृष्ट नाटक का देव-द्रोही नायक प्रोमैथॅव्स् (अ० प्रमीथ्यूज) चिल्लाता है, "कोई मुझे नही रोक सकता। मै ही मर्त्यमानव को मुक्त करने का साहस करूगा"। सैन्य शिविरो मे जब ऐसे नाटको का मचन होता था, तब उनका चलचित्र का-सा व्यापक प्रभाव पड़ता।

यूनानी लोकधर्म के अनुसार हिमाच्छादित पर्वत ऑलुम्पोस् पर विराजमान "ज़ॅव्स्" (अ० ज़्यूस) देवी-देवो का परमपिता और प्रजापिता था। परन्तु यथार्थवादी यूनानी प्रकृति मे ही परम सौन्दर्य के उपासक थे। कला-प्रेमी उस दिव्य "कलॉन्" (सुन्दरम्) को आदर्श मानव-मूर्ति मे अवतरित निहारते थे। भोगवादी ऍपिकॉव्रॉस् परम सुख की खोज मे निकला, जब कि उदासीन स्टोइकवाद ने तितिक्षा और सयम का मार्ग अपनाया।

अपनी तीक्ष्ण तर्क-बुद्धि से प्रगतिवादी यूनानियो ने प्रज्ञान-विज्ञान के नये-नये क्षेत्रो मे प्रवेश किया। प्राचीन काल का "पहला इतिहासकार" कहलानेवाला हैरॉदॉतॉस् (सा०स०पू० 484-424) एशियाई यूनानियों मे से एक था। उसकी मूल कृति " हिस्तोरिअ " आधुनिक अर्थ मे तटस्थ हिस्टरी नही थी, वरन् व्यक्तिगत तथ्यात्मक अन्वेषण, जिसमे वह यथासम्भव प्रत्यक्ष प्रेक्षण के आधार पर स्रोतो का आलोचनात्मक मूल्याकन करता था [1]।

---

(1) जी०स्वेन् के अनुसार हैरॉदॉतॉस् अपने पात्रो का निष्पक्ष आकलन कर सकता था, दे०G SWAYNE, Herodotus, Edinburgh 1870 p 3·"The Greek word 'history' means really 'investigation' In Herodotus we find the dawning of criticism broad catholicity of sentiment in observing and estimating character His incredulity seems rather evoked by the suspected veracity of his informant or some contradiction in phenomena, than by the incredible nature of the facts themselves".

एक महत्वहीन उदाहरण ले जब हैरोदोतोस् मिस्र देश के अनोखे जानवरो का वर्णन करता है, तो मकर के सबध मे कहता है कि मिस्री उसे पवित्र मानते है, परन्तु "अेलेफ़न्तिनै" के आसपास रहनेवाले उसे निस्सकोच खा जाते है [1] । गभीर शोधक सावधान रहे । छोटी बात से भी सुराग मिल सकता है क्या अेलिफैंटाइन् के अरामी-भाषाभाषी भृतक सैनिको की ओर सकेत है ? फिर भी एक समस्या उनके लिए है जो इस्राएली हो,क्योकि मकर अखाद्य पशुओ मे गिना गया[2] ।क्या अशोक अरामी मे ऐसो को इगित करते ?

अन्य खोजी इतिहासकार क्सेनोफ़ोन् (सा०स०पू० 431-355) ने अपनी रचना "कूरो-पय्दॅय" (शब्दश कुरूू-प्रशिक्षण) मे प्रथम फारसी सम्राट के यौवन और राज्यारोहन के सबध मे लिखा[3] । ध्यान दे कि लेखक महापुरुषो के कथनो का उल्लेख कर स्वय उन्हे अपनी भाषा और शैली मे प्रस्तुत करता है . उद० कुरूू के मित्र ने किसी अपराधी के बारे मे सफाई दी " उसने बुरे उद्देश्य (ककोनोय) से नही ,बल्कि अज्ञान (अग्नोय) से किया। मेरा विचार है कि जो अज्ञानवश बुराई करते है, वे अनिच्छा (अकोव्सिअ) से करते है "[4] । क्सेनोफोन् यहा अनायास यूनानी गुरुवर सुक्रात का उदार विचार दुहराता है कि " स्वेच्छा से (हेकोव्सिओस्) कोई पाप नही करता "। जब सम-नाम रखनेवाले प्रतिद्वन्द्वी राजकुमार "कूरोस् " ने दस हजार यूनानी जवानो की भरती से सेना-दल जुटाया, तब क्सेनोफोन् भी सम्मिलित हुआ और उसने अपने यात्रा-विवरण " अन-बसिस् " (अर्थात् आरोह) मे उस साहसी सैन्य अभियान का सजीव चित्रण किया। उसने फारसी कूरोस् को प्रिय शासक मानकर उसे स्वतन्त्रता-प्रेमी यूनानियो के प्रशंसक के रूप मे प्रस्तुत किया [5]। वास्तव मे, यह अभियान एक " कत-बसिस् " (अपयान) साबित हुआ, क्योकि रण-नायक पर घातक प्रहार हुआ। वापसी की दुःसाध्य यात्रा के अन्त मे सुपरिचित समुद्रतट पहुचकर यूनानी एकस्वर चीख पड़े . " थलत्त ! थलत्त ! " (समुद्र, समुद्र)[6] । छोटी बात है, लेकिन इस चीत्कार ने शोधकर्ता को

---

(1) HERODOTUS, Histories, 2 69. (2) इब्रानी-अरामी तॅनख् का लेवी-ग्रथ 11 30 देखो ।

(3) "The earliest surviving biography" - दे०A.GRANT, Xenophon Edinburgh, 1871 (4) Cyropaedeia 3.1·38

(5) R WARNER, Xenophon the Persian Expedition, Harmonsworth, 1949, p 43 (6) Anabasis 4 7·25 .

सचेत किया हर्षोल्लास का वह उद्गार ऐतिहासिक उल्लेख-जैसा लगता है, क्योंकि क्सेनोफ़ोन् अपनी रचनाओ मे समुद्र शब्द के लिए हमेशा पूर्वी उच्चारण के अनुसार और सामान्य यूनानी भाषा की वर्तनी के अनुरूप " थलस्स " का प्रयोग करता है, जब कि उद्धृत " थलत्त " उसी का पश्चिमी उच्चारण है । अशोक के यूनानी पाठ मे द्वि-तव् ττ (त्त्) नही . वरन् द्वि-सिग्म σσ (स्स्) का शुद्ध रूप प्रयुक्त हुआ।

तीसरा महान् इतिहासकार थोक्युदिदैस् (सा०स०पू० 460-400) पूर्ण सत्यवादिता-स्पष्टवादिता से अपनी व्याख्याए लिखता है, उद० ऐथिन्ज्-निवासियो का यह चरित्र-चित्रण " यहा के नागरिक थोड़े से सतुष्ट नही है ; वे सदा अधिक पाने की लालसा करते है । त्योहार मनाते हुए भी खुश नही दिखाई देते ; इसे केवल कर्त्तव्य समझकर इसमे भाग लेते है। बहुत व्यस्त रहने मे आनन्दित है, पर खाली समय उन्हे कष्ट-दायक ही लगता है। वे न आप शान्त रह सकते न अपने पड़ोसियो को शान्त रहने देते है! " आश्चर्य नही कि फारसियो के विरुद्ध सा०स०पू० 461 के मिस्री अभियान मे वे नगरवासी पराजित हुए . जैसे थोक्युदिदैस् आगे लिखता है " जब मित्र-सेना (क्सुम्-मख़िस्) के जलयान मिस्र मे (ॲस् अय्गुप्तोन्)उतरे, तब सामने पदाति सैनिक उन यूनानियो पर टूट पड़े और पीछे समुद्र से (ॲक् थलस्सैस्) भी उनपर हमला हुआ "[1]। इस उल्लेख की यूनानी वर्तनी पर गौर करे लेखक ने समुद्र के लिए प्रचलित " स्स् " का प्रयोग तो किया, परन्तु सामान्य "अय्स् " के बदले "ॲस् " और "सुम्-" के बदले "क्सुम्-" लिखकर उसने प्राचीन उपभाषा अत्तिकै की शैली अपनायी। अत यहा भी अशोकीय वर्तनी से तुलना करने की सामग्री उपलब्ध है। इतना ही नही, कही-कही विचारो की अभिव्यक्ति मे अप्रत्यक्ष समानता मिलती है थोक्युदिदैस् ने अपने समकालीन राजनीतिज्ञ पेरिक्लेॲस् की सफलता की कुजी उसके लोकतन्त्रीय सत्य-सिद्धातो का कार्यान्वयन ही माना है, क्योकि

> "सरकारी सस्थाओ का उद्देश्य बहुतो का हितार्थ है, न इने-गिने लोगो का लाभाश। हा, मैत्रीपूर्ण सबध स्थापित करने हेतु हमे लाभ पाने की अपेक्षा लाभ पहुचाने का उपाय ढूढना चाहिए ।"

---

(1) THUCYDIDES 1·110

ऐसा न हो कि यूनानवाद की अन्तर्धारा मे केवल बुद्धिजीवो की सैद्धातिक विद्या-निधि को महत्व दिया जाए। यूनानी सस्कृति का प्रयोजनात्मक पक्ष भी है, जो अनुप्रयुक्त विज्ञान एव शिल्पिक, प्रौद्योगिकीय क्षमता को बढावा देता है। सम्राट अशोक के दिनो मे ही अर्खिमैदैस् (सा०स०पू० 287-212) ने जलकुण्ड मे उतरकर घनत्व का आविष्कार किया और मानवता के नाम से पुकारा "हेव्रैक " (मैने पा लिया) ! उसी काल मे अेव्क्लेय्दैस् (अ० यूक्लिड्) ने रेखागणित अथवा ज्यामिति के अभिगृहीतीय सिद्धात निश्चित किये। अेव्दाक्सोस् (सा०स०पू०408-355) यूनानी ज्योतिष[1] का अग्रगामी विद्वान था, यद्यपि उसका प्रभाव उत्तर-क्लासिकी काल मे पड़नेवाला था। इस अध्याय के अन्त मे सा०स०पू० छठी सदी के यवनाचार्य पुथगोरस् (पाइथैगोरस्) की व्यावहारिक नीति-सूक्तियो पर विशेष ध्यान देगे — यद्यपि उसके भारत-आगमन की परिकल्पना उत्तरकाल मे पड़नेवाले प्रभाव की उपज मात्र है। इस अतिसक्षिप्त प्रस्तुति मे हमने यूनानवाद के बहुविध प्रेरणास्रोतो को रेखाकित इसलिए किया कि, यूनानी अभिलेखन हेतु, अशोक के द्वारा प्रयुक्त लिपिक के शब्द-चयन से मालूम हो जाता है कि वह यूनानी सस्कृति से अनभिज्ञ नही था।

163 भारत से आरम्भिक सम्पर्क   INITIAL CONTACTS WITH INDIA

फारसी साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी प्रान्तो मे पहले से ही एशियाई यूनानी बसे हुए थे। हम देख चुके है कि कई यूनानी नौजवान फारसी सेना मे भाड़े के सैनिक बने थे। राजदरबार की सेवा मे भी यूनानियो की नियुक्तिया हुआ करती थी, उद० नाविक स्कुलक्स् को सिन्धु-मुख के नौगम्य मार्ग का समन्वेषण करने के लिए भेजा गया।फिर भी यूनानियो पर निगरानी रखी जाती थी और विद्रोही समूहो को पूर्वी क्षत्रप-क्षेत्रो की ओर विस्थापित किया जाता था[2]। अनुमानत " नूस " ऐसा ही एक उपनिवेशिक यवन-नगर बन गया था, जिसकी दिव्य सस्थापना की मिथकीय कथा अर्रिहअनोस् को उल्लेखनीय लगी और जिसका अस्तित्व

---

(1) दे० I CULIANI "Astrology", in M ELIADE ed , The Encyclopedia of Religion, N Y , 1987 vol I p 472 "a product of Hellenistic civilization" (2) हैरोदोतोस् (इतिहास 4 204) के अनुसार लीबिया के विद्रोहियो को बख्त्रिया के गावो मे बसाया गया।

मुद्राशास्त्री ए०क० नारायण को भी विश्वसनीय लगा [1]। प्रो० नारायण यह भी स्वीकारते है कि देव अपोल्लोन् के पुजारी ब्रङ्ख्रोस् के वशजो ने सोग्दिअनै मे अपने यूनानी तीर्थ-नगर मिलैतोस् को पुन प्रतिष्ठित किया । परन्तु फ्रेच विद्वानो ने इस पर सदेह व्यक्त किया कि सिकन्दर-काल के पहले वक्षु नदी-तट पर अथवा उसके आसपास कोई स्थायी यवन समुदाय वास कर रहा हो[2]। जो भी हो , जिस व्यक्ति ने यूनानी प्रभाव-क्षेत्र को भारतवर्ष तक बढ़ा दिया, वह निस्सदेह सिकन्दर था (यूनानी मे "अलेक्स्-अन्द्रोस्" ,अर्थात् "नृ-पाल")। भारत तक उसके सम्पूर्ण अभियान का ऐतिहासिक विश्लेषण बखूबी हो चुका है [3]।इसे यहा दुहराने का प्रयोजन नही है। प्रश्न है क्या सिकन्दर के उस अभियान के कारण ऐसी स्थिति बनी कि अशोक "योनो " को यूनानी मे सबोधित करना उचित समझे। कुछ भारतीय इतिहासकार उस अल्पकालिक विदेशी आक्रमण से कोई ठोस प्रतिफल नही मान लेते हैं — यदि भारत पर यूनान का प्रभाव पड़ा ,तो उत्तरकाल मे व्यापारिक सम्पर्क एव सास्कृतिक आदान-प्रदान के कारण अथवा बाख्त्री-भारतीय यवनो के दबाव से [4]। फिर भी अशोक-कालीन यूनानी अभिलेखो की प्राप्ति से यूनानवाद के प्रारभिक विस्तार और आसार का नया सकेत मिला, जिस पर विद्वानो को विचार करना ही होगा।

पचम मुख्य शिलालेख मे उल्लिखित **योन-कंबोज-गंधरनं** के "अपरन्त क्षेत्र" मे ही सभी द्विभाषीय अभिलेख प्राप्त हुए। उसी क्षेत्र मे सिकन्दर ने पैर रखा और अल्पसमय मे ही राज्य-व्यवस्था का भारी परिवर्तन किया । अत द्विभाषीय अभिलेखो के प्राप्ति-स्थल देखते हुए हमे ऊपर (पृ०113 पर) दिए गए फारसी प्रभाव-क्षेत्र के

---

(1) A.K.NARAIN,The Indo-Greeks,Delhi,1980(1957),pp 2-3

(2) P BERNARD & O GUILLAUME." The Aī Khanoum coins , finds apart from the hoards(1)". Graeco-Bactrian and Indian Coins from Afghanistan,Delhi 1991(Fr 1980) ,p.185 " As for the Yavanas quoted by the Indian sources and with which Narain supports his thesis they do not necessarily refer to Greeks who were close neighbours of India or who lived in a pre-Alexandrian era There is no basis for speaking of real Greek settlements in Central Asia and even less for using them to explain the populating of Hellenistic Bactria as Narain does".

(3) दे० उत्तम साराश .D A.NILAKANTA SASTRI.Age of the Nandas and Mauryas Delhi,1988(1951) "Alexander's Campaigns in India",pp 48-80 एक नवीन खोज का शीर्षक · A.B.BOSWORTH,Conquest and Empire The Reign of Alexander the Great,Cambridge,1988 (4) दे० उद० *रतिभानु सिंह नाहर,* **प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास**,पृ० 207-209 ।

राजनीतिक मानचित्र को पुन प्रस्तुत करना है। भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर कोने के यूनानी स्थान-नाम विशेषकर अर्रिहअनौस् के दोनो विवरणो "अलेक्सन्द्रौव् अनबसिस्" (सिकन्दर का चढ़ाव) तथा "अिन्दिकै" (हिन्द-सबधी वर्णन) मे मिलते है [1]। सिकन्दर द्वारा अधिकृत क्षत्रपक्षेत्रो/अर्ध-क्षत्रपक्षेत्रो के निर्धारण हेतु जर्मन विद्वान ज़ेख़र्त् के अनुमान निर्णायक माने जा सकते है [2]।

(1) ARRIAN, History of Alexander and Indica (Greek text, tr & notes by P A BRUNT, with map) Cambridge, vol 2, 1983; J W M'CRINDLE, The Invasion of India as described by Arrian, Westminster, 1896(1892)

(2) J SEIBERT, Die Eroberung des Perserreiches durch Alexander den Grossen auf kartographischer Grundlage, Wiesbaden, 1985, esp map 29 " Die Satrapen des Alexanderreiches", A JACKSON, "The Persian dominions in Northern India down to the time of Alexander's invasion", E RAPSON, ed., The Cambridge History of India, 1922, vol 1, ch.13

" अलेक्सन्द्रेय " के नाम से नव-स्थापित/पुनर्स्थापित नगरो को पहले अपनाये गये क्रम से प्रस्तुत करे

1. सोगदिअनै मे अिअक्सरतैस् नदी पर अलेक्सन्द्रेय "ऐस्खतै ", अर्थात् (यूनान देश से) सब-से दूर[1] सिकन्दरिया नगर ।
2. बक्त्रिअनै मे बक्त्र नगर के अतिरिक्त अलेक्सन्द्रेय "मर्गिअनै " ।
   [और उन दो क्षेत्रो के बीच ओक्सोस् नदी पर अलेक्सन्द्रेय "ओक्सिअनै "नगर (अय-खनूम)]
3. अरेयनै मे अलेक्सन्द्रेय "अरेय "(हेरात) नगर ।
4. परपमिसदय् मे अलेक्सन्द्रेय "कपिस "(बेग्राम) नगर ।
5. गन्दरिअ मे अस्सकैनोय्(अश्वक?) लोगो के अलेक्सन्द्रेय नगर, चाहे कोफ़ैस् उपनदी पर "पव्केलओतिस्"(पुष्कलावती),"मस्सक" अथवा "दिओनुसो-पोलिस्/नूस"(जलालाबाद?)।
   [जेख्वर्त् इस गन्दरिअ-क्षेत्र को "**अिन्दिअ - I** " का नाम देते है, अन्य क्षेत्रभाग नीचे देखे]
6. द्रङ्गिअनै मे द्रङ्गय् लोगो का अलेक्सन्द्रेय नगर "फ़्रदै-प्रोफ़्थसिअ " ।
7. अरखोसिअ मे अरखोतोस् नदी पर अरखोतोय् लोगो का अलेक्सन्द्रेय नगर , जिसे सीधे "अलेक्सन्द्री-पोलिस् " ही कहते है [2] ।
8. गद्रोसिअ के पश्चिम मे अिख्थुओ-फ़गोय् (मत्स्य-भक्षी) लोगो का अलेक्सन्द्रेय नगर "पोव्र " और पूर्व मे ओरेय्तय् लोगो का अलेक्सन्द्रेय नगर "र्हम्बकिअ " ।

[स्पष्ट नही है कि सिकन्दर फारसियो के क्षत्रपक्षेत्र हिदुश-/हिन्दुश- अर्थात् यूनानी अिन्दिअ मे कितने दूर तक आगे बढ सके अथवा उससे आगे भी निकल गए। ऊपर दिए गए क्षेत्रभाग " अिन्दिअ - **I**" के अतिरिक्त और दो क्षेत्रभाग निर्धारित कर सकते है]

+अिन्दिअ - I I उत्तरी सिन्धु-घाटी के पूर्व मे तीन अधीनस्थ राज्य-क्षेत्र थे ·

(क) अबिसरैस् का राज्य ,काश्मीर की ओर ।

(ख) तक्सिलैस् का राज्य ,प्राचीन नगर "तक्सिल " से भी आगे ; हुदस्पैस् (वितस्ता, झेलम) उपनदी पर द्वि-नगर अलेक्सन्द्रेय "निकय "- "बोव्केफ़ल " स्थापित हुआ और अकेसिनैस् (असिक्नी,चनाब) उपनदी पर अलेक्सन्द्रेय "नेअ" का 'नया' नगर।

(ग) पोरोस् का राज्य ,हुद्रओतैस् (इरावती,रावी) उपनदी की घाटी मे हुफ़सिस् (व्यास, विपाशा) नामक शाखा-उपनदी तक, जहा "दो हजार नगर" अर्धस्वतन्त्र रहे[3]।

+अिन्दिअ - I I I दक्षिणी सिन्धु-घाटी के दोनो ओर का क्षत्र जिसे दो उपक्षेत्रो मे बाटे

(क) क्सुम्-बोलै ,अर्थात् नदी-सगम के आस-पास, जहा सुद्रोस् (शतद्रु,सतलुज) उपनदी अन्य सह-नदियो के संग अिन्दोस् मे मिल जाती है। वहा के स्वतन्त्रता-प्रेमी लोगो पर निगरानी हेतु सगम-स्थल पर एक अज्ञात अलेक्सन्द्रेय नगर स्थापित हुआ[4]।

(ख) अेक्-बोलै ,अर्थात् नदी-मुख का क्षेत्र। जिस स्थल पर सिन्धु-डेल्टा आरम्भ होता है, वहा "पतल " नगर स्थित था। जलप्राय मैदानो मे अरबीतय् रहते थे ।

---

(1) इसे अरिस्तोतेलैस् ने एशिया का सीमात माना था (Meteorologica 1 350a),जहा से "अेक्सो थलस्स"(बाह्य सामुद्र) आरम्भ होना चाहिए था (दे०A.BOSWORTH,"Aristotle,India and the Alexander historian",Athens,Aden,Arikamedu,1995,pp 27-44) । परन्तु सिकन्दर को निराश होना पड़ा न पूर्व मे कोइ सागर दिखाई दे रहा था, न सिन्धु की धारा नील नदी मे बह रही थी।
(2)"[The Arattii/ Arachosii] people are known to have occupied the country around Kandahar"(J HANSMAN,"The question of Aratta", Journal of Near Eastern Studies 37,1978,p 334 (3) ARRIAN,Anabasis,8·2:1 (4) ibid 8·15 2

सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् यूनानी किस स्थान मे सकेन्द्रित हुए? यूनानी अभिलेखो के प्राप्ति-स्थलो के अनुसार अरखोसिअ ही विशेष "योन-क्षेत्र" था। ज्ञात है कि सिकन्दर की प्रथम एशियाई पत्नी रोक्सनै[1] का पिता ओक्सुअर्तैस्, जो एक बाख्त्री था, परपमिसंदय् का क्षत्रप नियुक्त किया गया। डबल्यू० टार्न् के अनुसार उस प्रात मे भी बहुत-से यूनानी "कत्-ओय्कॉय्" (अधि-वासी) बनकर बस गए और "मिक्स्-अॅल्लैनेस्" (मिश्र-यूनानियो) की प्रजाति बढने लगी[2]। परन्तु टार्न् एक सिक्के का उल्लेख करते है, जिसपर गैर-यूनानी शासक के नाम "वक्षुवर" का लेख है। इससे वह अनुमान लगाते है कि ओक्सुअर्तैस् का वश अधिक समय तक नही टिक सका[3]। अनेको नव-स्थापित अलेक्सन्द्रेय नगरो मे भी यूनानीकरण (हेलिनाइजेशॅन्) की गतिविधि धीमी पड़ गई। उनमे कन्दहार उत्कृष्ट यूनानी "अलेक्सन्द्रो-पोलिस्" (सिकन्दर-पुर) माना गया[4]। पी० अॅगरमोन्त् का सुझाव है कि कन्दहार के यवन अपने यहा के यूनानी अभिलेखो का अशोकीय सदर्भ भूलते गए और उन्हे सिकन्दर के लेख ही मानने लगे[5] इसके फलस्वरूप, जब लातीनी प्लिनिउस् ने प्रथम सदी सा०स० मे अपना "नैसर्गिक इतिहास" लिखा, तब उसने मत्स्य-भक्षण की निषेधाज्ञा के सबध मे यह गलत अनुमान लगाया कि सिकन्दर ने ही मछली खाने की हिंसक प्रवृत्ति को रोका — जब कि यह आदेश सम्राट अशोक की प्रेरणा से ज्ञापित हुआ था[6]।

यूनानी सैनिक अब व्यापारी बन गए। प्रथम सदी सा०स० के एक मिस्री-यूनानी नाविक ने अपने यात्रा-विवरण

---

(1)द्वितीय एशियाई पत्नी फारसी सम्राट दारा की पुत्री बर्सिनै (स्ततीरा) थी।

(2) W TARN, The Greeks in Bactria and India, Cambridge, 1951(1938), p 98 एक नवीन खोज प्रकाशित हुई F HOLT, Alexander the Great and Bactria The Formation of a Greek Frontier in Central Asia, Leiden 1989 (3)ibid p 101

(4) दे०E LASCARIDES-ZANNAS " The Hellenization of the East ", Yavanika 1, 1991, p 91 "When Aśoka published his edicts in the local language, he found it necessary to use, besides the Aramaic brought in the province two centuries earlier by the Achemenian domination, also Greek, as it was obviously the basic language then used in Kandahar A Greek writer, Isidorus from Charax (town near river Tigris mouth). around 25 A.D also mentions it as the metropolis of Arachosia and gives its proper Greek name, Alexandroupolis, saying also that ' the town is Greek' "

(5) P EGGERMONT, Alexander's Campaign in Sind and Baluchistan and the Siege of the Brahmin Town of Harmatelia Leuven 1975, p 67 "The Greek inhabitants of Alexandria in Arachosia, modern Kandahar, were acquainted with Aśoka's inscription Some time after the death of Aśoka some Greek traveller may have attributed the inscription to Alexander the Great" अपने एक अन्य लेख में प्रो० अॅगरमोन्त् अशोक को यूनानी मिथक से जोड़ते है : " Heracles-Dorsanes and Priyadarsin-Aśoka ", Orientalia Lovaniensia Periodica 17 1986 pp 159-168 (6) PLINIUS, Naturalis Historia पी० अॅगरमोन्त् द्वारा उल्लिखित " The order forbidding fish-eating is attributed to Alexander, but it should be attributed to Aśoka, who in 258-7 B C E made it an item of his Buddhist propaganda In my opinion Aśoka's propaganda was not restricted to Arachosia It must have penetrated as far as the Hingol river, as the country of the Oritans (Baluchistan) belonged to India in the times of the Mauryan Empire". यहीं तो "मत्स्य-मही" रहते थे।

"पेरिप्लोव्स्" मे ध्यान दिया कि जहा पहले सिकन्दर का कोई " पर्रेम्बोलै" (सैनिक शिविर) था, अब वहा फलता-फूलता "अेम्पोरिऑन्" (व्यापार-केन्द्र) बन गया। सा०स०पू० 274 मे भारत की ओर व्यापार-मार्ग की सुविधा के लिए मिस्र के प्तोलेमी शासक ने लालसागर-तट पर होर्मोस् नामक बन्दरगाह की स्थापना की, जब कि सीरिया के सेल्यूकी शासक को फारस की खाड़ी के पुराने समुद्रमार्ग से सन्तुष्ट रहना पड़ा। लेकिन यह व्यापारिक सम्पर्क अशोक के शासनकाल के बाद ही गतिशील होने लगा। अत उत्तरकाल के यूनानी प्रभाव को पूर्वकाल मे न बढ़ाए। तक्षशिला के सबघ मे प्रो० ए० दानी याद दिलाते है कि पूर्वकाल मे उस नगर पर यूनानी अधिकार अल्पकाल तक ही रहा , अर्थात् अधिक-से-अधिक तीस वर्ष तक (सा०स०पू० 330-300) , जब कि नगर की वास्तविक यूनानी अवधि बख्त्रिया की विस्तार-नीति के कारण लगभग सा०स०पू० 189 से 50 तक प्रभावशाली रही [1]।

हम ऊपर देख चुके है कि अशोक के यूनानी अभिलेखो का तात्पर्य केवल अल्पसख्यक स्थानीय यूनानी-भाषा-भाषियो को सबोधित करना नही था, अपितु वह पड़ोसी राज्यो के हितार्थ धर्मनीति की प्रतीकात्मक घोषणा करना चाहते थे। क्या सिकन्दर के ज़रिये पहले पश्चिम ने पूर्व की ओर दृष्टि डाली ? क्या अशोक ने , केवल उस दृष्टि को प्रतिबिम्बित कर , पश्चिम की ओर देखा ? यह कैसे : एक ओर युयुत्सु यवन, दूसरी ओर शातिमग्न मागध ? उदार सार्वभौम दृष्टि केवल यूनानवाद की उपज नही थी। यह युग की पुकार थी। पूर्व-पश्चिम के विश्व-बन्धुत्व एव भगिनीत्व के अभ्युदय के लिए प्रियदर्शी अशोक ने अपनी ओर से, पूर्व से ही, मैत्रीपूर्ण लोक-आलोकन किया। आज के इतिहासकार डबल्यू० टार्न् की इस प्रस्तुति को आदर्शीकृत अतिशयोक्ति मानते है कि सिकन्दर महान् ने विश्व-मानवता के भावात्मक एकीकरण के लिए अपना यूनानवादी अभियान चलाया [2]। हमने पहले भी (पृ० 129) औपिस् नगर के उस दृश्य[3] का उल्लेख किया जब "मन्तिस्" (यूनानी पुजारी-दर्शी) और "मगोस्" (फारसी पुजारी-तन्त्री)

---

(1) A.DANI The Historic City of Taxila 1988, p 64 (2) उद०C PFEIFER & H VOS The Wycliffe Historical Geography of Bible Lands . 1974 p 443 लेखक टार्न् की पुस्तक Alexander the Great (1950) से इस त्रिविध अभिधारणा का उल्लेख करते है " 1 God is the common Father of mankind, 2 Alexander's dream of the various races of mankind, so far as known to him, becoming of one mind together and living in unity and concord; 3 also part of his dream that the various peoples of his empire might be partners in the realm rather than subjects" और इसकी यह आलोचना करते है " Research on this thesis will show that it is based on statements in Plutarch, the interpolation of which has been somewhat strained. The thesis has had little acceptance among historians".

(3) ARRIAN Anabasis of Alexander, 7:11:8-9.

के साथ तर्पण अर्पण कर सिकन्दर ने यह प्रार्थना की "मकिदूनियो एव फारसियो के बीच सामन्जस्य (होमोनोय) हो और साम्राज्य मे साहचर्य (कोयनोनिअ) "। यह सिकन्दर का मूल उद्गार नही है ; उदारचित लेखक अर्‍रिहअर्नोस् अपने युग की विश्वदृष्टि को प्रतिध्वनित कर रहा है [1] । विश्व-नागरिकता की भावना आरभिक यूनानवाद मे इतनी प्रबल नही थी, जैसे मार्टिन् हेङल् ने, सा०स०पू० प्रथम सदी के सीरियाई विचारक मेलेअग्रोस् की इस उक्ति का उल्लेख कर कि " देशी-विदेशी, हम-सब एक ही देश मे रहते है विश्व-देश !", यह टिप्पणी जोड़ देते है कि ऐसी विश्वव्यापकता एक नये दृष्टिकोण का द्योतक है; ऐसी मनोवृत्ति सा०स०पू० तृतीय सदी मे सिकन्दर के द्वारा अभिव्यक्त नही हो सकती थी [2]।

दूसरी और यूनानी लेखिका एलीकि लस्करिदेस् मानती है कि सिकन्दर मे सम्भवत वसुधैव कुटुम्बकम् की सद्भावना थी, लेकिन उसके साथी-मकिदूनी और उसके राज्य के उत्तराधिकारी गैर-यूनानियो के प्रति आदरभाव नही रखते थे [3]। वे अन्यभाषा-भाषी को बर्बर " बर्‌बरोस् " कहते थे। अत यूनानीकरण की पहली सफलता थी यूनानी भाषा का प्रयोग , जिसके कारण गैर-यूनानी भी अनायास यूनानी जीवन-पद्धति अपनाने लगे। पश्चिमी परिस्थिति मे सामाजिक दबाव भी था, जिसके कारण गैर-यूनानी स्वय यूनानियो के सदृश बोलचाल-चालचलन अपनाते थे (इसे स्व-यूनानीकरण[4] कह सकते है)। परन्तु पूर्व देशो मे ऐसा कम होता था कि देशज भी यूनानी सीखे अथवा यूनानी जीवन-शैली ग्रहण करे [5] ।

---

(1) दे० P BRUNT, op cit p 529 " Beyond doubt many speeches in classical histories are nothing but literary embellishments W Tarn actually thought that Alexander's speech at Opis included some of his actual words !"

(2) MARTIN HENGEL, Judaism and Hellenism, London, 1974, p 69 (epigram by Meleager) यद्यपि मेलेअग्रोस् ने यूनानी नागरिकता प्राप्त की थी, वह अपनी जन्मभूमि सीरिया मे गर्व रखता था, इसलिए पहले अपनी भाषा मे अभिवादन किया करता था "यदि आप सीरिया-वासी है, तो मै आपको ' शलाम् ' (अरामी मे ' शान्ति ') बोलता हू , यदि फेनीके-वासी है , तो आपको ' नय्दियुस् ' [फेनीके भाषा मे ' नमस्कार ']। यदि आप यूनानी है , तो आपको ' खोयरे ' [यूनानी मे ' आनन्दित हो ']। और आप जो भी हो , आप [अपनी किसी भी भाषा मे जिसे मै नही जानता] स्वय अपने आपसे नमस्ते बोले । "

(3) ELIKI LASCARIDES-ZANNAS "Greece and South-India ' Bharatiya Samskriti vol 2 Calcutta 1983 p 632 "Alexander's own Macedonians were far from sharing his ecumenical ideas, and his successors promoted merely Hellenization rather than fusion"

(4) " self-Hellenization" _ M HENGEL op cit .p 59 "the indigenous (Semitic and Egyptian) population sought to improve their social and cultural status and to share in the prosperity and success of the Greeks" (5) उद० A.DANI, op cit p 65 "Greek mannerisms were an extraneous veneer on the traditional life of Taxila The Taxilians continued in their own life pattern and followed their own social and religious traditions" ; E.LASCARADES-ZANNAS, "The Hellenization of the East" loc cit p 90 "Even those who were hellenized had to use the vernacular in their contacts with their less enlightened fellow countrymen".

भारत से यूनानवाद के आरम्भिक सम्पर्क का प्रतिफल भले ही अधिक न हो अथवा तुरन्त दिखाई न दे . एक नयापन अवश्य आरम्भ हुआ एक व्यापकतर क्षितिज खुल गया . जिससे बहुभाषीय-बहुजातीय सवाद के लिए अभूतपूर्व अवसर मिला[1] । यही सिकन्दर के अधूरे (और अपने आप मे कुत्सित) अभियान का सुपरिणाम था ।

164 मौर्यकाल के यूनानवादी सम्पर्क HELLENISTIC CONTACTS IN THE MAURYAN AGE

सा०स०पू०13 जून 323 को बेबीलोन मे सिकन्दर की मृत्यु हुई। विशाल यूनानी साम्राज्य के अधिक-से-अधिक भाग पर अधिकार प्राप्त करने के लिए " दिअ-दोख़ोय् " . अर्थात् उत्तराधिकारी . आपस मे सघर्ष करने लगे । अन्तिगोनोस् . जिसे मोनोफ़्थल्मोस् (एकाक्ष) कहते है मुख्य प्रतिद्वन्द्वी था। लेकिन दूसरे संघिबद्ध सेनापति उसे मकिदूनिया की ओर धकेलते गए, जहा उसने सा०स०पू० 306 मे अपने को राजा घोषित किया। इतने मे सेना-पति सेलेव्कोस् भारत-सीमा तक सम्पूर्ण पूर्वी क्षेत्र का एकमात्र " निकतोर् " (विजेता) बनने मे सफल हुआ और सा०स०पू० 3 अप्रैल 311 से अपना सेल्यूकी सवत् चलाने लगा[2]। मिस्र के शासक प्तोलेमयोस् ने सा०स०पू० 305 मे " सोतैर् " (उद्धारक) की उपाधि ग्रहण कर स्वय को राजा घोषित किया। पूर्व तथा पश्चिम के मध्य मे नौकान्तरण (trans-shipment) का केन्द्र होने के कारण यूनानी मिस्र की राजधानी सिकन्दरिया प्राचीन जगत् की राजमडी बनी।

उन प्रथम "उत्तराधिकारियो " के प्रथम वशजो के शासनकाल से हम अशोक के दिनो तक पहुच जाते है ।

---

(1) दे० E LASCARIDES-ZANNAS ,op cit ,p 89 "With the enormous and sudden expansion of geographical horizons, entire populations which had been insulated by obscurity, were able to participate in a new movement of ideas and , perhaps most significant of all , Greeks and non-Greeks alike were stripped off the shelter of the small political organism which had enveloped them, and were compelled to devise a new spiritual shelter in the overwhelmingly large universe"; आर०सिंह नाहर (तत्रैव,पृ० 208) भी मानते है "सिकन्दर ने ऐसी पृष्ठभूमि तैयार कर दी जिससे चन्द्रगुप्त को भारत मे राजनीतिक एकता स्थापित करने का अवसर मिला । " (2) तिथि-निर्धारण के लिए दे० J TUBACH, " Seleukos' Sieg über den medischen Satrapen Nikanor ", Die Welt des Orients,26 1995,pp 97-128 , W OESTERLEY A History of Israel , Oxford 1932 vol 2 p 23 "The Babylonian era of the Seleucids began on New Year's Day of the year following the conquest of the land, i e the first of Nisan 311 BC The Syro-Macedonian calendar however, began the year on the first of Dios (Sept-Oct) and as the Syrian Greeks wished to bring the Seleucid New Year's Day into conformity with theirs, they introduced a purely fictitious era beginning with the first of Dios 312 BC"

तीन प्रमुख यूनानवादी साम्राज्य बने [1]

1. अन्तिगोनोस्-प्रथम के बाद दैमैत्रिओस्-प्रथम (सा०स०पू० 306-283),तत्पश्चात् अन्तिगोनोस्-प्रथम का पोता अन्तिगोनोस्-द्वितीय उपनाम "गोन्तास्" (283/276-239) मकिदूनिया के राजा बने।
2. सेलेव्कोस्-प्रथम का पुत्र अन्तिओखोस्-प्रथम उपनाम "सोतैर्" (280-261) और उसके बाद अन्तिओखोस्-द्वितीय उपनाम "थेओस्" (261-246) पूर्वी क्षेत्र (सीरिया, आदि) के राजा बने।
3. प्तोलेमयोस्-प्रथम का पुत्र प्तोलेमयोस्-द्वितीय उपनाम "फ़िलदेल्फ़ोस्" अर्थात् मित्रबन्धु (283-246) और उसके बाद प्तोलेमयोस्-तृतीय उपनाम "ओर्वेर्गेतैस्" अर्थात् उपकारक (246-222) शेष दक्षिणी क्षेत्र (मिस्र, आदि) के राजा बने।

उन तीनो अन्तिगोनी , सेल्यूकी और प्तोलेमी वश-क्षेत्रो के अतिरिक्त छिटपुट अर्धस्वतन्त्र यूनानी राज्य थे

- मध्य-पश्चिम यूनान मे अयतोलिअ का नगर-सघ था।
- दक्षिण यूनान अखअिअ का नगर-सघ ,जिसका शासक अलेक्सन्द्रोस् "कोरिन्थिओस्" (252-244) उल्लेखनीय है।
- उत्तर-पश्चिम यूनान मे ऐपेयरोस् का पर्वतीय क्षेत्र था, जिसका शासक पुर्र्होस् दक्षिण इटली के यूनानियो के पक्ष मे लड़ने गया (और Pyrrhic victory मे जीतकर भी हारे!) तथा मकिदूनी गोन्तास् को ललकार कर उसने वीरगति प्राप्त की। तब अलेक्सन्द्रोस् "ऐपेयरोतैस्" (272-255) ने शासन सभाला।
- प्राचीन त्रोय नगर के पास पेर्गमोन् क्षेत्र मे अत्तलोस्-वशी फ़िलेतयरोस् अपने को सेल्यूकी राज्य से अलग करने मे सफल हुआ।
- उसी प्रकार सा०स०पू० 256 मे बक्त्रिअनै के क्षत्रप दिओदोतोस् ने भी किया और बाद मे ऐव्थुदैमोस्-वश स्थापित हुआ [2]।

अपने राज्याभिषेक के बारहवे वर्ष मे (सम्भवत. सा०स०पू० 253 मे) जब सम्राट अशोक ने त्रयोदश शिलालेख लिखवाया, तब उसकी 17वी पक्ति मे समकालीन यूनानी राजाओ मे से पाच नामो का उन्होने उल्लेख किया (देखिए ऊपर पृ० 45-46 पर विस्तार से) .

अंतिकिन	=	निश्चित रूप से मकिदूनी राजा अन्तिगोनोस्-द्वितीय .
अंतियोक	=	" " सेल्यूकी राजा अन्तिओखोस्-द्वितीय .
तुरमय	=	" " प्तोलेमी राजा प्तोलेमयोस्-द्वितीय .
अलिकसुन्दर	=	चाहे अर्धस्वतन्त्र राजा अलेक्सन्द्रोस् ऐपेयरोतैस् (253 के पहले!)
		अथवा " " " कोरिन्थिओस् (253 के बाद!) .
मक	=	सम्भवत मिस्र के पास अधीनस्थ राजा मगस् कुरैनअिकोस् ।

(1) "By 275 BC three great [Hellenistic] empires existed " (The Westminster Historical Atlas of the Bible 1946 p 70)

(2) इसलिए डब्ल्यू० टार्न् पाच यूनानी राजवश गिनाते है Hellenistic dynasties of Antigonids Seleucids Ptolemaics.Attalids and Euthydemids . यद्यपि ए०के० नारायण मानते है कि ऐसा करने से इण्डिया के लिए Hellenistic aspect is over-emphasized (The Indo-Greeks ,p 7)

उपर्युक्त राजा मगस् ने सेल्यूकी वश के राजा अन्तिओखोस्-प्रथम की पुत्री अपमै से विवाह किया, जब कि स्वय मगस् की पुत्री बेरेनिकै ने प्तोलेमी वश के राजा प्तोलेमर्योस्-तृतीय से विवाह किया। दूसरी ओर, मगस् की पत्नी अपमै की बहन स्त्रतोनिकै ने — जो अन्तिओखोस्-प्रथम की अन्य पुत्री थी — अन्तिगोनी वश के राजा दैमैत्रिओस्-द्वितीय (सा०स०पू० 239-229) से विवाह किया। इस तरह तीन वशो का वैवाहिक सबध हो गया [1]। जब ऐसा सबध एक ही विवाह से स्थापित हो, तब उसे यूनानी मे "कैदोस्" कहते है । लेकिन उस विवाह-बधन के साथ "ऐपिगमिअ" , अर्थात् विवाह-सधि भी स्थापित की जा सकती है — जब भविष्य मे अन्य विवाह-बधनो के प्रावधान के द्वारा स्थायी सबध सम्पन्न हो जाता है। जब सा०स०पू० 303 मे राजा चन्द्रगुप्त ने (जिसके मौर्य साम्राज्य-विस्तार के विषय मे अगले अध्याय मे देखेगे) राजा सेलेव्कोस्-प्रथम के साथ अपनी शर्तो पर शाति-सधि स्वीकार की, तब उस ऐतिहासिक समझौते मे सधि-पक्षो के बीच विवाह करने का अधिकार भी सम्मिलित था । अत बहुत सम्भव है कि सेल्यूकी वश के साथ मौर्य वश का वैवाहिक सबध स्थापित हुआ हो , चाहे चन्द्रगुप्त ने स्वय सेल्यूकी राजकुमारी से विवाह किया (जिसका सकेत भविष्य-पुराण 3 6 43 मे है ?) अथवा बिन्दुसार ने (जिसके कारण अशोक की यूनानी मा थी ?[2]) ।

यदि पाटलिपुत्र के राजपरिवार मे एक यूनानी राजकुमारी (और उसकी सखियो) का प्रवेश हुआ, तो यवनो के विषय मे व्यकिगत सम्पर्क की प्रत्यक्ष जानकारी थी। इसके अतिरिक्त यवन-दूत मेगस्थेनैस् मौर्य दरबार मे उपस्थित हुआ । उसके यात्रा-विवरण [3] से ज्ञात है कि वह हिन्द-वासियो के श्रेष्ठ राजा सन्द्रोकोतोस् के यहां, गङ्गैस् नदी के तट पर स्थित महानगरी पलिम्बोथ्र मे रह रहे थे। बाद मे सेल्यूकी राजधानी अताकिया से राजदूत दअिमखोस् और सम्भवत पत्रोक्लैस् भी आए, जब कि प्तोलेमी राजधानी

---

(1) नामो मे भ्रम न हो एक अन्य बेरेनिकै थी, जो प्तोलेमर्योस्-द्वितीय की पुत्री थी और जिसने सा०स०पू० 252 मे अन्ति-ओखोस्-द्वितीय से "राजनीतिक" विवाह किया। एक अन्य स्त्रातोनिकै भी है, जो अन्तिगोनी दैमैत्रिओस्-प्रथम की पुत्री थी और सेलेव्कोस्-प्रथम की पत्नी बनी , उसी की पुत्री फ़िलै ने अन्तिगोनोस्-द्वितीय से विवाह किया।

(2) "अशोक मे यूनानी रक्त तक होने की सम्भावना से एकदम इकार नही किया जा सकता"(*श्रीराम गोयल*, **प्रियदर्शी अशोक** ,पृ० 84)।   (3) द्रष्ट० ARRIAN, Anabasis of Alexander ,5.6.2; Indica,5:3,2.9,10:5 आदि मे सुरक्षित ।

सिकन्दरिया से राजदूत दिओनुसिओस् भेजा गया। स्वाभाविक है कि पाटलिपुत्र की ओर से भी उन राजधानियो को दूतमण्डल गए होगे। कहते है कि बिन्दुसार ने मीठी शराब, सूखे अजीर और एक प्रज्ञाशील यूनानी दार्शनिक मगवाये। यह सब देखते हुए विद्वान, उदाहरणार्थ अॅफ़० शिअल्पी [1], मानते हैं कि अशोक उस यूनानी वातावरण से सुपरिचित थे और यूनानी राज्यप्रणाली की नीति-राजनीति के जानकार थे ।

मौर्य साम्राज्य और सेल्यूकी साम्राज्य पड़ोसी ही थे। सीमान्त-क्षेत्र मे दोनो की गतिविधियो के सबध मे विशेष-कर सिक्को से अनुमान लगाया जा सकता है। ऑक्सोस्-तटीय क्षेत्र पर किसी सोर्पेयथैस् / सोफुतैस् ने अधिकार कर लिया। सा०स०पू० 317 मे पोरोस् की हत्या हुई थी, और सिधु का सम्पूर्ण दाया क्षेत्र चन्द्रगुप्त के लिए प्राप्य हो गया। गन्दरिअ-सहित घाटी के मध्य भाग पर भी उसने कब्जा कर लिया । ऊपर उल्लिखित शान्ति-सधि के कारण बाए क्षेत्र का और बड़ा भूभाग (परपमिसंदय् ,अरख़ोसिअ तथा कम-से-कम अशत गद्रोसिअ एव अरेयनै) उसे हाथ लगा। सम्राट अशोक अपने अधीन यवन-क्षेत्र के माध्यम से पड़ोसी यवन-राज्य से निकटतम सम्पर्क रख सकते थे। परन्तु जब से सा०स०पू० तीसरी सदी के मध्य मे बख़्त्रिया के शासक दिओदोतोस् ने अपने को राजा घोषित किया और बाद मे पार्थिया-क्षेत्र भी सेल्यूकी राजा सेलेव्कोस्-द्वितीय (246-226) से स्वाधीन हुआ, तो भारत पश्चिमी यूनानी ससार का सीधा पड़ोसी नही बना रहा। अत अशोक के आरम्भिक काल मे ही पश्चिम से सास्कृतिक एव धार्मिक सवाद अत्यधिक गहराई तक सम्भव हुआ। डॉ० एच० हुम्बख़् यूनानी अभिलेखो के सबध मे कहते है कि अशोकीय धर्मनीति के सदेश का यूनानी अनुवाद करते समय, लिपिक ने बौद्ध सिद्धातो को सम-कालीन यूनानी दर्शन की भाषा मे व्यक्त करने का प्रयास किया,जैसे पश्चिम मे प्रेषित बौद्ध धर्मदूतो ने भी किया [2]।

---

(1) F SCIALPI,op cit ,p 59 " There are thus many reasons for believing that Aśoka was familiar with the Greek environment and that he had several opportunities to learn about the moral doctrines and Hellenistic ideas that the new dominators of the Greek political scene had adopted in order to justify their personal power, or at least to transmogrify it into a kind of noble ethical ideal "
(2) H HUMBACH," The Aramaic Aśoka inscription from Taxila", German Scholars on India ,1976, vol 2,p 123 "The translator of the Greek version did not hesitate to render Buddhist concepts in the terms of Greek philosophy a procedure which throws some light on the practice adopted by Aśoka's Buddhist missionaries in the West" अन्य अध्ययन देखो DAVID SCOTT," Buddhist attitudes to Hellenism a review of the issue", Sciences Religieuses , 15, 1986, pp 433-441

योन-क्षेत्र मे ही बौद्ध पचारक "महारक्खित" आया और "अनेक यवनो ने बौद्ध धर्म अपना लिया" [1]। वही से योन कहलानेवाले भिक्षु "धर्मरक्खित" ने सौराष्ट्र मे प्रचार किया। नासिक,जुन्नार तथा कर्ली के गुफा-लेखो मे सा०स०पू० प्रथम सदी के बौद्ध उपासको के नामो मे ऐसे अनेक व्यक्ति है, जो अपने को "योनक / यवन" कहते है ; उनमे एक "धम्मयवन" भी है (कर्ली,10)। डब्ल्यू० टार्न् के अनुसार वे सास्कृतिक दृष्टि से यूनानी नही है [2],वरन् किसी यवन-नगर से आये हुए भारतीय व्यापारी है । पश्चिमी देशो से व्यापार करने के लिए उनमे से किसी-किसी को यूनानी भाषा सीखनी पड़ी थी[3]।

श्री रामप्रसाद चाद के अनुसार[4] यूनानी निवासियो को यवनो के रूप मे भारतीय समाज मे ग्रहण किया जाता था। धर्माचरण करना तो विदेशियो का भी कर्तब्य था (शान्तिपर्व 65 13-22) । साधारणत वे चौथे वर्ण मे गिने जाते थे, परन्तु व्रात्यप्रायश्चित करने पर क्षत्रिय के समान बन सकते थे (महाभाष्य 2.4 10) । "भारतीयकरण" के उदाहरण उस समय मिलने लगते जब " ग्रैको-बैक्ट्रियन् " शासक क्रमश "इण्डो-ग्रैको-बैक्ट्रियन् " , फिर पूर्णत " इण्डो-ग्रीक् " बन गए। यवनराज अगथोक्लैस् (सा०स०पू० लगभग 180-170) गाधार प्रान्त के लिए अपने सिक्को पर यूनानी भाषा के साथ स्थानीय प्राकृत का भी प्रयोग करने लगे, चाहे ब्राह्मी लिपि मे अथवा खरोष्ठी मे। उन द्विभाषीय सिक्को पर उसने वासुदेव-श्रीकृष्ण एव श्रीबलराम-सकर्षण की आकृतिया अकित की [5]। ओलिव्ये गिय्योम इस पर-सस्कृतीकरण को केवल स्थानीय प्रजा हेतु तुष्टीकरण की राजनीति नही मानते है। अगथोक्लैस् मे भारतीय सस्कृति के प्रति मात्र कुतूहल नही, सच्ची अभिरुचि थी। एक अन्य सिक्के पर उसने पद्मपाणी देवी को चित्रित किया [6]। इस प्रकार उस यवनराज ने उस प्रान्त के मूल निवासियो की भावनाओ का आदर किया।

---

(1) *श्रीराम गोयल*,तत्रैव ,पृ०78 । (2) " They were certainly not ' culture Greek' " (W TARN,The Greeks in Bactria and India p 254)
(3) " Greek. may have persisted for some time as a **lingua franca** for traders from the West"(ibidem p 321) उद० जब दक्षिण भारत का एक दूत-मण्डल रोम के साम्राट औगुस्तुस् के पास जा रहा था, तब "बरुगंज" बन्दरगाह से वे एक "गुम्नो-सोफ़िस्तैस् " (निर्ग्रन्थ ज्ञानी) को और यूनानी भाषा मे लिखित पत्र को भी ले गये (Nicolaus of Damascus के अनुसार,स्त्राबोन् XV,888 719)
(4) RAMAPRASAD CHAND, "Early Indian seamen",Asutosh Mukerjee Silver Jubilee Volumes,vol 3 1,1922,p 123
(5) दे० OLIVIER GUILLAUME ed Graeco-Bactrian and Indian Coins from Afghanistan 1991 Plate IV A-C (6) ibidem Plate IV F-G

इसके अतिरिक्त सिक्को मे यूनानी देव-प्रतिकृति जोड़ने मे उसने स्थानीय परम्परा का खयाल कर नूस नगर के इष्ट देवता दिओनुसोस् को चुना[1] । अस्सी वर्ष पहले सम्राट अशोक ने स्थानीय योन-कबोजो के प्रति इससे कम उदारता नही दिखायी थी ।

एक अन्य उदाहरण यवनराज अन्तिअल्कीदैस् (सा०स०पू० 115-100) के " योन-दूत " हैलिओदोरोस्[2] का है। वह तक्षशिला से आकर शुगवशी राजा भागभद्र से मिला और बेसनगर (विदिशा) मे गरुड़-ध्वज खड़ा किया । इसके प्राकृत स्तम्भाभिलेख मे[3] हैलिओदोरोस् , यवन होते हुए भी , " देवदेव वासुदेव " का नाम लेता है और अपने आपको भगवान का भक्त " भागवत " मानता है । वह स्तम्भलेख के पाठक को भगवद्प्राप्ति हेतु तीन अमृत-पद सिखाता है, जिनके सु-अनुपालन से मानव सिद्धिमार्ग पर आगे बढ़कर "स्वर्ग" तक पहुच जा सकता है **दम चाग अप्रमाद** , अर्थात् आत्मसयम , त्यागमय-दयालुता और विवेकशील-तत्परता[4] । यह समर्पण-

---

(1) दे० R.AUDOUIN & P.BERNARD," The Ai Khanoum coins the 1970 Hoard (II) ", in O GUILLAUME, op cit , p 100 "coins with the effigy of Dionysus as a reminder of the discovery by Alexander, on the territory of the city of Nysa of an indigenous cult that the Macedonian conqueror believed or pretended to believe to be that of the Greek God yet another manifestation of this sensitivityto local traditions" इससे स्पष्ट है कि यूनानियो ने स्वधर्मपन्थ के आराध्य देवी-देवताओ को अन्य धर्मसस्कृति मे पहचानने की कोशिश की। यूनानी यात्रा-वर्णनो मे यूनानी उपास्य देवता दिओनुसोस् की लीला को भारत मे स्थानान्तरित किया गया ,उद० अिन्दिकै 7 8 के अनुसार दिओनुसोस् ने हिन्द-वासियो को झाझ और ढोल बजाकर नृत्य के साथ "देव-पूजा करना सिखाया " (यूनानी मे थेओउस् सेबयन् ओदिदस्के) । अर्धावतार वीर हैरक्लैस् को भी भारत मे पहचाना गया, विशेषकर "मेथोर एव क्लैइसोबोर नगरो मे, जहा अिओमनै नदी बहती है " (= मथुरा कृष्ण-पुर यमुना ?)। उसकी एकलौती पुत्री " पन्दैयै " थी , जिसके आभूषण के लिए उसने समुद्र से मुक्तिमणि " मरगरितै " निकाली (अिन्दिकै 8 8) । दे० A DAHLQUIST, Megasthenes and Indian Religion Delhi 1977(1982) इस ग्रथकार का विचार है कि मेगस्थेनैस् ने वास्तव मे श्रीकृष्णावतार की "यूनानी व्याख्या ' (interpretatio graeca) नही की, वरन् स्थानीय, विशेषकर जनजातीय मुडारी धर्मप्रथाओ एव धर्मकथाओ की तटस्थ प्रस्तुति की है - " There is some connection between these original dwellers in the Punjab and the Hindu Kush and those who today live in Orissa and Chota Nagpur" (p 287) (2) उसके यूनानी नाम का अर्थ "सूर्य-दत्त " है ।"The name is very common in Syria in the Hellenistic and Roman period where solar cults were very popular It is therefore not impossible that this Heliodorus was descended from a family from Hellenized Syria"(O GUILLAUME op cit 106 quoting L ROBERT)

(3) श्रीराम गोयल (प्राचीन भारतीय अभिलेख-सग्रह , खण्ड 1,पृ० 156-161) बेसनगर-अभिलेख की भाषा पर "यूनानी प्रभाव " स्वीकार करते है , क्योकि राजा भागभद्र के लिए प्रयुक्त उपाधि "त्रातार " यूनानी "सोतैर् "(उद्धारक) का अनुकरण है , यद्यपि पूज्य वासुदेव का नाम पाणिनि के सूत्र 4 3 98 मे मिलता है , उसकी उपाधि "देवदेव " यूनानी प्रयोग "बसिलेउस् बसिलेओन् " (राजाओ का राजा) याद दिलाती है । (4) टीकाकार तुरन्त महाभारत (5 43 22, 11 7 23-25) अथवा भगवद्गीता (16 1-3) की शिक्षा से तुलना करते हैं , लेकिन सुत्तनिपात (1 10 4-9) मे समानता अधिक है " मनुष्य भवसागर को अप्रमाद से लांघ जाता है जिस श्रद्धालु गृहस्थ मे सत्य, धर्म, धैर्य और त्याग (चागो) - ये चार बाते होती है , वह इस लोक से परलोक मे जाता क्या सत्य, इन्द्रिय-दमन (दमा), त्याग और क्षान्ति से बढ़कर कुछ और भी है ? " और धम्मपद 2 1 मे कहा गया कि प्रमाद न करना अमृत-पद का साधन है। वास्तव मे, यूनानी दर्शन मे भी समान शिक्षा मिलती है उद० प्लतोन् अपनी रचना गोरगिअस् (504 e) मे ऐसे ही तीन साधन सिखाता है : न्यायप्रियता, सयम और सद्गुण ।

स्तम्भाभिलेख अशोक की मृत्यु के लगभग 130 वर्ष बाद लिखा गया, पर अशोकीय धर्मलेखो की शैली मे ही यूनानी राजदूत हैलिओदोरोस् ने इसमे नैतिक परामर्श भी जोड़ दिये है[1]।

प्रतिष्ठित यूनानी व्यक्ति भारतीय धर्म-सस्कृति की ओर आकर्षित हुए, परन्तु यूनानी धर्म-दर्शन की ओर ब्राह्मण-श्रमण का आकर्षित हो जाना असामान्य बात था। फिर भी सर् जार्ज् रॉबर्ट्सन् ने लघमान के अरामी अभिलेखो के क्षेत्र मे ही काफिरस्तान/नूरिस्तान की जनजातीय परम्पराओ मे यूनानी उपासना-पद्धति पहचानने की कोशिश की[2]। निम्न टिप्पणी मे और उदाहरण दिये जाएगे कि भारत मे यूनानवाद के आगमन के कारण भारत के प्रति उसका क्या उपागम (approach) बनता गया ।

165 विशिष्ट टिप्पणी : यूनानी जगत् की दृष्टि में अशोकीय परिप्रेक्ष्य

SPECIAL NOTE . ASHOKAN CONTEXTS VIEWED BY THE GREEK WORLD

सम्राट अशोक के विषय मे हमे अब तक यूनानी जगत् मे कोई सीधी प्रतिक्रिया प्राप्त नही हुई। परन्तु जिस परिप्रेक्ष्य मे अशोक ने यूनानी भाषा के माध्यम से अपना सदेश व्यक्त किया, उसके विषय मे हमे यूनानियो की प्रतिक्रिया, ख़ास करके यूनानी यात्रा-वर्णनो मे, प्राप्त है। क्या यूनानी जगत् अशोक का परिप्रेक्ष्य समझने मे समर्थ था ? क्या भारत के प्रति यूनानवाद की अभिरुचि उसे सही अभिज्ञान दिला रही थी अथवा क्या पूर्वाग्रह और विभ्रम के कारण यूनानी दृष्टि मे भारत का सदर्भ विरूपित किया गया ?

165 ~ (1) : **सिकन्दर को ज्ञानियों का परिचय**

अर्र्हिअनोस् ने, जो रोम के अधीन एशियाई कप्पदोकिअ मे राज्यपाल के अपने कार्यकाल (130-137 सा०स०) के पहले अपनी प्रमुख रचना "अलेक्सन्द्रोव् अनबसिस्" एव "अिन्दिके" लिख रहा था, सिकन्दर और भारतीय ज्ञानियो की भेट का दृश्य इस प्रकार प्रस्तुत किया[3] तक्षशिला मे प्रवेश कर सिकन्दर ने

---

(1) दे० O GUILLAUME.op cit p 106 · "This profession of faith has deep affinities with the moral ideal preached by Ashoka " (2) Sir GEORGE ROBERTSON.The Kafirs of the Hindu-Kush 1987(1896).p 162 " If there be points of resemblance between present Kafir and ancient Greek sacrificial observances and if certain of their domestic utensils may seem to be fashioned in Grecian model . it may fairly be conjectured that some of the Kafir tribes at any rate are still influenced as the ancient populations of Eastern Afghanistan were also influenced. by the Greek colonists of Alexander". (3) Anabasis 7. 1 5-6 , 2 2-4 .

ऐसे भारतीय "सॉफ़िस्तैस् " (ज्ञानी) लोगो को देखा जो "गुम्नॉस् " (निर्वसन[1]) रहकर घूम रहे थे। उन की सहनशक्ति से प्रभावित होकर उसने ज्ञानियो मे से सब-से वृद्ध, दन्दमिस् नामक व्यक्ति को बुलवाया। परन्तु दन्दमिस् ने उत्तर भिजवाया "महाराज, मै भी परमपिता का पुत्र हू। मेरे पास ऐसी किसी भी वस्तु का अभाव नही है जो आप मुझे दे सके। आप यहा-वहा कब तक भटकते रहेगे ?यह किसी लाभ का नही है। मेरे लिए तो इहलोक मे शस्यश्यामला भारत-भूमि (है अिन्दोन् गै) पर्याप्त है, जब तक मेरे साथ वास करनेवाली इस अनुरक्तिपूर्ण देह से मुक्ति न मिले। " सिकन्दर समझ गया कि ज्ञानी दन्दमिस् पूर्णत स्वतन्त्र था और उसने उसे बाध्य नही किया। तब कलनॉस् नामक एक अन्य ज्ञानी सिकन्दर के साथ चलने को तैयार हुआ। दूसरे ज्ञानियो की दृष्टि मे कलनॉस् असयमी (अ-क्रतोर्) था, क्योकि वह उनकी सत्सगति का वास्तविक सुख छोड़कर एकमात्र स्वामी ईश्वर के बदले मे एक अन्य स्वामी की सेवा करने लगा। इस ससार का स्वामी तो कोई राजा भी नही है। सिकन्दर को उस दिन मालूम हुआ, जब ज्ञानियो के एक दल से उसकी भेट हुई, जो खुली घास-स्थली पर अपने सत्सग (दिअत्रिबै[2])आयोजित किया करते थे। जब उन्होने राजा को देखा, तब सब ज्ञानी-आचार्य खड़े होकर पैर से भूमि पटकने लगे। इस का तात्पर्य था राजा को ज्ञात हो कि वह भी मर्त्य-मानव ही है और इतने ही भूभाग का अधिकारी है, जिसपर वह खड़ा हो सकता है ; क्योकि उसी भूमि मे उसकी मृत देह को दफनायी जाएगी !

इस प्रसग की प्रस्तुति मे अर्र्हिअनॉस् ने पूर्व-स्रोतो के वर्णन[3] रूपान्तरित किये, क्योकि उसकी रुचि इस बात मे नही थी कि ज्ञानियो से सिकन्दर की भेट हुई या नही ; वह बस अपने समकालीन पाठको को ज्ञानियो के त्याग का नमूना देना चाहता था। इस प्रकार मौर्य सम्राज्य के (यूनानवाद से प्रभावित !) योन-क्षेत्र से यूनानी जगत् पर प्रभाव पड़ा यूनानियो ने ज्ञानियो के सबध मे सिकन्दर के परिप्रश्न के प्रसग को केवल विदेशीयता (exotism) अथवा प्राच्यता (Orientalism) के मोह से अपनी जिज्ञासा का प्रिय विषय नही बनाया। वे सचमुच भारतीय ज्ञानियो के निष्काम त्याग का आश्चर्य के साथ समादार कर रहे थे । वे अपनी सस्कृति के चरित्रवान दार्शनिको से उनकी तुलना भी करते थे [4] । विभिन्न यूनानवादी चरित-लेखक सिकन्दर को नही, अपने पाठको को भिक्षु-सन्यासी ,ब्राह्मण-श्रमण का प्रशसात्मक परिचय देने लगे। साथ ही साथ वे अपने समकालीन भोगवादी अज्ञानियो को एक नया जीवन-आदर्श प्रस्तुत कर रहे थे [5]।

---

(1) अत उन ज्ञानियो को " गुम्नो-सॉफ़िस्तैस् " कहा गया , अब "गुम्नॉस् " का अर्थ केवल निर्वसन नही, वरन् निर्ग्रन्थ त्यागी ही है। (2) P.A BRUNT का अनुवाद "disputations" प्रसंग मे उपयुक्त नही है । इस शब्द को अशोक के यूनानी अभिलेख मे "सम्प्रदाय "का अर्थ देना भी उचित नही है। (3) स्त्रबोन् अन्य वर्णन उद्धृत करते है सिकन्दर स्वय ज्ञानियो से बात नही करता है, बल्कि प्रवक्ता के रूप मे ऑनैसिक्रितॉस् को उनके पास भेजता है। कलनॉस् उससे घमण्ड के साथ कहता है कि प्रज्ञा पाने हेतु मानव को वस्त्रहीन होकर अपने सहज रूप मे शिलाखण्ड पर लेट जाना है। इसपर ज्ञानी " मन्दनिस् " (= दन्दमिस्) अपने साथी कलनॉस् को मना करता है और विनम्रतापूर्वक बोलता है "सिकन्दर प्रशसा के योग्य है। राजसत्ता उसके हाथ मे है , फिर भी वह प्रज्ञा की खोज मे है। निष्काम समभाव ही सत्यदर्शन है।"

(4) जैसे उपर्युक्त ऑनैसिक्रितॉस् ने आगे मन्दनिस् से कहा कि "Pythagoras had taught a similar doctrine , and had commanded his disciples to eat nothing which had life , and that he himself had heard similar discourses from Socrates and Diogenes " (STRABO, India sect 64 paraphrased by J WHEELER Ancient India ,p 110)

(5) दे० U P ARORA , " Roman- age authors on Ancient India ", Yavanika ,1,1991,pp 25-28 "It became one of the most popular episodes for embellishment in the writings of Graeco-Roman authors . Thus, the view that philosophers of India possess some special wisdom became widespread in the Roman world"

ज्ञानी दन्दमिस्/मन्दनिस् एव कलनोस् का प्रसग लेकर यूनानवादी लेखको का भारत के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण सिकन्दर महान् के आक्रामक उपागम का प्रतिफल नही हो सकता है ; वह उस काल की देन है जब शान्तिप्रिय राजा अशोक "महान्" अपनी प्रजा मे सम्मिलित योन समुदाय के प्रति और पच योन राज्यो की जनता के प्रति सर्वहितकारी सद्व्यवहार कर रहे थे। पूर्व और पश्चिम के बीच आदरयुक्त सवाद के उस मुहूर्त का दीर्घ परिणाम पाचवी सदी सा०स० के मसीही प्रबोधक पल्लदिऑस् की उस उपदेशात्मक रचना मे दिखाई देता है, जिसका शीर्षक है . "हिन्द-वासियो तथा ब्राह्मणो के सबध मे "[1]। पल्लदिऑस् एशियाई बिथुनिअ का धर्माध्यक्ष (बिशप्) था और वह अपने लेख मे यूनानी-रोमी समाज की सासारिकता के विरुद्ध अपने सहधर्मी लोकधर्मी विश्वासियो को त्याग एव तपस्या की ओर प्रोत्साहित करना चाहता है। सिकन्दर का साथ देनेवाला कलनोस् पतित ब्राह्मण है, जो लोभ और अविद्या के माया-जाल मे फस गया ; आदर्श ब्राह्मण दन्दमिस् ही है, जो बन्धनमुक्त, निष्काम, गुणनिधान होकर सदुपदेश देता है[2]। ब्राह्मणो की जीवन-शैली बाइबिली "आनन्द-वाटिका" (paradise)[3] के आदिमानव की निर्दोष स्थिति के समान है वे मिताहारी-शाकाहारी प्रकृति-प्रेमी है, निर्वसन-निर्ग्रन्थ त्यागी और ब्रह्मविद् ब्रह्मचारी[4]।

165 ~ (2) · **अशोक-पूर्व विचारक " क्तैसिअस् "**

एक तार की टकार से सम्पूर्ण तानपूरा कम्पायमान हो जाता है। जब अशोकीय सदेश यूनानी माध्यम से अभिव्यक्त हुआ, तब उसकी पृष्ठभूमि मे समस्त यूनानी-भाषा साहित्य का स्वर-गुजन सुनाई देता है। विशेषकर नीति की अभिव्यक्ति हेतु अनजाने मे कुछ ऐसे लाक्षणिक शब्दो एव दृष्टातो का प्रयोग होता है, जो उस भाषा के लोकसाहित्य अथवा शास्त्रीय साहित्य को प्रतिध्वनित करते है। उदाहरणार्थ, सुक्रात-दर्शन सबधी अपने सस्मरण (अर्पो-म्नैमोर्नेमत) मे क्सेनोफ़ोन् एक नीति-कथा प्रस्तुत करता है, जिसमे नारी-रूप मे गुण (अरेतै) और अवगुण (ककिअ) राहगीर को लुभाते है। गुणवती कहती है "मेरे मार्ग पर सुख का पूर्वाभास प्राप्य नही है। मै तुझे नही भटकाऊगी। ईश्वरीय उद्देश्य के अनुकूल मै वास्तविकता को सत्य से समझाऊगी , क्योकि ईश्वर मानव को वास्तविक भलाई एव अच्छाई का अनुभव करने नही देता जब तक वह स्वय चेष्टा न करे और कष्ट न सहे। सयम और अभ्यास से वह विद्या मे दक्ष बन सकता है। मेरे बिना कोई भी शुभ कार्य सम्पन्न नही होता। मै ही तुझे परमानन्द के सुख तक पहुचा सकती हू ! "[5]

---

(1) यूनानी का लातीनी शीर्षक PALLADIUS De Gentibus Indiae et Bragmanibus . दे० CLAIRE MUCKENSTURM-POULLE "Palladius' Brahmans " ,in M -F BOUSSAC & J -F SALLES Athens Aden Arikamedu New Delhi 1994 pp 157-168

(2) " Dandamis is made to say ' We abhor arrogance and love mankind as a whole We are the masters who defend the truth and show the path of justice to those who wish to do good in this life' The kind of renunciation extolled by Dandamis comes from the [Christian] monastic idea of Palladius' time Palladius took the Indian sages as models Here was a Westerner using India not for the exotic, but to evaluate the lifestyle and philosophy of his own universe " (ibidem,pp 165-166) आचार्य-जी प्रो० अरोड़ा कहते है " India was cited as an example of the eastern nations where the wisdom of the Brahmans had enriched the Indian philosophy long before the rise of the Greek thought" (U ARORA,op cit ,p 38) और देखो · G -M BONGARD-LEVIN," Ancient India and the Graeco-Roman world", The Indian Historical Review ,10,1984,pp 21-31

(3) क्योकि यहूदी इतिहासकार योसैर्पोस् के आधार पर (उत्पत्ति-ग्रथ 2 11की प्रथम नदी "पीशोन " को गगा समझाते हुए) पुनीत गगा-देश को अदन के उद्यान मे सस्थित किया गया " The Pishon, which means 'abundance' , flows towards India into the sea The Greeks call it the Ganges " (Antiquities of the Jews ,I 1)

(4) " 'The men live close to the oceanic bank of the Ganges The wives live on the other side The men cross the river in July and August to meet their wives And after living with their wives for forty days they cross back again' Geographical separation helped the Brahmans maintain their continence The Brahmans limited themselves to two children so as to carry on the race without multiplying it " (PALLADIUS, ,p,163) . (5) XENOPHON,Memorabilia , 21-34

जब अशोक अपने अभिलेखो द्वारा जनता को हित-सुख का मार्ग दिखाते थे, तो वह भी झूठे दावो के वादो से लोगो को नही भटकाते, वरन् स्पष्ट रूप से बताते थे कि सत्यधर्म के अनुसार साधु जीवन जीने के लिए पराक्रम व परिश्रम करना चाहिए, जो एक दुष्कर कार्य है। यूनानी अनुवाद मे क्यो न हो, किसी भी सदेश के सार्थक सप्रेषण मे सुनानेवाला और सुननेवाला एक ही परिवृत्ति के भीतर रहकर एक-दूसरे को समझते-समझाते । यूनानी भाषा की परिसीमा मे हमे शाब्दिक-वैचारिक बिन्दु ढूँढने चाहिए, जो भारत एव यूनानी जगत् के बीच सास्कृतिक आदान-प्रदान के सकेत हो। सम्पूर्ण यूनानी साहित्य की छानबीन करने की आवश्यकता नही है। विभिन्न काल के तीन उदाहरण ही प्रस्तुत करे।

प्राचीन यूनानी साहित्य के भारतीय विशेषज्ञ, आचार्य अरोड़ा ने उन यूनानी लेखको की ठोस सूची पर अपनी सुविज्ञ व्याख्याए लिखी, जो सिकन्दर के भारत-आगमन के पहले भारत से सबध रखते हो अथवा जिन्होने भारत के विषय मे कोई वक्तव्य दिया हो [1].

1 स्कुलक्स् (सा०स०पू० 509) सिन्धु-मुहाने की खोज-यात्रा ~ सदिग्ध अश।
2 हेकतैयास् (560-480) "पेरि-ऐगैसिस् गैस्" नामक विश्व-विवरण ~ भारत का प्रथम स्पष्ट उल्लेख।
3 अय्स्खुलोस् (525-456) नाटक ~ छिटपुट उललेख।
4 सोफोक्लैस् (495-406) " ~ " "
5 हैरोदोतोस् (484-425) "हिस्तोरिअय्" नामक इतिहास-अन्वेषण ~ विशेषकर अध्या० 3 98-106 ।
6 कृतैसिअस् (अर्तक्षत्र के शासनकाल मे 415-398) "इन्दिक" ~ केवल साराश (देखिए नीचे)।
7 दैमोक्रितोस् (460-370) दार्शनिक लेख ~ भारत से प्रभावित सिद्धात।
8 हिप्पोक्रतैस् (460-377) चिकित्सिक लेख ~ " " "
9 क्सेनोफ़ोन् (430-355) सस्मरण, जीवनी ~ प्रसगवश भारत-सबधी सुनी-सुनाई दुहराता है ।
10 ऍफ़ोरोस् (405-330) इतिवृत ~ " " " "
11 प्लतोन् (428-348) दार्शनिक कथोपकथन ~ तुलनीय सामग्री मे भारत का अप्रत्यक्ष प्रभाव[2]।
12. अरिस्तोतैलैस् (384-322) . सर्वविषय के वैज्ञानिक-दार्शनिक निबध ~ सामान्य सदर्भ सामग्री[3]।

---

(1) U P ARORA Greeks on India Skylax to Aristoteles . Bareilly. 1996 इससे पहले के० कर्त्तुनन् ने भी शास्त्रीय यूनानी की आरम्भिक रचनाओ को भारतीय दृष्टिकोण से पढने का प्रयास किया था K KARTTUNEN India in Early Greek Literature ,Helsinki,1989 परन्तु डा० कर्त्तुनन् इस पर खेद व्यक्त करते है कि भारतीय विद्वान शास्त्रीय यूनानी-लातीनी भाषाओ मे इतने प्रवीण नही है "An exception in this respect is U P Arora " (K.KARTTUNEN " Graeco-Indica (2) " in M -F BOUSSAC &J -F SALLES op cit .p 13)

(2) टी० लॉम्परिस् ने यूनानी दर्शन पर भारत के प्रभाव की सम्भावना से इन्कार नही किया , फिर भी प्लेटो और गीता / उपनिषद की समानताओ को यह मात्र सयोग की बात मानते है " coincidences of similarities - definitive proof of direct contact is lacking " (T LOMPERIS Hindu Influence on Greek Philosophy Calcutta 1984 p 48) अय्सेबिओस् का साक्ष्य है कि अरिस्तोक्सेनोस् के अनुसार महान् यूनानी विचारक-आलोचक सोक्रतैस् ने एक भारतीय दार्शनिक से भेंट की और उससे वार्तालाप किया (EUSEBIUS Praeparatio Evangelica 11 3) । के० कर्त्तुनन् कहते है . " The vexed problem of interaction and influence between ancient India and the West in the field of religion and philosophy has been the cause of much speculation quite often of a questionable value " (K.K.KARTTUNEN loc cit p 19) । इस क्षेत्र मे वह नई गभीर खोज की माग करते है और एक नये प्रयास का उल्लेख करते है W HALBFASS India and Europe An Essay in Understanding .New York.1988 (G 1981) (3) उद० " Aristotle [Politics 7 14 3] cites Scylax's statement that in India kings had a marked superiority over those they governed " (NILAKANTA SASTRI ed Age of the Nandas and Mauryas 1988 (1951) ch 3 "India in Early Greek and Latin Literature" p 83)

भारत से सम्बद्ध प्रभावी यूनानी व्यक्तियो की सूची मे सर्वप्रथम स्थान पर पुथगोरस् (सा०स०पू० 570 - ?) के नाम को जोड़ना चाहिए था [1] .क्योकि अशोक के यूनानी अभिलेखो के कुछ शब्दो मे उसी के व्यावहारिक दर्शन की शब्दावली प्रयुक्त-सी लग रही है (जहा तक पुथगोरस् की उक्तिया शिष्य-परम्परा मे सुरक्षित है) । परन्तु इस शोध-प्रबध की अगली विशिष्ट टिप्पणी (न० 175) मे हम पुथगोरस् पर विवेचन करेगे ।

यूनानी वैद्यनाथ "क्तैसिअस् हो क्निदिओस्"[2] फारसी राजमहल मे रोगो का निदान करने मे निपुण था , परन्तु प्राचीन लेखको की दृष्टि मे उसका "अिन्दिकै" नामक प्रलेख बिलकुल अविश्वसनीय था। अर्‌र्हिअनोस् अपनी समनाम रचना " अन्दिकै"(3:6) मे साफ कहता है कि क्तैसिअस् के वक्तव्य अनर्थ ही है । लेकिन मूल वक्तव्य केवल साराश रूप मे .नवी सदी सा०स० के मसीही प्राधिधर्माध्यक्ष फ़ोतिओस् द्वारा रचित विशाल कोश "बिब्लिओथेकै " मे सुरक्षित है। भारत के प्रति क्तैसिअस् का दृष्टिकोण प्रशसात्मक रहा दुनिया के छोर पर, एशिया के आधे क्षेत्र मे फैले हुए अिन्दिअ-देश मे एक आदर्श समाज की न्यायपूर्ण व्यवस्था है ; वहा के लोग "अत्यन्त धार्मिक " (यू० दिकयोततोय्) है [3]। आगे क्तैसिअस् का उललेख कर फ़ोतिओस् ने लिखा हिन्द-वासियो की " धार्मिकता " (दिकयोसुनै) , राजा के प्रति उनकी निष्ठा और मृत्यु से अभय - वे ऐसे विषय है, जिन पर विस्तारपूर्वक लिखना क्तैसिअस् को पसन्द है[4]। ध्यान देने योग्य बात है कि जिस "धार्मिकता" की प्रशसा की जाती है, वह व्यापक अर्थ मे धर्माचरण है; शासक के प्रति आदर-भाव भी उस धर्म-पालन मे सन्निहित है और ससार के मोह से विमुक्ति। फिर, जिस यूनानी शब्द "दिकयोसुनै " का प्रयोग हुआ, वह स्थायी रूप से अन्य यात्रा-विवरणो मे मिलता रहता है, मानो भारत की पहचान हो! उद० अर्‌र्हिअनोस् लिखता है कि हिन्द-वासियो मे कोई ऐसा व्यक्ति नही मिलता, जो स्वदेश से बाहर युद्ध-अभियान करने निकला हो ; इसका कारण उनकी "धार्मिकता" (दिकयोतैस्) ही है[5]। शासक-वर्ग के दो विशेष गुण है बुद्धिमत्ता और धार्मिकता [6]।

अशोकीय अभिलेखो के बहु-प्रयुक्त शब्द **धमं** के लिए यूनानी अनुवाद मे "दिकयोसुनै / दिकयोतैस् " का प्रयोग नही हुआ ; परन्तु धर्म के अनुवाद के लिए यूनानी " अेव्सेबेय " चुना गया, जो ईश-भक्ति युक्त धर्मावार है । और वही अर्थ फ़ोतिओस् ने क्तैसिअस्-संबधी सार-अश नम्बर दस मे व्यक्त किया हिन्द-वासी ईश-भक्त होते है ; क्योकि जब ज्वालामुखी पर्वत से आग बरसती है, तब उन "भक्तो की भूमि " (अेव्सेबोन् ख़ोर) को कोई हानि नही पहुचती । इस प्रकार "अनर्थ " के अविश्वसनीय स्रोत से हमे अशोकीय पाठ के अर्थ-निर्धारण हेतु सहायता मिलती है ।

165 ~ (3) अशोक-कालीन विचारक : " क्लेअर्‌ख़ोस् "

सिकन्दर के आक्रामक एकायन-अभियान से यूनानवाद का अभ्युत्थान हुआ, जिसके कारण पूर्व और पश्चिम के सबधो मे अभिवृद्धि हुई । भारत के विषय मे यूनानी जगत् का अभिज्ञान अब प्रत्यक्ष-दर्शियो के बयान पर

---

(1) दे० NILAKANTA SASTRI ,loc cit .p 81 " The similarities between Pythagorean thought and that of the Upanishads, and between the organisation and ceremonial of the Pythagorean fraternity and the ancient ascetic orders of India are too close to be treated as chance coincidences or the results of parallel developments " (2) दे० J McCRINDLE Ancient India as described by Ktesias the Knidian Delhi,1973(1882) , K.KARTTUNEN " The reliability of the Indica of Ctesias ", Studia Orientalia ,50,1981,pp 105-107,"The Indica of Ctesias and its criticism" in U P ARORA,ed ,Graeco-Indica India's Cultural Contacts with the Greek World New Delhi 1991 pp 74-85 (3) McCRIINDLE,p 12,Fragment Nr 8, दे० U P ARORA. " Greek attitude towards the Indians", Baladeva Upadhyaha Felicitation Volume Allahabad,1983,pp 97-109 " Ktesias was the first to attribute uprightness to Indians" (4) Fragment Nr 14 (5) ARRIAN,Indica, 9 12 (6) राजौय 12·7

आधारित होने लगा [1]। सब-से महत्वपूर्ण है यूनानी राजदूत मेगस्थेनैस् का विवरण , जो " अिन्दिकं " नाम से परवर्ती लेखो मे बिखरे हुए उल्लेखो का एक पुनर्स्थापित सकलन है। मौर्यकाल-सबधी यह उत्तम सदर्भ-सामग्री [2] सिकन्दर के चरितलेखको द्वारा अपने नायक की गौरव-गाथा के उद्देश्य के लिए अपनायी गई तथा अनुवर्ती लेखको द्वारा और अधिक उपन्यासीकृत की गई [3]। अर्र्हिअनोस् (95 - 175 सा०स०) ने मेगस्थेनैस् के साक्ष्य का (केवल द्वितीय स्रोत के रूप मे ?) विवेकपूर्ण प्रयोग किया। उदाहरणार्थ , मेगस्थेनैस् के आधार पर अर्र्हिअनोस् ने हिन्द के समाज को चार वर्ण-विभागो मे नही वरन् सात ' जातियो ' मे विभाजित किया। एक-एक जाति के लिए यूनानी शब्द " गेनोस् " प्रयुक्त हुआ, जो भाषाई दृष्टि से " गेनेअ ", अर्थात् जन्म या वश का बोध करता है । उसी सदर्भ मे दिओदोरोस् (जिसका " बिब्लिओथेकै हिस्तोरिकै " नामक इतिहास-सर्वेक्षण सा०स०पू० 58 मे अन्त हुआ) और स्त्रबोन् (सा०स०पू० 65 - 20 सा०स०) यूनानी शब्द " मेरोस् " का प्रयोग करते है , जिससे सामाजिक ' वर्ग ' या श्रेणी का अर्थ निकलता है। चार सदियो के बाद पल्लदिओस् ज्ञानी-त्यागी ब्राह्मणो को " अेथ्नोस् " शब्द के द्वारा एक विशेष ' समाज ' के रूप मे प्रस्तुत करता है [4]। अशोकीय शब्दावली के विश्लेषण मे इस सम्भावना पर विचार करना होगा कि, क्या प्राकृत " पाषड " केवल धर्मपथीय सम्प्रदाय का बोध करता है अथवा समकालीन वर्ण-व्यवस्था की ओर भी सकेत है, और क्या इस के लिए यूनानी अनुवाद मे " दिअत्रिबै " (व्यवसाय, कालयापन) उपयुक्त है ?

यूनानवाद के अभ्युदय के साथ नये धार्मिक अनुभवो एव नैतिक मूल्यो की खोज होने लगी [5]। यूनान के दो उत्कृष्ट दार्शनिको के उत्तराधिकारियो ने उस नवीन दिशा मे पहल किया ; वे है प्लतोन् का उत्तराधिकारी क्सेनोक्रतैस् (सा०स०पू० 400-314) और अरिस्तोतेलैस् का उत्तराधिकारी थेओफ्रस्तोस् (372-287) [6]। साथ-ही-साथ यूनानी दर्शन के दो नये मतो का प्रादुर्भाव हुआ ज़ैनोन् (335-264) द्वारा प्रवर्तित स्टोइकवाद (तितिक्षा, उदासीनता) और ऐपिकोव्र्रोस् (341-270) द्वारा प्रतिपादित एपिक्यूरसवाद (सुखसाधना, विलासप्रियता) । दोनो ने नैतिक व्यवहार पर बल दिया [7]। इसी काल मे प्रियदर्शी अशोक ने साधारण जनजीवन मे नैतिकता का स्तर उठाने के लिए धर्मनीति की घोषणा अभिलिखित करवायी। इसलिए यूनानी नीति-शिक्षाओ की शब्दावली पर विशेष ध्यान देना होगा। सौभाग्यवश, पड़ोसी बख्त्रिया-क्षेत्र से प्राप्त एक दुर्लभ यूनानी अभिलेख मे नीति-दर्शन के गुरु क्लेअर्खोस् का नाम अकित हुआ , जो सम्भवत अशोक

---

(1) दे० F TOLA & C DRAGONETTI , " India and Greece from Alexander to Augustus " in U P ARORA ed Graeco-Indica India's Contacts with the Greek World, p 119-149 , J OZOLS & V THEWALT eds Aus dem Osten des Alexanderreiches Volker und Kulturen zwischen Orient und Occident, Köln,1984 (शोधकर्ता को उपलब्ध नही)

(2) उद० U P ARORA, "Form of state power in Mauryan India - Megasthenes' evidence " in S GUPTA & K RAMACHANDRAN Facets of Indian History, Culture and Archaeology, New Delhi,1991 ,pp 164-172 के० कर्त्तुनन् मेगस्थेनैस्-सबधी अन्य प्रकाशनो (जैसे पोलैड की आचार्या J SACHSE और इटली के आचार्य A ZAMBRINI के लेखो) पर ध्यान दिलाते है।

(3) दे० P GOUKOWSKY, Essai sur les Origines du Mythe d'Alexandre 2 vols, Nancy, 1978-81 (यह भी शोध के लिए उपलब्ध नही) (4) दे० C MUCKENSTURM-POULLE , op cit ,p 159 " In Greek, **ethnos** usually means a group,a body of people acting together, of the same nature or profession [Plato speaks of a ἔθνος δημιουργικόν , a class of artisans] As such, **ethnos** is a good equivalent for the notion of caste However, the word does not take into consideration the fact that one is Brahman because one is born the son of a Brahman, an idea better translated by the word Porphyrius [De Abstinentia, IV 17] used , **genos** " (5) वातावरणकी इस नवीनता पर विद्वानो ने कम ध्यान दिया; A TOYNBEE ने एक विशेष अध्याय लिखा था "The Eastern Religions' reception of Hellenism and dissemination in the Hellenic world "(Hellenism,ch 14)

(6) दे० M P NILSSON Greek Piety , Oxford,1948, p 90 " Both philosophers caused a deepening of religious ethics "

(7) " People in Hellenistic times lost the support and comfort which a living religious faith can give Two philosophical schools arose , Stoicism and Epicureanism Both made ethics their chief business" (ibid p 87) , "growing enthusiasm for ethical idealism" (F GRANT Hellenistic Religions The Age of Syncretism New York 1953)

के शासनकाल मे पश्चिमोत्तर भारत तक भ्रमण कर यूनानी तीर्थनगर दैल्फॉय् की सूक्तियो का प्रचार करने आया [1]। उन नीति-सूक्तियो का एक नमूना (यद्यपि कुछ समय बाद अभिलिखित हुईं) अय-खनूम के उत्खनन मे प्राप्त हुआ। शुद्ध यूनानी पद्य मे लिखा है

पय्स् ऑन् कॉस्मिऑस् गिनॉव् ~ किशोरावस्था मे सद्गुणी बनो ,
ऐबोन् ऍङ्क्रतैस् युवावस्था मे संयमी ,
मैसॉस् दिकयॉस् प्रौढावस्था मे सद्धर्मी ,
प्रस्बुतैस् ऍब्बॉव्लॉस् वृद्धावस्था मे सद्ज्ञानी ,
तेलॅव्तॉन् ऍलुपॉस् मृत्युकाल मे साहसी ।

[अय-खनूम के अन्य यूनानी अभिलेख के पुरालेखीय महत्व के विषय मे शोध के द्वितीय भाग मे देखे]

क्लेअरखॉस् का जन्म दक्षिण एशिया माइनर के किलिकिअ प्रदेश के शान्त सॉलॉय् नगर मे हुआ। उसने अरिस्तॉतेलैस् से दीक्षा ली और स्वतन्त्र, उदार विचारक बना। यद्यपि वह दैल्फॉय् के दिव्य वक्ता अप्पॉलोन् के प्रति अनुरक्त था, वह अध्यात्म की खोज करता रहा। इस्राएल की धर्मनिष्ठा मे उसकी बड़ी रुचि थी ; यहूदी समाज को वह " दार्शनिको का सघ " मानता था [2]। यहूदी इतिहासकार योसैपॉस् के अनुसार क्लेअरखॉस् ने इस असाधारण दृश्य का वर्णन किया कि " गुरु-आचार्य अरिस्तॉतेलैस् एक ऐसे यहूदी व्यक्ति से मिले थे, जो 'कॉय्लै सुरिअ' (इस्राएल-सहित सीरिया-प्रान्त) का निवासी था। वस्तुत यहूदी लोग ' ऍिन्दिअ' के 'गुम्नॉ-सॉफ़िस्तय् ' (निर्ग्रन्थ-ज्ञानियो) के वश के है। माना जाता है कि हिन्द-वासी दार्शनिक 'कलॅनॉय् ' (कॅलनॉस्-जैसे ज्ञानी ?) भी कहलाते है ; परन्तु जो प्रदेश 'यॉव्दय' मे रहते, उन्हे निवास-क्षेत्र के नाम से यहूदी कहते ।" [3] इस उल्लेख की उक्ति मे कोई तथ्य नही है , फिर भी इसमे समन्वयात्मक दृष्टिकोण झलकता है। मेगस्थेनैस् ने भी ब्राह्मणो और यहूदियो के विचारो मे समानता देखी है, जैसे मिस्री सिकन्दरिया नगर के मसीही धर्माचार्य क्लैमैस् ने उल्लेख किया " प्रकृति के विषय मे जो कुछ [यूनानी] ज्ञानवृद्धो ने कहा, वही यूनान देश के बाहर के दार्शनिको ने भी बताया था — अर्थात् एक ओर हिन्द के ब्राह्मणो ने, और दूसरी ओर सीरिया के यहूदी कहलानेवाले ज्ञानियो ने ।" [4]

---

(1) फ्रेच पिद्वानो (ऍल्०रोभैर् , पी० बैर्नार्) का पिचार है कि क्लेअरखॉस् सा०सं०पू० तीसरी सदी के आरम्भ मे नीति-पादी परिव्राजक के रूप मे, शायद मेगस्थेनैस् के साग, भारत तक आया (दे० R.AUDOUIN & P BERNARD op cit p 100 "Open-mindedness towards Oriental customs and beliefs impelled a Greek philosopher, Clearchus of Soli to undertake, in the early years of the third century B C , the long and arduous journey which was to take him to the banks of the Oxus, then, probably, to the banks of the Indus, in his quest for the wisdomof the Iranian Magi and of the Indian Brahmins ") , परन्तु प्रो०के० नारायण उनसे सहमत नही है (दे० *अवध किशोर नारायण,* " अफगानिस्तान के Ai-Khanum मे उत्खनित एक ग्रीक-बैक्ट्रिआई नगर उसकी प्रस्थापना और उसका काल-निर्धारण " ,The Indian Journal of Asian Studies 1,1989,pp 22-42) । उनका अनुमान है कि क्लेअरखॉस् भारत तक नही आया और लगभग सा०सा०पू० 250 मे बाक्त्रिया तक अपने दर्शन का प्रचार करने आया।

(2) दे० E BEVAN," Hellenistic Judaism"",The Legacy of Israel ,Oxford,1927,p 31 "a community of philosophers"

(3) JOSEPHUS Contra Apionem 1 179-181 accordingto CLEARCHUS De Somno , दे० M STERN Greek and Latin Authors on Jews and Judaism Jerusalem 1974 vol 1 pp 51-52

(4) CLEMENS OF ALEXANDRIA, Stromata,1 = MEGASTHENES, Indika-fragment योसैपॉस् के अनुसार सिकन्दर के यरूशलेम-आगमन (सा०सा०पू० 333) के बाद यूनानी सेना मे बहुत-से यहूदियो की भरती हुई (Contra Apionem 1 192)। सामान्य सवत् की प्रथम सदियो के यहूदी धर्मसाहित्य मे ब्राह्मणो को " दक्षिण देश के ज्ञानवृद्ध " कहा गया (Talmūd Tamīd 31b-32a) और एक यहूदी धर्मज्ञानी रब्बी (गुरु) को "भारतीय "का उपनाम दिया गया , " Judas the Indian " (Bābā Batrā 74a)

भारत की सीमा पर क्लेअरखोस् ने अपने "यूनानीपन" का घमण्ड छोड़ दिया और दूसरो के धर्मदर्शन एव सस्कृति का समादर किया। क्या उसने कन्दहार मे, अशोक के यूनानी शिलाखण्ड-अभिलेख से, यह सीख सीखी थी कि जितना अधिक हम दूसरे धर्मपथावलम्बियो को आदर देते है , उतना ही अधिक हम अपने स्व-धर्मपथ की गहराई मे उतरकर आगे बढते है ?

165 ~ (4) : **अशोकोत्तर विचारक " अपोल्लोनिओस् "**

क्लेअरखोस् के भ्रमण-रमण के तीन सदियो के बाद एक अन्य यूनानी खोजी, अपोल्लोनिओस् तुअनेउस् [1] , भारत के सीमान्त-क्षेत्र मे आया । वह पुथगोरस् की शिष्य-परम्परा का कठोर अनुगामी था। फ़िलोस्त्रतोस् ने चमत्कारिक तत्व को चढा-बढा कर उसका अद्भुत जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया। अपोल्लोनिओस् भारतीय आचार-विचार (यू० " त अिन्दोन् अेथे ") का निकट से अनुभव करने का इच्छुक था। सम्भवत वह सन् 45 सा०स० मे तक्षशिला तक पहुचा। उसने हुफ़सिस् (व्यास) नदी के पार उस स्थान का भी अवलोकन किया, जहा उस समय तक सिकन्दर-निर्मित वेदी खड़ी थी , जिसपर एक समर्पण-लेख अकित था । इससे थोड़ा आगे एक लौह-स्तम्भ भी यह साक्ष्य दे रहा था कि " सिकन्दर यही तक खड़ा था " (अलेक्सन्द्रोस् अेन्तौथ अेस्तै) , और हम जानते है कि यही से उसे अपना पूर्वी अभियान छोड़कर वापस चला जाना पड़ा। स्वीडन के विद्वान अलोचक जे० खर्पन्तीर् का विचार है कि अपोल्लोनिओस् ने भी अपना भारत-पर्यटन उसी स्थल से आगे नहीं बढाया। अपनी सीमित यात्रा के दौरान वह भारतीय ज्ञानियो से अवश्य मिला, लेकिन वैसे भव्य रूप से नही जैसे जीवनी के शेष विवरण मे बताया गया है [2]।

अपने सयमित त्यागमय जीवन मे अपोल्लोनिओस् शाकाहार का पालन इसलिए करता था कि किसी जीव-प्राणी का प्राणांतक न बने । यह उसके गुरु पुथगोरस् का सिद्धात था। विचारणीय है कि अशोक के यूनानी अभिलेखो मे जीव-प्राणी के लिए ठीक वही पारिभाषिक शब्द " अेम्-प्सुखोस् " मिलता है, जो अपोल्लोनिओस् की जीवनी मे प्रयुक्त हुआ। जब तपस्वी अपोल्लोनिओस् गगा के मैदान मे "ज्ञानियो के गढ" के निकट पहुचा, तब तिलक-धारी साधु ने उसका अभिनन्दन किया। ज्ञानियो के साथ विवाद का विषय "मेत्-अेम्-प्सुखोसिस् " (देहातर-प्राप्ति) ही था। लेकिन जे० खर्पन्तीर् उस सवाद को मनगढत बताते है [3]।

यूनानी प्रभाव-क्षेत्र के सबध मे इस सारभूत सर्वेक्षण के अन्त मे भाषा-प्रयोग के महत्व पर फिर जोर दे। जिस यूनानी भाषा मे अशोकीय सदेश अनूदित होकर पुन अभिव्यक्त हुआ, वह सामान्य "कोअिने"-यूनानी भाषा थी , जो हाल ही मे सिकन्दर द्वारा पोषित अपने आरम्भिक रूप मे फैलती जा रही थी। हमारे अध्ययन के लिए इस प्रकार की अनुवादात्मक यूनानी का एक विपुल भण्डार इस्राएलियो के धर्मसाहित्य के तथा-कथित

---

(1) अर्थात् एशिया माइनर के कप्पदोकिअ प्रदेश के तुअन नगर का ।

(2) J CHARPENTIER The Indian Travels of Apollonius of Tyana Upsala 1934, p 65 " This romance was simply written down in order to depict the more or less fabulous ' philosophers' of India as the wisest of men and to enhance the glory of Apollonius, to whom it had proved possible to fathom even the deepest of all human wisdom and sagacity"

(3) p 63 "That the discussion greatly turns round the topic of metempsychosis need not betray any knowledge of Indian philosophy as this idea was apparently an old one amongst the followers of Pythagoras" यूनानी जगत् मे पुनर्जन्म का सिद्धात सर्वमान्य होने लगा था । यह मत इश्राएल के विश्वास के अनुकूल नही था , फिर भी यूनानी दर्शन के प्रभाव से मिस्री सिकन्दरिया के एक यहूदी चिन्तक ने छद्मनाम सुलेमान के प्रज्ञा-ग्रन्थ मे मानो देह-धारण की शब्दावली का प्रयोग किया (उद० प्रज्ञा 8 20)।

"सप्तति बाइबिल-अनुवाद" मे उपलब्ध है । यह अनुवाद अशोक-काल मे ही आरम्भ हुआ और सा०स०पू० प्रथम सदी तक तैयार हुआ । अनुवाद की आवश्यकता इसलिए पड़ी , क्योकि यूनानवाद के विस्तार के कारण मिस्र के सिकन्दरिया नगर मे बसे हुए इस्राएली अपनी मातृभाषा (इब्रानी-अरामी) भूलते गए और अपनी प्रार्थना-सभाओ मे वे शास्त्र-पाठ को अपनी घरेलू बोलचाल की भाषा (कोंय्नै यूनानी) मे ही समझ सकते थे । मामूली अनुवाद से सतोष नही था , क्योकि धर्मशास्त्र की बात थी । दतकथा के अनुसार "सप्तति" , अर्थात् सत्तर [1] अनुवादक ही इस पवित्र कार्य मे जुट गए ।

अनुवाद-कार्य को सही ठहराने के लिए सिकन्दरियाई इस्राएलियो ने लगभग सा०स०पू० 120 मे एक कल्पित पत्र [2] की रचना की । इसमे भूतपूर्व राजा प्तोलेमैयोस्-द्वितीय (जिसका ऐतिहासिक शासनकाल 283 से 247 तक है) का "अरिस्तेअस् " नामक उच्चाधिकारी अपने भाई को लिखता है नील के नदी-मुख के फ़ारोस् द्वीप पर, जहा (अशोक के समकालीन !) राजा ने विश्व के सात आश्चर्यो मे गिना जाने-वाला 135 मीटर ऊचा प्रकाश-स्तम्भ खड़ा किया, वहा ऐसा चमत्कार हुआ कि अलग-अलग बैठे बहत्तर शास्त्रियो ने बहत्तर दिनो मे पवित्र तोरा (व्यवस्था-पचग्रथ) का बिलकुल एक-समान रूप मे अनुवाद किया। हमारे शोध-अध्ययन के लिए चमत्कार यह है कि इब्रानी-अरामी तनख् -बाइबिल के यूनानी सप्तति-अनुवाद से हमारे कोष मे ऐसी तुलनीय द्विभाषिक सामग्री सचित हुई , जो अशोक के द्विभाषीय अरामी-यूनानी अभिलेखो के शब्दार्थ ठहराने हेतु अति-उपयोगी सिद्ध हो सकती है ।

17 मौर्य प्रभाव-क्षेत्र का अभिज्ञान

IDENTIFICATION OF THE MAURYAN / INDIC SPHERE OF INFLUENCE

सम्राट अशोक के द्वि-भाषीय , **वास्तव में द्वि-लिपीय एवं बहु-भाषीय , अभिलेखों के अध्ययन में हम क्रम से** अरामी , ईरानी और यूनानी पृष्ठभूमि पर ध्यान दे चुके है । एक ही क्षेत्र मे हमने विभिन्न "प्रभाव" पहचान लिये । लेकिन उन बाह्य प्रभावो से अधिक प्रभावशाली तो है स्वय का अपना प्रभाव , क्योकि वह क्षेत्र मौर्य शासन के अन्तर्गत था और अशोक ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य मे जो सदेश अभिलिखित किया , उसे विदेशी भाषा मे अनूदित करने पर भी इस प्रदेश के लिए सहज आत्माभिव्यक्ति के रूप मे प्रस्तुत किया । भारतीय इतिहास के अध्येता मौर्यकाल से सुपरिचित है । अत अपनी इष्ट भूमि की इस दृष्ट भूमि का विस्तृत वर्णन करना यहा अनपेक्षित है । केवल उन बातो को स्मरण कराए जो सीमान्त क्षेत्र के अशोकीय अभिलेखो के निर्वचन, निरूपण के लिए सहायक हो ।

---

(1) लातीनी नामकरण के अनुरूप इसे अग्रेज़ी मे " सप्टुअजिण्ट् " (Septuagint) कहते है।   (2) Letter of Aristeas

171 पश्चिमोत्तर मौर्य क्षेत्र THE NORTH-WESTERN MAURYAN REGION

निर्विवाद है कि पश्चिमोत्तर भारत-उपमहाद्वीप एक सेतुमय सम्पर्क-क्षेत्र था। उत्तर-भारत मे मगधीय साम्राज्य की स्थापना से सगठित होकर उसके निवासी आत्ममान के साथ अन्तर्देशीय सवाद मे जागरूक सहभागी बने। जैसे रूसी विद्वान बोगार्द-लेविन ने कहा, "राजनीतिक सगठन आर्थिक सबधो के सुदृढीकरण और सस्कृतियो के मिलन मे सहायक था "[1]। सर्वांगीण उन्नयन के लिए ऐसा प्रेरणात्मक एकायन आवश्यक था, जो एकरूपता की ओखली मे भिन्नताओ को न कूट दे। सीमावर्ती क्षेत्रो मे अनुकूली द्विभाषिक अभिलेखन कराने से प्रियदर्शी अशोक दिखाते है कि उनका साम्राज्य अन्य सस्कृतियो एव भाषाओ के लिए खुला रहा।

ऐसा नही कि पश्चिमोत्तरी क्षेत्र पहले अलग कटा हुआ था। साख्यमुनि बुद्धदेव के समय मध्य-देश मे चौदह महाजनपद गिने जाते थे, परन्तु उत्तरापथ के दो महाजनपद गाधार तथा कम्बोज उनसे जुड़े हुए थे, जैसे सिर शरीर से अभिन्न है। बिबिसार ने मगध मे साम्राज्य की नीव डाली थी, परन्तु राजवैद्य जीवक ने तक्षशिला से अपनी विद्या सीखी थी और गाधार के नरेश पुक्कुसाति ने मित्रभाव से राजदूत भेजे। सम्राट अशोक के दिनो मे पश्चिमोत्तरी क्षेत्र एक ही प्रशासन के अधीन, एक ही राज्यक्षेत्र के अन्तर्गत, "राजविषय " था । मौर्य साम्राज्य

> " उत्तर मे हिमालय की तराई तक, उत्तर-पश्चिम मे हिन्दुकुश तक,
> पूर्व मे बंगाल की खाड़ी तक,
> पश्चिम मे काठियावाड़ और अरब की खाड़ी तक तथा
> दक्षिण मे वर्तमान करनाटक राज्य तक विस्तृत था । "[2]

अत जिस क्षेत्र मे द्विभाषीय अभिलेख प्रकाशित हुए, वह अराजकता का स्थान नही था। वह पूर्णतया मौर्य प्रभाव मे अभिनिविष्ट था। फिर भी प्रो० अरोड़ा ने उस व्यापक पश्चिमोत्तरी क्षेत्र मे भी एक "आन्तरिक क्षेत्र"[3]

---

(1) *ग० बोगार्द-लेविन & अ० विगासिन*, **भारत की छवि**, मास्को,1984, पृ० 58 । दे० F SCIALPI op cit p 58-58 "The country gradually came to play a great power role at the level of international relations The Mauryas thus found themselves at the head of a geographically extensive and politically centralized empire Their empire was highly differentiated in its ethnic and social components in rapid economic expansion and open to new cultural ethic and religious influences"

(2) *श्रीराम गोयल*, **प्रियदर्शी अशोक**, मेरठ, 1987,पृ० 43 ।

(3) U P ARORA, Greeks on India Skylax to Aristoteles, Bareilly, 1996," Ancient Indian Northwest ",p 161 " a core region "

को निश्चित किया वह कपिशा [1] तथा गाधार मे केन्द्रित है, और लघमान तथा स्वात की घाटी को भी इसमे सम्मिलित माने ; परन्तु व्यापारिक उत्तरापथ से अलग होने के कारण प्राचीन कश्मीर, कन्दहार और सिन्धु-सौवीर उस आन्तरिक क्षेत्र मे न गिने जाए।

पश्चिमोत्तर मौर्य क्षेत्र मे जब (प्रो० लमोत्त के शब्दो मे) " प्राचीन भारत का सब-से महान् राजनीतिक एव आध्यात्मिक व्यक्ति " [2] का प्रभाव पड़ा, तब वह कितना गुणकारी प्रभाव ही था ! यहा किसी हस्ती के प्रति अधभक्ति के कारण उस प्रभाव का भावुकतापूर्ण गुणन न किया जाए, इसलिए आवश्यक है कि उस यथार्थ ऐतिहासिक सोपान को स्थापित करे , जिसपर चढकर प्रियदर्शी अशोक इतनी प्रभावशाली ऊचाई पर पहुंचे ।

घटनाक्रम इस प्रकार है सिकन्दर के उत्तराधिकारियो के सग्राम के कारण यूनानी साम्राज्य के दूर-पूर्व क्षत्रप-क्षेत्रो मे भी स्थानीय शासको ने मनमानी की। जब सा०स०पू० 317 मे यूनानी सैनाधिकारी अव्दैमोस् ने पोरोस् की हत्या की , तो यह बदली हुई स्थिति स्वीकार न कर सकने का कायरतापूर्ण पलायन था। इतने मे चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला पर अधिकार प्राप्त कर चुका और चंद दिनो मे वह बालचन्द्र को पूर्णिमा की आभा देने मे सफल हुआ (था) , जब उसने अपने गुरु विष्णुगुप्त (चाणक्य) के परामर्श से पाटलिपुत्र मे नन्दवश को समाप्त कर राजदड हाथ मे लिया (था)। इस सफलता के लिए कई विद्वान, जिनमे शोधनिर्देशक पूज्य आचार्य जे०अस्० नेगी भी सम्मिलित है , पूर्वतर तिथि (early date) निर्धारित करते है [3]। लेकिन मौर्य साम्राज्य की

---

(1) अर्थात् बेग्राम नगर के आसपास, उत्तर-अफगनिस्तान का कफिरिस्तान, घोरबद और पजशीर घाटी ।

(2) E.LAMOTTE. History of Indian Buddhism from the Origins to the Śaka Era Louvain-la Neuve,1988 (Fr 1958) p 223 यह बेलजियम के विद्वान का उद्गार है । यहा किसी अभारतीय का उल्लेख करे, ताकि यह आरोप न लगाया जाए कि अशोक की महानता केवल एक मिथकीय अतिशयोक्तिपूर्ण दृष्टि का परिणाम है , जैसा अफ़० शिअल्पी रुखाई से कहते है "The great figure of Aśoka has been transfigured by Buddhist legend and idealized by modern Indian national independence struggle There is need to reduce the mythical aura surrounding Aśoka and to bring him back within the realms of historical reality " (F.SCIALPI, op cit ,p 58) . दे० ANANDA W P GURUGE." Emperor Aśoka's place in history a review of prevalent opinions ", Sri Lanka Journal of Buddhist Studies 1 1987 pp 139 - 170

(3) चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्याभिषेक के तिथि-निर्धारण के लिए रतिभानु सिह नाहर ने इस विशेष सदर्भ-ग्रथ का निर्देश दिया J S NEGI , Groundwork of Ancient Indian History,Allahabad,1958 श्रीराम गोयल के अनुसार (और उन्होने " मागध साम्राज्य का उदय " शीर्षक शोधप्रबध ही लिखा ।) चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक गौतम बुद्ध के परिनिर्वाण (सा०स०पू० 483) के 162 वर्ष बाद सा०स०पू० 321 मे हुआ (**प्रियदर्शी अशोक** ,पृ० 182-191) ।

शीघ्र स्थापना के पक्षधरो को द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखो से समर्थन नही मिल रहा है ; इसके विपरीत . जितना शीघ्र मध्यदेशीय शासन को सुव्यवस्थित माना जाए और उसके विस्तार-क्षेत्र को बढ़ाया जाए, उतना ही अधिक आश्चर्य की बात बन जाती है कि स्वदेशी शासन की अनुमानित कालावधि के बाद भी उत्तर-पश्चिमी सीमाक्षेत्र मे अभारतीय भाषा एव लिपि के माध्यम से अभिलेख क्यो प्रसारित करना पड़ा। फिर भी इतिहासकार सहमत है कि लगभग सा०स०पू० 303 मे राजा सेलेव्कोस्-प्रथम यूनानी साम्राज्य के खोए हुए पूर्वी हिस्सो पर पुन अधिकार प्राप्त करने के लिए तो आया, पर उस समय तक मौर्य शौर्य इतना बढ़ चुका था कि उसे चन्द्रगुप्त के सैन्यबल एव मनोबल के कारण ये चार क्षत्रप-क्षेत्र छोड़कर वापस जाना पड़ा अरेयनै (हेरात), अरखोसिअ (कन्दहार), परपमिसदय् (काबूल) और गद्रोसिअ (मक्रान) । पहले सर् जॉन् मार्शल् मानने के लिए तैयार नही थे कि इस भूदान मे चन्द्रगुप्त को इतनी विस्तृत भूमि प्राप्त हुई, परन्तु द्विभाषीय अभिलेखो की सप्राप्ति से क्षेत्र-अन्तरण की बात प्राय· निश्चित हो गई है। लेकिन द्विभाषीय लेखो के विशेषज्ञ बी०ॲन्० मुखर्जी अरेयनै-क्षेत्र को सम्मिलित नही करते।

उत्तराधिकार के रूप मे ये ही क्षेत्र सम्राट अशोक के अधिकार मे थे । उन्होने उत्तर-पश्चिम की ओर राज्य-विस्तार का अभियान नही चलाया। केवल आवश्यकतानुसार उन्हे किसी विद्रोही सीमान्ती सामन्त को नियन्त्रित करना पड़ा , उदाहरणार्थ, किन्ही काश्मीर कबीलो को फिर राजसत्ता मे मिलाना पड़ा[1] । लेकिन अशोक ने सीखा कि अशासित को शान्त कैसे करना चाहिए जिससे शान्ति का शासन बने।

172 सम्राट अशोक का राज्यशासन THE REIGN OF EMPEROR ASHOKA

अशोक के तिथिक्रम पर पुनर्विचार करने का विचार नही है, क्योकि आचार्य श्रीराम गोयल की प्रस्तुतिया[2] इस शोध की राजनीतक-सास्कृतिक पृष्ठभूमि हेतु (सधन्यवाद उधार लेने के लिए भी) उत्तम सामग्री है । अशोक के राज्याभिषेक-राज्यारोहन के काल-निघारण की समस्या बनी रहती है, जिससे द्विभाषीय अभिलेखो

(1) द्र० K.S SAXENA "Advent of the Mauryans in Kashmir" L Sternbach Felicitation Volume Lucknow 1979 part 2 p 891
"It is not clear whether Asoka inherited Kashmir as part of his ancestral possessions or that he conquered that region himself"
(2) विशेषकर सन् 1988मे प्रकाशित ग्रथ '' प्रियदर्शी-अशोक '' ।

का अभिलेखन-काल भी अनिश्चित रहता है। यदि लगभग सा०स०पू० 299 मे अशोक का जन्म हुआ, तो बीस-पच्चीस की उम्र मे उन्हे उज्जैन मे रहकर मध्यदेश की देखरेख करने का दायित्व सौपा गया। विदिशा नगर की ''देवी' से उनका विवाह हुआ। तब उन्हे विद्रोह थामने के लिए तक्षशिला मे रहना पड़ा। सा०स०पू० 269 / 268 मे राजा बिन्दुसार की मृत्यु हुई और युवराज न होते हुए भी तीस-वर्षीय चण्ड राजकुमार अशोक ने पाटलिपुत्र मे शासनाधिकार हथिया लिया। प्रतिद्वन्द्वियो से सघर्ष करते-करते राज्य के वह उच्चाकाक्षी अपनी मनमानी को मनवाने मे सफल हुए । इस प्रकार राज्यारोहन के चार वर्ष बाद सा०स०पू० 265 / 264 को अशोक का राज्याभिषेक-वर्ष माना गया । डा० डी०आर० भण्डारकर से लेकर अधिकाश विद्वान दक्षिणी बौद्ध अनुश्रुति ''महावस'' (5:22) के साक्ष्य के आधार पर राज्यारोहण तथा राज्याभिषेक का यह अन्तराल स्वीकार लेते है । फिर, ''दीपवस'' (6:21) के पूर्वस्रोत के अनुसार अशोक का अभिषेक बुद्धदेव के महापरिनिर्वाण के 218 वर्ष उपरान्त, अर्थात् सा०स०पू० 265 मे ही हुआ ।

कम-से-कम एक अन्य मत-धारणा को मुखरित होने दे प्रो० पी० ऍगर्मोन्त्[1] मानते है कि अशोक के राज्यारोहण एव राज्याभिषेक का एक ही वर्ष है । अपने तर्क मे वह एक ठोस सिद्धात लागू करते है अभिलेखों का प्रत्यक्ष साक्ष्य अधिक विश्वसनीय है ; अन्य विवरणो, वशावलियो, पौराणिक सूचियो के ''प्रमाण'' गौण है , विशेषकर जब उनमे परस्पर-विरोधी बाते प्रकटित होती है। उदाहरणार्थ, महावंस 5:43 के अनुसार अशोक के पुत्र निग्रोध का जन्म राज्यारोहण के वर्ष मे हुआ जब कि महावस 5:44 सकेत देता है कि अशोक सात-वर्षीय बालक निग्रोध द्वारा बौद्ध धर्म मे दीक्षित हुए। अत महावस के क्रमानुसार अशोक अपने अभिषेक के तीन वर्ष पश्चात् उपासक बने, जब कि अभिलिखित साक्ष्य के अनुसार यह राज्याभिषेक से गिनकर सात

---

(1) P EGGERMONT " The emperor Aśoka and the Tiṣyarakṣitā legend", Orientalia Lovaniensia Periodica 11 1980 p 168 " The anointment itself occurred in the same year as the accession to the throne, viz in 268 B C The very authors of the Dīpavaṃsa shifted the transfer of power to Aśoka to the year 214 p B m [post Buddham mortuum] sothat they inserted a period of four years' unanointed kingship " अपने शोध-विषय (The Chronology of the Reign of Aśoka, 1958) की प्रस्तुति के पच्चीस वर्ष बाद भी पी० ऍगर्मोन्त् अपने मत-विचार मे अडिग रहते है।

वर्षों के बाद की घटना है । इसलिए ऐंग़रमौन्त् राज्याभिषेक के समान राज्यारोहण को भी सात वर्ष पूर्व , अर्थात् सा०स०पू० 268, की घटना मानते है [1]। तदानुसार तेरहवे मुख्य शिलालेख मे वर्णित कलिग-सहार के कारण अशोक के महा-शोक का वर्ष, " अभिषेक के आठ वर्ष पश्चात् " , सा०स०पू० 261-260 माना गया , जब कि साधारणत उसे चार वर्ष आगे सा०स०पू० 257-256 ठहराया जाता है ।

तेरहवे मुख्य शिलालेख के उल्लेख से एक अन्य अनिश्चितता सामने आई " **अठ-वस-अभिसितस** " को शून्य (अभिषेक-वर्षारम्भ) से अथवा एक (प्रथम अभिषेक-वर्ष) से गिना जाए ? पश्चिम एशिया के प्राचीन इतिहास के अध्येता जानते है कि राज्य-वर्ष की गिनती अक्सर सभ्राति का कारण बन जाती है। राज्य-सूचियो मे कालक्रम-निर्धारण की समस्या है वर्षारम्भ गिनने की पद्धति एक-सी नही है , वर्षारम्भ और राज्यवर्ष का आरम्भ भिन्न हो सकता है , राज्यारोहण एव राज्याभिषेक अलग वर्ष मे घटित हो तो पिछला राज्यवर्ष कब अन्त माना जाए ? उत्तर-कालनिर्धारण (post-dating) मे नये शासक का प्रथम राज्यवर्ष उसके वास्तविक शासन के आरम्भ से नही वरन् शासन-आरम्भ के बाद आनेवाले सामान्य नववर्ष के आरम्भ से गिना जाता है, जब कि पूर्व-कालनिर्धारण (ante-dating) मे नया शासक अपना प्रथम राज्यवर्ष उस चालू वर्ष से गिनता है जो उसके शासन-आरम्भ से पहले सामान्य नववर्ष-दिवस से ही चालू होने लगा । उदाहरणार्थ, असीरियाई साम्राज्य की "लिम्मू" नामक सूची मे, नववर्ष-आरम्भ पर, प्रति नववर्ष को किसी उच्चाधिकारी का नाम दिया जाता था और उस नामधारी वर्ष मे घटित मुख्य घटनाओ का वर्णन भी किया जाता था ; लेकिन यदि किसी युवराज का अभिषेक हुआ तो उसका प्रथम राज्यवर्ष अगले नववर्ष से गिना जाता था। सयोग से, लिम्मू-सूची मे एक पूर्ण सूर्यग्रहण का उल्लेख हुआ। अन्य ज्ञात स्रोतो से मिलाने पर खगोल-विद्या उस सूर्यग्रहण का वर्ष सा०स०पू०15 जून 763 निश्चित कर सकी, जिससे अन्य सबधित घटनाओ का कालनिर्धारण भी संभव हुआ।

---

(1) फिर भी J De Casparis आदि राज्यारोहण को इससे और चार वर्ष पूर्व, सा०स०पू० 272 मे ठहराते है। G Bongard-Levin बुद्धिमानी से राज्यारोहण-राज्याभिषेक के लिए सा०स०पू० 268 के साथ विकल्प के रूप मे वर्ष 265 को भी स्वीकारते ।

यह उदाहरण इसलिए रुचिकर है . क्योकि अशोक के शासनकाल मे घटित सूर्यग्रहण के आधार पर तिथिक्रम को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया । "अशोकावदान" मे उल्लेख है कि बुद्धदेव के देह-अवशेषो को 84,000 स्तूपो मे एक ही समय स्थापित कर सकने के लिए स्थविर यशस् ने सूर्य को अपने हाथ से ढक लिया । पी० अेगर्मोन्त्[1] उस सूर्यग्रहण की ओर सकेत करते है. जो सा०स०पू० 4 मई 249 को उत्तर-भारत मे दिखाई दिया। इस प्रकार वह अशोक का राज्यवर्ष तय करते है. जो श्रीराम गोयल के क्रम मे 17वा राज्यवर्ष है जब पाटलिपुत्र मे बौद्ध समागम का आयोजन हुआ। दीपवस के अनुसार तीसरी बौद्ध सगीति महापरिनिर्वाण के 236 वर्ष बाद सम्पन्न हुई. जो महावस के अनुसार 17वे राज्यवर्ष मे घटी ।

अब समस्या ज्यो-की-त्यो रह गई है कया राज्यवर्ष को गत वर्ष (expired year) की सख्या से गिने अथवा वर्त्तमान वर्ष (current year) की सख्या से ? पाचवे स्तम्भाभिलेख के आरम्भ मे लिखा है "अभिषेक के छब्बीसवे वर्ष मे" और उसके अन्त मे "अब तक मैने पच्चीस बार लोगो को कारागार से मुक्त किया"। राधाकुमुद मुखर्जी की टिप्पणी है "इस प्रकार 26वा वर्ष चालू था न कि बीत चुका था. क्योकि तब तक कैदियो की 25 रिहाइया हुई थी। अत हम सामान्यतया यह मान सकते है कि लेखो मे उल्लिखित सभी वर्ष अशोक के शासन के चालू वर्ष थे।"[2] लेकिन रोमिला थापर का भावानुवाद विपरीत निष्कर्ष की ओर ले जाता है "मेरे अभिषेक से लेकर 26 वर्ष अभिषिक्त होने के वर्षगाठ तक". अर्थात् अभिषेक के 26वे वर्षगाठ के बाद ही स्तम्भलेख को लिखवाया गया। इस निष्कर्ष का समर्थन द्विभाषीय अभिलेखो से प्राप्त है [3] । शर-इ-कुन का यूनानी-अरामी अभिलेख स्पष्ट कर देता है कि गत वर्ष की सख्या से ही कालांकन

---

(1) P EGGERMONT " New notes on Aśoka" Persicai, 2 1965-66 pp 27-70 (2) *राधाकुमुद मुखर्जी* , **अशोक** , पृ० 155

(3) ROMILA THAPAR, Aśoka and the Decline of the Mauryas ,p 32 " This problem of whether the edicts were issued in current years or expired years has been clarified and finally settled by the discovery of the bilingual edict of Kandahar [=Shar-i-Kuna] It is clear from this edict that Aśoka dated all his edicts in expired years ", दे० B N MUKHERJEE "Historical data in the Aramaic and Greek Inscriptions of Aśoka", H RAYCHAUDHURI, Political History of Ancient India . New Delhi, 2000 (1996 edition with commentary) ,p 605 " Their evidence proves that the dates in Aśoka's inscriptions are in expired years after ten years having elapsed and so in the eleventh current year counted from the date of the coronation "

हुआ और हुआ करता है। श०यू०1 का यूनानी पाठ है "देक अेतोन् प्लैरैथेन्तोन्" (दस वर्ष पूर्ण किये जाने पर) और श०अ०1 का अरामी पाठ "शनीन् अस्रा पाथेय् व-आभेर्" (दस वर्ष समाप्त कर और व्यतीत कर); अत एक पूर्ण दशक के अनुभव के बाद ही अशोक सद्धर्म के लिए अधिक पराक्रम दिखाने लगे। क०यू०11 के यूनानी पाठ "ओग्दोओ अेतेय् बसिलेवोन्तोस्" (आठवे वर्ष को जब राज्य कर रहे थे) को भी उसी कालाकन के अनुसार समझे प्रियदर्शी के राज्य के आठ वर्ष पूर्ण हुए और अब नवा वर्ष चल रहा है[1]।

अशोक के शासनकाल को और निश्चित करने के लिए कालनिर्धारित (dated) सिक्के उपलब्ध नही है। मौर्य साम्राज्य मे प्राय चादी की आहत मुद्राए प्रचलित थी। उन्हे "पण" अथवा "कार्षापण" कहते थे; कर्ष यहा ईरानी प्रामाणिक माप है और साम्राज्यिक अरामी के प्रलेखो मे "क्र्श्" चादी के तौल के लिए बहु-प्रयुक्त शब्द है। ऐसे सिक्को पर प्रतीक-चिह्नो को आहत कर टकित किया जाता था। मुद्राशास्त्री उन विभिन्न चिह्नो का वर्गीकरण करते है। डा०परमेश्वरीलाल गुप्त[2] सिक्को की छठी श्रृखला मे एक विशेष वर्ग-लाछन का यह रूप पहचानते है अर्थात् अर्धचन्द्र-सहित त्रिचाप-आकार मेरु। उसे मौर्यकालीन लाछन माना जा सकता है और सम्भवत यह सम्राट अशोक का राजवशीय प्रतीक ही है[3]।

यदि "अशोक" (अशोकवर्द्धन) व्यक्ति-नाम माना जाए, तो "प्रियदर्शी" राज्याभिषेक का नाम हो सकता है। द्विभाषीय अभिलेखो मे उसका अनुवाद नही किया गया है यूनानी रूप "पिओदस्सैस्" है (दो बार) और अरामी व्यजन-लिपि मे "प्र्य्द्र्श्" लिखा है (पाच बार)[4]। "देवानाप्रिय" एक उपाधि है, जैसे गुजर्रा ल०शि० के आरम्भ मे अशोक-नाम के साथ ही मिलता है। अरामी पु०6 मे (एक बार) लिप्यन्तरित रूप

---

(1) फिर भी श्रीराम गोयल अभिलेखो की वर्ष-सख्याओ के सबध मे कहते है "ये सम्भवत प्रचलित वर्षो की है, व्यतीत वर्षो की नही। कलिग युद्ध लड़े जाने के समय उसे शासन करते हुए 7 वर्ष व्यतीत हो गए थे और 8वा वर्ष चल रहा था" (पृ०14)

(2) *परमेश्वरीलाल गुप्त*, **भारत के पूर्व-कालिक सिक्के**, वाराणसी, 1996, पृ० 67।

(3) दे० R AUDOUIN & P BERNARD, "The Aï Khanoum coins the 1970 Hoard (1)", in O GUILLAUM, ed, Graeco-Bactrian and Indian Coins from Afghanistan, 1991, p>30-31 "interpreted as the dynastic emblem of the Mauryan monarchy The attribution to the Mauryan period, and more specifically to the reigns of Ashoka and his successors is very plausible"

(4) बुधानी-पानगुरारिया ल०शि० के आरम्भ मे (=गुहा लेख) "पियदसि नामे राजा" ही पढे।

" [द्]व्‌न्‌ प्‌र्‌य्‌न्स्‌ " अकित हुआ । ध्यान दे कि अष्टम मु०शि० के कुछ सस्करणो मे "देवानाप्रिय " अन्य राजाओ के लिए — अर्थात्‌ न केवल अशोक के लिए — प्रयुक्त हुआ। लगता है कि यह उपाधि किसी को न केवल "देवताओ के प्रिय जन" के रूप मे अलकृत करती है , वरन्‌ उसे देव-तुल्य प्रजा के "जन-प्रिय" नेता की दायित्वयुक्त प्रस्थिति पर प्रतिष्ठित करती है । इसके अतिरिक्त अशोक के नाम के साथ स्थान-नाम "मागध" भी जुड़ गया, बशर्ते कलकत्ता-बैराट के आरम्भिक शब्दो का यह अनुवाद सही ठहरता है " मगध के प्रियदर्शी राजा ने सघ को अभिवादन कर "[1]।

सब-से प्रयुक्त उपाधि "राजा" शब्द ही है ; लेकिन जनसेवक अशोक अपने लिए औपचारिक उपाधियों "महा-राजा", "धर्म-राज" आदि का प्रयोग नही करते। फिर भी, अरामी अभिलेखो मे " मल्‌का " (राजा) के अतिरिक्त अभिदान "मारेना " (हमारे स्वामी) प्रयुक्त हुआ। यह अभिदान साधारण-से व्यक्ति का सबोधन हो सकता है , अथवा अधिकारी , राजा या सर्वोच्च प्रभु का। अरामी अनुवादक इसे यहा आदर-भाव से अपने स्वामी-जी राजा-श्री के लिए प्रयोग मे लाया है[2] ।

अरामी पाठ मे एक और विशेषता है यद्यपि प्राकृत प्रारूप मे "अभिसितस", राज्यवर्ष की सख्या के साथ प्रयुक्त होने के कारण (उद० द्वादश-वर्ष-अभिषिक्त), स्वतन्त्र उपाधि का अर्थ नही रखता, तोभी अरामी पु० 6 मे लिप्यन्तरित रूप मे " [दे]वन प्रियस अभिसितस " अकित किया गया, अर्थात्‌ देवानाप्रिय,जो एक "अभिषिक्त जन" है। शिलाफलक की खण्डित अवस्था के कारण अरामी अनुवाद "मशीखा " यहा केवल पुनर्स्थापित पाठ माना जा सकता। अन्यथा यहा इस्राएली राजाओ की विषिष्ट उपाधि "मसीह" प्राप्त हो जाती (उद० इब्रानी-अरामी तनख्‌ मे भजन-संहिता 2·2 , जिसका यूनानी सप्तति अनुवाद "ख्रिस्तॉस्‌"है)।

अन्त मे, आचार्य-जी प्रो० जे०अॅस्‌० नेगी ने प्रथम लघु शिलाभिलेख (उद० ब्रह्मगिरि सस्करण, 1) मे

---

(1) किन्तु राजबली पाण्डेय "मागधा" को राजा का विशेषण न मानकर अनुवाद करते है " प्रियदर्शी राजा ने मागधा संघ को अभिवादन कर " । (2) दे०B N MUKHERJEE,op cit ,p 606 "it was composed by a subordinate official of Aśoka"

प्रयुक्त शब्द "अयपुतस ". अर्थात् आर्यपुत्र. को भी एक राजकीय उपाधि मान लिया है[1]। परन्तु अधिकाश विद्वान उसका प्रयोग यहा किसी राज्यपाल अथवा राजकुमार तक सीमित रखते है ।

अब अशोक के एकभाषीय प्राकृत अभिलेखो मे अभिव्यक्त विषय-सामग्री पर प्रकाश डाले । इस शोध के चतुर्थ खण्ड मे उसी की प्रकाशना मे द्विभाषीय अभिलेखो की अभिव्यक्ति का विश्लेषण करेगे । यथासम्भव अभिलेखो के अभिलेखन-काल के क्रम का ध्यान रखना होगा ।

173 अभिलेखन-क्रम से अभिलेख-सार EDICTS SUMMARISED IN ORDER OF INSCRIPTION

नवाभिषिक्त राजा अशोक "प्रियदर्शी" ने अपने प्रथम राज्यवर्ष (सा०स०पू० 265-264) से अपने मौर्यवशी पूर्व-राजाओ के समान ही सुराज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। भारतीय परम्परा मे राजा धर्मपालक का रूप धारण करता है [2]। फिर भी कुछ इतिहासकार मौर्य शासको पर आरोप लगाते है कि वे धर्म के नाम से अपने राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति करते थे ब्राह्मणो को प्रधान मानते हुए भी चन्द्रगुप्त ने जैन तपस्वियो को सहारा दिया. बिदुसार ने त्यागी आजीविको का साथ दिया और अशोक ने बौद्ध भिक्षुओ का पक्ष लिया; उन राजाओ का धर्मावलबन सिर्फ स्वार्थ-साधन है. परार्थ-साधना नही [3]। और उस धर्ममूलक शासन-पद्धति का उत्प्रेरक कौटिल्य को बताया गया. जिसने अपने अर्थशास्त्र मे धर्म को कूटनीति का आवश्यक अग बनाया है[4]।

मान ले कि आरम्भ से ही अशोक ने नैतिकता-रहित "धर्म" की नीति चलायी और कि उन पर बौद्ध धर्मपथ का

---

(1) J S NEGI, Some Indological Studies ,vol I,1966,p 121 " Aśoka referred to kings not only as **rājan** but also as **devānampriya** If two words were thus current for the monarch there can be no inherent improbability in supposing that there was a third one also"

(2) बिम्बसार ने भी उदार धर्मनीति अपनायी थी, जैसे डा० *अर्पिता सिन्हा* (**बिंबसार और उसकी कूटनीति** , इलाहाबाद, 1988 पृ० 241) लिखती है " प्रारम्भ मे उसने ब्राह्मण धर्म को सरक्षण दिया। ब्राह्मण होते हुए भी उसने बौद्ध और जैन धर्म का इतना सम्मान किया कि ये उसे अपना धर्मानुयायी समझने लगे "।

(3) दे०J DE CASPARIS op cit p 779 "The present tendency among scholars is to regard Aśoka as above all a practical statesman who propagated his **dhamma** to supply a common ideology to the numerous peoples tribes and other groups in his empire". F SCIALPI op cit. p 58 " [The Mauryans] seek some means of increasing social cohesion and support for their policies"

(4) "a crafty piece of state policy like religion"(A WARDER Indian Buddhism Delhi 1991(1971) p 246) लेकिन *भगवानदास केला* (**कौटल्य की शासनपद्धति**, प्रयाग, शक स०1883) उस नकारात्मक दृष्टि का विरोध करते है ।

केवल बाह्य प्रभाव पड़ा [1]। जब अभिषेक से आठ राज्यवर्ष पूर्ण हुए, तब सत्यधर्माचरण के नैतिक मूल्यो की अवहेलना कर अशोक कलिगो पर क्रूर आक्रमण करने से न रुके। परन्तु अ-शोक कहलानेवाले को विजित लोगो पर "अनुसोचन" (अनुताप) हुआ और उन्होने सच्ची धर्म-विजय की नीति अपनाने का सकल्प किया। सा०स०पू० 254-253 मे,अपने 12वे चालू राज्यवर्ष मे, धर्माशोक ने धर्म-लेख लिखवाना शुरू किया :

(1) प्रथम लघु शिलालेख

इस लेख मे राजा ने हृदय खोलकर बताया कि ढाई वर्ष पहले, अर्थात् 9वे राज्यवर्ष मे कलिग-युद्ध के पश्चात्, वह बौद्ध उपासक बने [2] ; परन्तु ढाई वर्ष की इस अवधि के आरम्भिक एक वर्ष तक वह (अपने विचार से !) धर्मकार्य मे कम पराक्रम दिखा रहे थे। तब 10वे चालू राज्यवर्ष के दौरान, वरन् उसके अन्त की ओर, किसी शुभ दिन से,वह बाकी डेढ वर्ष तक तीव्र पराक्रम दिखाने लगे। इसलिए शर-इ-कुन के द्विभाषीय अभिलेख का यह कथन कि "दस वर्ष पूर्ण हो जाने पर", अर्थात् 11वे चालू राज्यवर्ष मे , मैने धर्मोत्साह दिखाया मोटे तौर से उपर्युक्त क्रम के अनुरूप है। अशोक अब बौद्ध सग के सान्निध्य मे आए , उन्होने स्तूप बनवाया और धर्मतीर्थ की यात्रा की। यह प्रथम लघु शिलालेख उस समय प्रसारित हुआ , " जब मेरे प्रवास की 256 रात्रिया व्यतीत हो चुकी थी " और , अहरौरा-सस्करण के अनुसार [3],यात्रा पड़ाव के वे रात-दिन "बुद्ध के देहावशेष मच (स्तूप) मे आरूढ करने के बाद "से गिने गए।

(2) द्वितीय लघु शिलालेख

लघु शिलालेखो के कुछ सस्करणो की अतिरिक्त पक्तियो को द्वितीय लघु शिलालेख कहते है। उसके दो रूप है पहला रूप सक्षिप्त है (ब्रह्मगिरि, सिद्धपुर एव जटिग-रामेश्वर सस्करणो मे — जो खरोष्ठी लिपिकार द्वारा उत्कीर्ण हुए !) ; दूसरे रूप मे और अधिक पक्तिया है (राजुल-मण्डगिरि, एर्रगुडी, नित्तूर एव उड्ेगोलम सस्करणो मे) । यहा आचार-सहिता का ऐसा धर्माचरण-सार प्रस्तुत किया गया है, जो द्विभाषीय अभिलेखो के विश्लेषण हेतु महत्वपूर्ण है

माता-पितूसु सुसुसितवियं	माता-पिता की सुश्रूषा करनी चाहिए
हेमेव गुरुसु सुसुसितवियं	उसी प्रकार गुरुओ की सुश्रूषा करनी चाहिए
प्रानेसु/जनेसु दयितवियं	प्राणियो/लोगो पर दया करनी चाहिए
सचे वतवियं	सत्य बोलना चाहिए

---

(1) अथवा क्या यह जैन सिद्धात की ओर झुके ?दे०शीर्षक E THOMAS Jainism or the Early Faith of Ashoka London 1877

(2) मास्की सस्करण मे "बुधा-शके" — दे० N P RASTOGI "The writer originally wanted to write **upāsake** . and on giving second thought to it he changed **upā** to **budha** and added **śake** which is noticed in Rupnāth version" -- अर्थात् बुद्ध-शाक्य या बुद्ध-श्रावक, बुद्ध का गृहस्थ अनुयायी अथवा भिक्षु-गतिक, उपासक और भिक्षु के बीच की व्यवस्था ?

(3) 11वी पक्ति मे " **अं मं च** " पढने से (N P RASTOGI) और अन्तिम अस्पष्ट **चं** को "अको मे लिखित 256 सख्या का अवशिष्ट भाग" समझकर (J S NEGI) — दे० *वासुदेव विष्णु मिराशी*, "अशोक का अहरौरा शिलालेख", **प्राच्यविद्या-निबन्धावली** , 4, भोपाल, 1974 (1966) ,पृ०113-119 और *श्रीराम गोयल* , **प्रियदर्शी-अशोक** , पृ०59-60 ।

उस आचार-चतुष्टय के सबध मे यह राजाज्ञा है ·

इम धंम-गुना पवतितविया इन्ही धर्मगुणो का प्रवर्तन-आचरण करना चाहिए ।

ये व्यावहारिक सिद्धात है, जो बौद्ध गृहस्थो और सामान्य जन के द्वारा ही अनुपालनीय है [1]। अशोकीय अभिलेखो मे " **धमं** " शब्द का यह पहला प्रयोग है। कुल मिलाकर यह लगभग 125 बार प्रयुक्त हुआ। प्र० लघु शिला० के गुजर्रा सस्करण की अपनी विशेषता है कि उसमे "धम" 4 बार "चर-" के साथ धर्माचरण के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ और मास्की सस्करण मे "धम-युत" (धर्मयुक्त) शब्द "पराक्रमी धर्मचारी" का समानान्तर शब्द है । राजा की प्रबल इच्छा है कि "क्षुद्र और उदार", सभी लोग धर्माचरण करे और इसलिए सीमान्त-वासी भी धर्म-सदेश का श्रवण करे । द्वि० लघु शिला० के जटिग-रामेश्वर सस्करण के अन्त मे, यह बताते हुए कि अन्तेवासी विद्यार्थी को अपने आचार्य का आदर करना चाहिए, यह दुहराया जाता है कि "**धमं** के सबध मे यही देवानाप्रिय की आज्ञा है"। अत लघु शिलालेखो मे 11 बार "धर्म" का आचरण के प्रसग मे प्रयोग हुआ , किसी "धर्मपथ" के अर्थ मे नही!

(3) बुधनी-पानगुरारिया गुहा-लेख

प्र० लघु शिला० के बुधनी-पानगुरारिया सस्करण मे एक अलग प्राक्कथन , जो गुहा-लेख की श्रेणी मे आता है। यात्रा के दौरान राजा किसी उपुनिथ नामक "विहार" मे पहुचा , और उन्हे भिक्षु-भिक्षुणी के हित की चिन्ता थी । अत वह उस क्षेत्र के कुमार/ राज्यपाल "सव" को सबोधित करते हैं[2]। प्राकृत अभिलेखो मे वह एकमात्र पाठ है, जिसमे किसी राज्यपाल का नाम दिया गया है । फिर भी लघमान के दोनो अरामी अभिलेखो मे न्यायाधिकारी / राज्यपाल (?) "वाशु" अथवा अन्य नाम "खशाव्" का उल्लेख है।

ध्यान देने योग्य है कि प्र० लघु शिला० के उसी बुधनी-पानगुरारिया सस्करण के अन्त मे यह वाक्य जोड़ा गया (रूपनाथ एव सहसराम सस्करणो के समान) :" जहा भी (अनुकूल) चट्टानी-पर्वत और शिला-स्तम्भ हो ,वहा इस विषय को लिखा जाए "। इसी प्रकार का वाक्य हम पुल-इ-दरुन्त के अरामी अभिलेख मे पाऐगे।

(4) भाब्रु / कलकत्ता-बैराट शिलाफलक लेख

राजस्थान से प्राप्त इस शिलाफलक-लेख का अभिलेखन-काल अज्ञात है, लेकिन इसे प्राय लघु शिलालेखो के साथ (कभी तृतीय लघु शिल० के रूप में) प्रस्तुत किया जाता है। राजा प्रियदर्शी सघ के भिक्षुगण को आश्वासन देते है त्रि-शरणम् मन्त्र के अनुसार वह बुद्ध-धर्म-सघ के प्रति श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते है ; वह चाहते है कि **सधमं** (सद्धर्म) चिरस्थायी हो। इसलिए भिक्षु-भिक्षुणी एव उपासक-उपासिका मुख्य बुद्ध-वचन सुनते रहें और पालन करते रहे। अशोक ने बुद्ध-वचनो के सात ऐसे अश चुने, " जिनमे सदाचार के उस रूप की प्रतिष्ठा की गयी है जिसका आचरण सभी स्त्री-पुरुष कर सकते है। जिन सात धम्म-परियायो या धम्म-पलियायो को अशोक ने गिनाया है, वे प्राय. उन्ही नामों मे वर्तमान पालि-तिपिटक मे भी विद्यमान है ।"[3] हमारे अध्ययन के लिए उन्हे पहचानना महत्वपूर्ण है, क्योकि अशोक की विचारधारा और शब्दावली के ये मुख्य स्रोत है। आदि बौद्ध परम्परा के प्रकाश मे ही हम अशोक द्वारा प्रवर्तित लोकधर्म समझ सकते है।

---

(1) "The four main moral principles similar to the Buddha's teaching to the laity" (A WARDER,op cit p 248) , " Morality is the essence of Buddha-Dhamma" (D C AHIR op cit p 73) (2) दे०D C SIRCAR Aśokan Studies Calcutta 1979 p 97 " The reading of the line is not **rājā-kumārasa** further precludes the possibility of the reading **mahārājā-kumārasa** "(अत श्रीराम गोयल की व्याख्या स्वीकार्य नही है कि इस गुहा शरण-स्थल मे अशोक महाराजकुमार के रूप मे भिक्षुओ से मिलने आये थे - प्रियदर्शी-अशोक, पृ०9 और 63) (3) *भरतसिह उपाध्याय* , **पालि साहित्य का इतिहास** , प्रयाग, 1194, पृ० 768 .

सद्धर्म के सप्तपाठ को इस प्रकार निर्धारित कर सकते है [1]

1. **विनय-समुकसे**

इस अश का अर्थ है " समुत्कृष्ट अनुशासन " । सम्भवत भगवान बुद्ध के धर्मोपदेश का वह सार-भाग , जो सारनाथ मे सुनाया गया वर्तमान पालि तिपिटक के सम्युत्त-निकाय के धम्मचक्क-पवत्तन-सुत्त मे । समुचित है कि अशोक ने अपनी सूची मे धर्मचक्र-प्रवर्तन सूत्र को प्रथम स्थान दिया, क्योकि ऋषिपत्तन मे तथागत ने पाच शिष्यो को आर्य अष्टागिक मार्ग का महाप्रवचन सुनाया दृष्टि-विचार, सकल्प,वाणी, कर्म, आजीविका, व्यायाम-प्रयत्न, चित्तवृत्ति-स्मृति और समाधि-एकाग्रता मे "मध्यम मार्ग" पर चले ; क्योकि दु ख की यथार्थता देखने और दु ख का कारण समझने और दु ख का निरोध करने का यही उपाय है।

2. **अलिय-यसानि**

"आर्य वास" आदर्श जीवन है, जिसके लिए दीघ-निकाय के सगीति-परियाय-सुत्त और दसुत्तर-सुत्त मे दस निर्देश है [2] दुर्भाव का त्याग, सद्गुण का अभ्यास, आत्म-नियन्त्रण, सतर्कता, सक्रियता, मत-सिद्धात के भ्रम मे न पड़ना, निष्काम रहना, शुद्ध-शुभ विचार रखना, ध्यानशील-शान्तिमय जीवन और अन्त दृष्टि मे सुविमुक्ति। इस प्रकार के आर्य वास-सवास से एक आदर्श जन-समाज बन सकता है ।

3. **अनागत-भयानि**

सघ को विचलित करनेवाले "अनागत भय" ये पाच प्रलोभन है, जो अगुत्तर-निकाय के पचक-निपात मे मिलते है अनुशासनहीनता, आदर्शहीन दलबन्दी, महत्वहीन वाद-विवाद, तथागत की सत्यशिक्षा की अवहेलना कर सासारिक रचनाओ मे रुचि और स्थविरो मे विलासिता ।

4. **मुनि-गाथा**

यह "मुनि-सबधी उद्बोधन" है, जो सुत्तनिपात के उरग-वग्ग के मुनि-सुत्त मे मिलता है। गृहस्थ की तुलना मे मुनि की बन्धन-मुक्त अवस्था की यह पहचान है एकान्त, अनासक्ति, प्रज्ञान, सर्वत्याग, अप्रमाद, शील-व्रतधारण, सयम, एकाग्रता और परमार्थ-दृष्टि ।

5. **मोनेय-सूते**

"मौन-सबधी सूत्र" अगुत्तर-निकाय के तिकनिपात मे मिलते है [3]। मौन-चर्या तीन प्रकार की है

---

(1) दे० V BHATTACHARYA, The Buddhist Texts as Recommended by Aśoka Calcutta,1948 , A.WARDEN, Indian Buddhism , pp 255-257 , D C.AHIR, Asoka the Great ,ch 7 "The Seven Dhamma Texts" , K LUKE, "Buddhavacanam" Biblebhashyam,11, 1985 pp 75-92, *भरतसिह उपाध्याय* , तत्रैव , पृ० 767-774

(2) अन्य सुझाव है अगुत्तर-निकाय के चतुक्क-निपात का महा-अरियवस-सुत्त । आर्य-वश के चार आर्य गुण है वस्त्र मे सतोष, आहार मे सतोष, निवास मे सतोष और ध्यान-साधना मे लगन।

(3) अन्य सम्भावना है सुत्तनिपात के महावग्ग का नालक-सुत्त, विशेषकर "मौनेय" (ज्ञानयोग) के विषय मे अन्तिम आठ वचन ।

देह का मौनी प्राणहिंसा,चोरी और व्यभिचार से दूर रहता ; वाणी का मौनी झूठ,परनिन्दा और वाग्दोष से बचता तथा मन का मौनी वासना, अविद्या और बन्धन-आश्रव से मुक्त होता है ।

6. उपतिस-पसिने

ये "उपतिष्य" नामधारी शिष्य सारिपुत्र के "प्रश्न" है, जिनका उत्तर सुत्तनिपात के अट्ठक-वग्ग के सारिपुत्त-सुत्त मे मिलता है। यह उत्तम भिक्षु-चर्या के विषय मे अत्यन्त व्यावहारिक शिक्षा है, विशेषकर उसके अन्तिम वचन " धीर-वीर भिक्षु सभी बाधाओ का सामना करे, साप के डसने से न डरे, अपने विरोधियो एव विधर्मियो-अन्यधर्मियो (**परधम्मिकानं**) से भयभीत न हो , वह रोग-पीड़ा, भूख-वेदना,शीत और गर्मी को सह ले , वह चोरी न करे, असत्य न बोले, दुर्बलो एव सबलो के प्रति मैत्री (**मेत्ताय**) करे , क्रोध एव अभिमान के वश मे न आए ; क्या खाऊ ? कहा सोऊ ? इसकी चिन्ता न करे , वह संयम से गाव मे विचरे; नीचे की हुई आखे हो ; वह ध्यान मे लीन रहे ; आचार्य के द्वारा दोष दिखाये जाने पर इसे स्वीकार करे और गुरु-भाइयो के प्रति हठधर्मी न बने ; वह रूप-स्वर-रस-गध-स्पर्श के राग पर विजय पा ले । ऐसा विमुक्तचित्त भिक्षु सब समय धर्म का अनुशीलन कर अन्धकार का नाश करे।"

7. लाघुलो-वादे मुसा-वादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते

अपने पुत्र "राहुल को सबोधित करते हुए भगवान बुद्ध द्वारा मृषावाद (झूठ) के सबध मे जो कहा गया", यह उपदेश मज्झिम-निकाय के भिक्खु-वग्ग के अम्बट्टिका-राहुलोवाद-सुत्त मे मिलता है। मृषावाद से श्रमण का सारा पुण्य मिट जाता है। जानबूझकर कभी असत्य नही बोलना चाहिए, वरन् नित्य कायिक वाचिक एव मानसिक शुभ-सत्यकर्म मे लगे रहना चाहिए। सभी धर्मानुयायी सतत सुधार करते रहे ।

अशोक की आशा थी कि सप्तपाठ के पठन-पाठन से सामान्य जनता भी सद्धर्म-पालन की ओर खिंच जाएगी । साथ-ही-साथ भिक्षु, मुनि और श्रमण-ब्राह्मण सत्यार्थ धर्माचरण का नमूना प्रस्तुत करेगे । लगता है कि शर-इ-कुन का यूनानी-अरामी अभिलेख भी अशोक के आरम्भिक धर्मोत्साह के इन दिनो मे (मानो चतुर्थ "लघु शिलालेख" के रूप मे) उत्कीर्ण हुआ , जब वह लोकधर्म का प्रसार-प्रचार करने लगे । सप्तपाठ के अतिरिक्त अन्य बुद्ध-वचन है, जिन मे गृहस्थ के लिए लोकधर्म के सिद्धातो का प्रतिपादन - प्रतिभासन हुआ, उद० दीघ-निकाय के पाटिक-वग्ग के **सिगालोवाद-सुत्त** मे [1] । इसकी एक विशेषता है कि दास-सेवको एव वेतन-भोगियो को भी देवोभव की भावना से पूजने की बात कही गई है (जैसे नवम मुख्य शिला० मे और क०यू० मे) : आर्य श्रावक (गृहस्थ) को छह दिशाओ की ओर पूजा करनी चाहिए , अर्थात् मानो पूर्व मे माता-पिता हो , दक्षिण मे गुरु-आचार्य , पश्चिम मे पति-पत्नी , उत्तर मे मित्र-संबधी , आधार-रूप मे सेवक-कर्मकर और छादन-रूप मे श्रमण-ब्राह्मण ! सम्राट अशोक अपने आपको उन सभी दिशाओ का प्रथम पुजारी समझते है। सिगालोवाद-सुत्त के अनुसार वह अपनी प्रजा को चार कर्म-क्लेशो (हिंसा, चोरी, व्यभिचार,असत्य-भाषण) ,चार दुर्भावनाओ (स्वार्थ,द्वेष,भय,मोह) और छह नाश-द्वारो (मद्य-पान, निशा-भ्रमण, रगरली, जुआ, कुसगति, आलस्य) से बचने की शिक्षा देते है। डा० भरतसिह उपाध्याय लिखते है " सिगालोवाद-सुत्त तो पूरे अर्थो मे ' गिहि-विनय ' (गृह-विनय) कहा ही गया है अशोक ने इस सुत्त की भावना को अपने अभिलेखो मे बार-बार ग्रहण किया है अशोक ने जिस धर्म को सिखाया है, उसमे सामान्य लोकधर्म की बाते ही है। बुद्ध ने यही धर्म साधारण जनता को सिखाया था ।" [2]

---

(1) दे० *राहुल साकृत्यायन* ,"गृहस्थ के कर्त्तव्य" ,**बुद्धवाणी** , (वियोगी हरि, सग्रहकर्त्ता) ,नई दिल्ली, 1988, पृ० 69-75
(2) *भरतसिह उपाध्याय*, **तत्रैव**, पृ० 772 ।

सुत्तनिपात के चूळ-वग्ग के महामगल-सुत्त मे . लोक-कल्याण के 34 शुभकर्मो की सूची के अन्त मे . बुद्धदेव ने कहा " जिसका चित्त **लोकधम्म** से विचलित नही होता. वह **असोक** (नि शोक) . निर्मल तथा निर्भय रहता है – यह उत्तम मगल है;इस प्रकार के कार्य कर. सर्वत्र अपराजित होकर. लोग सुख-शाति (**सोत्थिं**) को प्राप्त करते है ।" बुद्ध-वाणी से प्रेरित. धर्मविजय के कारण नि शोक,अशोक ने शर-इ-कुन के द्विभाषीय अभिलेख के अन्त मे अकित करवाया "ऐसी बातो का पालन कर लोग अधिक कल्याणपूर्ण एव गुणी जीवन व्यतीत करेगे" (यूनानी पाठ) और ऐसे लोकधर्म का पालन करना "सभी मनुष्यो के लिए हित-कारी है" (अरामी पाठ) । [महामगल-सुत्त के विषय मे नवम मुख्य अभिलेख-सार मे भी देखे]

भाब्रु / कलकत्ता-बैराट शिलाफलक लेख के बुद्धवचन-उल्लेखो मे हम उल्लेख करने की विशेष पद्धति देख सकते है. जो अशोक के अरामी अभिलेखो मे भी अपनायी गई है । बुद्धवचनो मे से एक प्रभावशाली अथवा प्ररूपी (typical) वाक्याश चुनकर विशिष्ट सुत्त-सग्रह की ओर सकेत किया गया है । उसी प्रकार अशोक के प्राकृत राज्याभिलेखो मे से एक अशोक-वाणी चुनकर उसका (अरामी लिपि मे लिप्यन्तरित रूप मे) मूल उल्लेख किया गया है. ताकि सबधित राज्याभिलेख की ओर सकेत किया जाए। तब उसके स्पष्टीकरण हेतु अभिव्यजक शब्द "•स्ह्य्त्य्" (ऐसा कहा है) जोड़ा गया है और यथास्थान इसका अरामी अनुवाद भी किया गया है ।

"बुद्धवचन का उल्लेख" आधुनिक अर्थ मे नही समझना चाहिए। प्राचीन धर्मसाहित्य मे मूल वचन का आदि रूप,अनभिलिखित होने के कारण,अप्राप्य ही है। लेकिन प्रस्तुत शिलाफलक लेख के उल्लेखो से प्रमाणित है कि अशोक के राज्यकाल मे बुद्ध-प्रवचनों के कुछ ठोस सकलन बन चुके थे [1]। इस सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता है कि. अपने अनुमानित मूल रूप मे. शाक्यमुनि की वाणी कभी अशोकीय अभिलेखो मे ही अधिक प्रतिध्वनित हुई. न कि शास्त्रीय पालि की ग्रन्थावली मे । उदाहरणार्थ. "पचशील" की प्रसिद्ध सूत्रोक्ति, जिसके द्वारा उपासक हत्या. चोरी. व्यभिचार. झूठ और मद्यपान के पाच प्रतिषेदक धर्मादेश मानता है. खुद्दक-निकाय के खुद्दक पाठ मे उल्लिखित दस शिक्षापदो के प्रथम पाच व्रतो पर आधारित है। उनकी क्रमबद्ध , सूत्रवत् अभिव्यक्ति शायद शिष्य-परम्परा मे विकसित होकर प्रामाणिक रूप धारण करने का परिणाम है [2] ।

(5 - 8) प्रथम चार मुख्य शिलालेख

द्वादश-वर्षाभिषिक्त होने पर. अर्थात् 13वे चालू राज्य-वर्ष (सा०स०पू० 253-252) मे. अशोक ने सर्वहित के लिए **धर्मलिपि** के अनेक लेख लिखवाये [3] । वे प्रथम चार मुख्य शिलालेखो की श्रृखला मे सुरक्षित है
1. **प्रथम मुख्य शिला०** की राजाज्ञा है कि यज्ञ. खेल-उत्सव और भव्य भोज के अवसरो पर जीव-प्राणियो का वध न किया जाए ।

---

(1) *भरतसिंह उपाध्याय* मानते है कि "सुत्त-पिटक और विनय-पिटक के अनेक महत्वपूर्ण अश सर्वाश मे प्रामाणिक है और उनके बुद्ध-वचन होने मे कोई सदेह नही हो सकता "(**तत्रैव**, पृ० 144) , *राहुल साकृत्यायन* (**पालि साहित्य का इतिहास**,लखनऊ, 1963) क्रमबद्ध विकास स्वीकारते है । (2) दे० HAJIME NAKAMURA, " Aspects of original Buddhism ", L Sternbach Felicitation Volume Part I 1979 p 573 , IndianBuddhism p 80 "It was in a somewhat developed stage that the Five Precepts were formulated At first only four precepts were enjoined, with the fifth (abstention from liquor) being added later ", K.LUKE, op cit ,p 82 "There was at work, then, the creative but anonymous community of monks who have been ultimately responsible for the emergence of the vast corpus of scriptures" (3) दे० छठा मुख्य स्तम्भलेख ।

2. **द्वितीय मुख्य शिला०** मे विज्ञप्ति है कि समस्त विजित राज्य मे और दक्षिणी सीमान्त "अन्त" राज्यो मे तथा यूनानी राजा अन्तिओखॉस्-द्वितीय एव उसके पड़ोसी "समन्त" राजाओ के यहा चिकित्सा, औषधि, स्वास्थ्यप्रद फल-सब्जी, स्वच्छ जल, छायादार वृक्षो आदि की सुविधा हेतु प्रबध किया जा रहा है।

3. **तृतीय मुख्य शिला०** मे आदेश है कि राज्याधिकारी पाच-पाच वर्ष के दौरे मे यह धर्मानुशासन सिखाए

" **साधु** है माता-पिता की सुश्रूषा ,
मित्र-परिचित-स्वजन एव ब्राह्मण-श्रमण को **साधु** है दान ,
प्राणियो का **साधु** है अ-वध ,
अलप-व्ययता, अल्प-सचय **साधु** है ।"

4. **चतुर्थ मुख्य शिला०** मे सदेश है कि राजा के धर्मानुपालन से युद्ध का भेरी-घोष धर्म-घोष मे परिवर्तित हुआ। इससे मानो युग-परिवर्तन हुआ ; सर्वत्र धर्माचरण मे वृद्धि हो रही है

" प्राणियो का अ-वध , जीवो के प्रति अ-हिंसा ,
स्वजनो का समादर , ब्राह्मण-श्रमण का समादर ,
माता-पिता की सुश्रूषा , स्थविरो की सुश्रूषा ।"

आशा है कि राजा के उत्तराधिकारी इस धर्मानुशासन को बढ़ाते जाएगे ।

चार मुख्य शिलालेखो की यह श्रृखला न केवल ब्राह्मी लिपि मे, वरन् पश्चिमोत्तर क्षेत्र के लिए खरोष्ठी लिपि मे भी (दे० शहबाजगढ़ी और मानसेहरा सस्करण) प्रकाशित हुई। अरामी लिपि मे चतुर्थ मुख्य शिला० का सक्षिप्त अरामी अनुवाद तक्षशिला के खण्डित स्तम्भलेख मे प्राप्त हुआ। अब तक यूनानी मे इसकी कोई प्रति उपलब्ध नही हुई ।

(9 - 10) बराबर के प्रथम दो गुहा-लेख

उसी काल मे अ-बौद्ध सम्प्रदाय के आजीविको को प्रदान की गई गुहाओ के सबध मे बराबर के **प्रथम** एव **द्वितीय दान-लेख** अकित हुए। द्वितीय गुहा-लेख मे केवल 14-14 ब्राह्मी अक्षरो की चार पक्तिया है ; उसी प्रकार तक्षशिला के अरामी स्तम्भलेख मे प्रति पक्ति के औसत इतने ही अरामी अक्षर है । अत उस लेख की खण्डित अवस्था के पुनर्स्थापन के लिए आवश्यक नही है कि हर पक्ति मे बहुत-से अनुमानित लुप्त शब्द जोड़ दिये जाए , जैसे कुछ विद्वान कर रहे है ।

(11 - 20) शेष दस मुख्य शिलालेख

अपने राज्याभिषेक के 13 वर्ष बाद , अर्थात् 14वे चालू राज्य-वर्ष (सा०स०पू० 252-251) मे और आनेवाले वर्षो मे अशोक ने शेष मुख्य शिलालेख — क्रमाक 5से 14 तक — लिखवाने का आदेश दिया ।

1. **पंचम मुख्य शिला०** के अनुसार कल्याण के कार्य दुष्कर है ; इसलिए अभिषेक के 13 वर्ष पश्चात् राज्य मे सहायक "धर्ममहामात्र" नियुक्त हुए। वे राज्याधिकारी सभी पाषण्डो (धर्मपथ-सम्प्रदायों) मे, सभी क्षेत्रो मे — योन-कम्बोज-गाधार जैसे "अपरन्त" लोगो मे भी — और सभी वर्गों मे, विशेषकर अनाथो-वृद्धो-बदियो के हितार्थ, कार्यरत होगे । इस अभिलेख मे अस्पष्ट शब्द "**भटमयेसु**" (भृतक-सेवक/मालिक?[1]) के स्पष्टीकरण के लिए द्विभाषीय अभिलेख उपयोगी हो सकते है ।

---

(1) दे० राधाकुमुद मुखर्जी , **अशोक** , पृ० 119 और 130 की विस्तृत टिप्पणिया ।

पचम मुख्य शिला० औपचारिक रूप से आरम्भ होता है " देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा यह कहते है " और समापन के वाक्य से अन्त होता है यह धर्मलिपि इसलिए लिखवाई गई कि वह चिरस्थायी हो । अत वह अपने आप मे एक पूर्ण अभिलेख है। इस श्रृखला मे यही औपचारिकता षष्ठ मुख्य शिला० मे भी दिखाई देती है। इसके बाद समापन का वाक्य केवल 13वे मुख्य शिला० मे मिलता है और सम्पूर्ण 14वा मुख्य शिला० एक विस्तृत समापन ही है। समापन का यह सकेत धौली एव जौगड़ सस्करणो से पुष्ट हो जाता है, क्योकि उनके अभिलेख-क्रम मे 11वा,12वा और 13वा शिलालेख छोड़ दिये गए है , जिससे 14वा शिलालेख सीधे 10वे शिलालेख से जुड़ जाता है। इसलिए मुख्य शिलालेख क्रमाक 5 - 14 की श्रृखला मे विभिन्न इकाइया है, जो अलग-अलग अभिलेखन-काल की द्योतक है 5 ..... 6 .... 7-8 + 9-10 ..... 11-12-13 [14] । क्या द्विभाषीय अभिलेखो के अध्ययन से सामान्य अभिलेख-क्रम एव अभिलेखन-काल के निर्धारण हेतु सहायता मिल सकती है ?

2. **षष्ठ मुख्य शिला०** के अनुसार राजा सब समय अपनी प्रजा की सेवा मे उपलब्ध रहना चाहते है। दो बार जोर देकर कहते है कि "मै सर्वत्र जनता के कार्य मे लगा रहता हू" और "सर्वलोक-हित ही मेरा कर्त्तव्य है"। उनके पराक्रम का एकमात्र उद्देश्य है कि प्राणियो का जो ऋण मुझपर है उससे मै उऋण हो सकू और उन्हे इहलोक एव परलोक मे सुखी देखू !

3. **सप्तम मुख्य शिला०** के छोटे-से सदेश मे यह तीव्र सदिच्छा व्यक्त की गई है कि सभी धर्मपथ व सम्प्रदाय के लोग, जहा कही भी हो , आत्मसयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता एव दृढ भक्ति के साथ स्वधर्म का पालन करे ।

4. **अष्टम मुख्य शिला०** मे भी कम शब्दो मे ही यह निश्चय प्रकट किया गया है कि राजकीय "विहार-यात्रा" फिर नही होगी, क्योकि जब से राजा सबोधि-स्थल गए थे तब से उनकी रुचि "धर्म-यात्रा" मे है । माननीय सन्तो के दर्शन करना, पुण्यदान देना, प्रिय जनता से धर्मचर्चा करना यह सब परम सौभाग्य की बाते है !

5. **नवम मुख्य शिला०** मे अनुष्ठानिक मगल-कर्म की तुलना मे वास्तविक "धर्म-मगल" कार्य की ऐसी परिभाषा दी जाती है, जो उपर्युक्त महामगल-सुत्त मे उद्धृत बुद्धवचन के लोकधर्म से अनुप्राणित है , उदाहरणार्थ

"दास-भृतक के प्रति उचित व्यवहार (**सम्मपटिपति**) ,
गुरुओ का आदर (**अपचिति**) ,
प्राणियो के सबध मे सयम ,
श्रमण-ब्राह्मण को दान । "

इस प्रकार के मगल-धर्माचरण से अवश्य फल मिलता है यदि अत्र-लोक मे वाछित फल-सिद्धि न भी प्राप्त हो, तो परत्र-लोक मे अनन्त पुण्य से कोई वचित नही होगा। जीवन का लक्ष्य स्वर्ग-प्राप्ति ही है; फिर भी धर्ममगल वर्तमान सामाजिक जीवन मे परिलक्षित हो। धर्म ईश्वरीय शक्ति से सबध रखने का स्वाग नही, बल्कि पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित या किसी भी पड़ोसी के साथ साधु सबध रखने की माग है। इसलिए अशोक की धर्मनीति समझने के लिए हमे मौर्यकालीन समाज ही समझना चाहिए। अभिलेखो के वे व्याख्याता सराहनीय कार्य करते है जो यथार्थ राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियो को समझने के लिए कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र को प्रमुख स्रोत बनाते है। इस शोधकार्य मे भी "अर्थ"-निर्धारण यथार्थ सदर्भ पर आधारित हो, न केवल सैद्धातिक नीति-मूल्यो की अरामी-यूनानी भाषाई अभिव्यक्ति पर ।

6. **दशम मुख्य शिला०** मे भी लोकधर्मी राजा सफल जीवन का यथार्थ मानदंड बताते है यश-कीर्ति का कोई महत्व नही । परलोक की दृष्टि से यश-कीर्ति का यह विषय है कि लोग व्यावहारिक धर्म की सुश्रूषा करे , "मेरे द्वारा उक्त धर्म" का पालन करे। अपनी कमजोरी जानते हुए सब कोई प्रयत्नशील हो और विशेषकर प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति आत्मत्याग के साथ पराक्रम करे ।

7. **एकादश मुख्य शिला०** उसी अभिप्राय से यथार्थ मानव-सबधो मे सच्चा "धर्म-दान" करने की शिक्षा देता है।

8. **द्वादश मुख्य शिला०** का अपना अलग महत्व है — शहबाजगढी सस्करण मे उसे अलग ही अकित किया गया है और कन्दहार के यूनानी शिलाखण्डलेख के प्रथम भाग (क०यू० 1-11) मे उसका निकट से अनुवाद किया गया है। उदारचेता राजा चाहते है कि विभिन्न धर्मपथ-सम्प्रदायो की वृद्धि हो। यह वृद्धि बाह्य पुण्यदान और अधिक पूजापाठ के कारण नही होगी, वरन् भीतर से, गहराई मे एक-दूसरे को जान लेने और मान देने से "**साल-वढि**" है, अर्थात् सार मे वृद्धि — जैसे राधाकुमुद मुखर्जी ने सुन्दर व्याख्या की "अशोक का मत है कि किसी सम्प्रदाय की महत्ता इस बात मे नही है कि उसके कितने समर्थक या पोषक और अनुयायी है। महत्ता उसकी आतरिक वस्तु, उसके सिद्धातो की है। दूसरे सम्प्रदायो के सिद्धातो मे भी सत्य है जिसका आदर सभी सम्प्रदायो को करना चाहिए "[1] (हमे देखना है कि "साल-वढि" का यूनानी अनुवाद क्या है)। आधुनिक सदर्भ मे कहे तो सर्वधर्मपथ-सवाद और आदरपूर्ण समभाव मे स्वधर्मपथ की वृद्धि सोचे, जिससे सद्व्यवहार मे ही धर्म का प्रदीपन हो ।

9. **त्रयोदश मुख्य शिला०** पिछले शिलालेख का अभिन्न अग है और हमारे अध्ययन के लिए उतना ही महत्व-पूर्ण , क्योकि कन्दहार के यूनानी शिलाखण्डलेख के द्वितीय भाग (क०यू० 11-22) मे उसका भी अनुवाद मिलता है। इस शिलालेख मे कलिग-विजय के दर्दनाक परिणाम से राजा के पश्चात्ताप का वर्णन है। जिन विजित लोगो को वह पहले अविजित शत्रु मानते आ रहे थे, उनको अब धर्म मे श्रेष्ठ मानते है, क्योकि उनमे "**द्रिढ-भतित**", अर्थात् दृढ भक्ति है (इस शब्द का भी स्पष्टीकरण यूनानी अनुवाद से करना होगा)। अत धर्म-विजय ही सच्ची विजय है। धौली-जौगड सस्करणो मे 13वे मुख्य शिला० की अनुपस्थिति का यह कारण हो सकता है कि उसे कलिग-क्षेत्र मे प्रकाशित कर अशोक नवविजित लोगो के घाव पर नोन छिड़कना नही चाहते थे। लेकिन पश्चिमोत्तरी क्षेत्र के लिए और देश के बाहर के प्रत्यन्त-समन्त राज्यो के लिए[2] युद्ध-विजय के बदले धर्म-विजय का सदेश अत्यन्त प्रभावशाली था। उस विजय-नीति मे प्रीति-रस भरा हुआ है सभी प्राणियो के साथ अहिसा, सयम, समानता और मृदुता का व्यवहार किया जाए । अच्छा हो कि आनेवाली पीढिया भी धर्म-विजय को सत्य विजय मानती रहे ।

10. **चतुर्दश मुख्य शिला०** मे "धर्मलिपि" के अभिलेखन की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। यह मानो इस सम्पूर्ण श्रृखला का शुभान्त है ।

(21 - 22) दो पृथक् कलिंग शिलालेख

धौली-जौगड सस्करणो की यह विशेषता है कि 14वे मुख्य शिला० के पश्चात् दो पृथक् लेख अकित हुए। यद्यपि उनमे 11वा-12वा-13वा शिलालेख छोड़ने से यह पृथक् सामग्री जोड़ी गई, फिर भी सन्नथी सस्करण मे बिना छोड़े ही यह भी जोड़ी गई। इसलिए दो पृथक् लेख 15वा एव 16वा मुख्य शिला० भी कहलाते है।

1. **प्रथम पृथक् कलिंग शिलालेख** की विषयवस्तु नगर-शासको के लिए है वे नगर-वासियो के प्रति अत्यधिक कठोरता और अत्यधिक दया के बीच मध्य-पथ अपनाए और राजा की यह भावना भी आत्मसात् करे कि सब मनुष्य मेरे अपने है **सवे मुनिसे पजा ममा**। राजा की एक ही कामना है कि सब-क-सब ऐहिक और पार-लौकिक सुख प्राप्त करे। अधिकारी-गण कर्त्तव्य-पालन की इस राजाज्ञा और सुख-सदेश को प्रतिवर्ष पूर्व-क्षेत्र के तोसलि नगर मे (और दक्षिणक्षेत्री सुवर्णगिरि, मध्यक्षेत्री उज्जयिनी, पश्चिमोत्तरक्षेत्री तक्षशिला मे ?) सुनाए।

---

(1) **अशोक** , पृ० 133 । (2) दे० इस शोध के पृष्ठ 43-44 पर। द्वितीय मु०शि० से तुलना करने से पता चलता है कि यहा 13वे मु०शि० मे दक्षिणी "सत्य-पुत्र, केरल-पुत्र" उल्लिखित नही हुए। दोनो शिलालेखो के अभिलेखन-काल मे कम-से-कम एक वर्ष का अन्तर है "The two states came into closer contact with Aśoka between the issue of the former and that of the latter" (D SIRCAR Select Inscriptions p.36)

इस धर्मलिपि का पाठ करने के लिए सन्नथि-सस्करण का अभिलेखन सुविधाजनक था, क्योकि इसे बड़े शिलाफलक पर दोनो ओर , सामने और पीछे , अकित किया गया था । शिलाफलक को किसी ढाचे मे सीधे खड़ा कर दिया गया था[1] । द्विभाषीय अभिलेखो के अभिलेखन का ढग देखने पर भी हमे उस एक-रूपता की सामान्य धारणा त्यागनी चाहिए कि अशोकीय अभिलेख केवल शिलालेख या स्तम्भलेख ही हो।

2. **द्वितीय पृथक् कलिंग शिलालेख** मे अशोक अपनी राजनीति का आदर्शवाक्य दुहराते है कि सभी मानव मेरी ही प्रजा है। सीमान्त-वासियो को सुनाया जाता कि वे आश्वस्त होकर राजा को अपना पिता समझे । यदि वे राजा के निमित्त धर्म का आचरण करे, तो इहलौकिक-पारलौकिक सुख अवश्य प्राप्त करेगे। यदि प्रादेशिक प्रशासक कर्त्तव्यनिष्ठ हो, तो स्वर्ग प्राप्त करेगे। शिलालेख का पाठ आषाढ, कार्तिक और फागुन की पूर्णिमा पर किया जाए। लेकिन आलोचक इस पाठ को प्रजातन्त्र मे धर्मतन्त्र का अतिक्रमण मानते है। इसे राजनीतिक चाल नही, वरन् प्रजा के प्रति वात्सल्य की अतिशयोक्ति समझे।

(23) **संघभेद लघु स्तम्भलेख**

ऊपर (पृ०162) के विवेचन के अनुसार 17वे राज्यवर्ष (सा०स०पू० 249-248) मे पाटलिपुत्र की बौद्ध सगीति[2] का आयोजन हुआ। उस धर्म-समागम मे स्थविरवाद / थेरावाद की विचारधारा को[3] मान्यता प्राप्त हुई। सघ मे मतभेद के कारण विभाजन रोकने के लिए अशोक ने भी प्रयास किया। सघभेद-विषयक लघु स्तम्भलेख (सारनाथ, साची और प्रयाग-कोसम[4] सस्करण) इस सदर्भ मे और इस काल मे खुदवाये गए। सघ का अर्थ यहा सम्पूर्ण बौद्ध सघ न होकर केवल स्थानीय सघ-विहार है। व्याख्याता मानते है कि राजा यहा धर्मसघ के मामलो मे हस्तक्षेप नही करते है ; अपने शासन-आदेश मे वह बौद्ध विधानो को ही लागू करते है कि सघ-भेदक भिक्षु-भिक्षुणी को श्वेत वस्त्र पहनने और अनावास-स्थान जाने के लिए बाध्य करे।

(24) **बराबर का तृतीय गुहा-लेख**

अभिलेखन के काल-क्रम मे इस गुहा-लेख का स्थान निश्चित है; "उन्नीस-वर्षाभिषिक्त" राजा ने उसे अपने 20वे चालू राज्यवर्ष (सा०स०पू० 246-245) मे गुहा-दान के अवसर पर लिखवाया। इससे विदित है कि अशोक अपने धर्म-पराक्रम की वृद्धि के बावजूद अन्यधर्मपथियो (उद० आजीविको) के प्रति उदार रहे ।

(25 - 28) **शेष चार लघु स्तम्भलेख**

अपने 21वे राज्यवर्ष (सा०स०पू० 245-244) मे अशोक ने दो यात्रा-स्मारक लेख लिखवाये

1. **रुम्मिनदेई लघु स्तम्भ०** लुम्बिनी-वन की यात्रा के अवसर पर शाक्यमुनि-जन्मस्थान पर अकित हुआ।
2. **निगाली-सागर लघु स्तम्भ०** कनकमुनि स्तूप के दर्शन के अवसर पर अकित हुआ।

---

(1) दे० I K SARMA & J VARAPRASADA RAO , Early Brahmi Inscriptions from Sannati 1993, p 7 "This inscribed stele does not come under the known types of Aśokan edicts" (2) अर्थात् तृतीय सगीति , परम्परा के अनुसार प्रथम सगीति महापरिनिर्वाण के तुरन्त बाद राजगृह मे और द्वितीय सगीति उसके सौ वर्ष बाद वैशाली मे सम्पन्न हुई।

(3) जिसे "विभज्जवाद" कहते है, क्योकि तथागत ने ही तथ्य-वितथ, सत्-असत् को विभाजित किया था।

(4) यह सघभेद-अभिलेख प्रयाग-कोसम स्तम्भ पर छह मुख्य स्तम्भलेख और रानी-लेख के बाद मिलता है, लेकिन इसका प्रारूप सारनाथ-सांची सस्करणों के समरूप मे पहले से बन चुका था।

3. **रानी लघु स्तम्भ०** भी कौशाम्बी से प्राप्त प्रयाग-कोसम स्तम्भ पर अकित है। यह तिथि-रहित दान-लेख है। राजा की इच्छा है कि " दूसरी देवी " के सभी पुण्यदान उसी के नाम पर गिने जाए । यहा राजपरिवार की झलक मिलती है । राज्यारोहण के पूर्व अशोक ने विदिशा की " देवी " से ही विवाह किया था , लेकिन राज्याभिषेक के बाद असन्धिमित्ता राजमहल की अग्रमहिषी बनी, जब कि अन्त पुर मे अन्य देविया राजशोभा बढा रही थी। "दूसरी देवी" का नाम कारुवाकी[1] था। प्रियपत्नी असन्धिमित्ता की मृत्यु (सा०स०पू० 240 ?) के बाद तिष्यरक्षिता पटरानी बनी। तक्षशिला के अरामी स्तम्भलेख से राजपरिवार के सबध मे इतनी ही जानकारी मिलती है कि "स्वामी प्रियदर्शी के पुत्रो" से आशा की जाती है कि वे धर्म के आधार आचार को बढाते जाए। प्रथम "देवी" की योग्य सतान, भिक्षु महेन्द्र और भिक्षुणी सघमित्रा, ने अपने पिता की आस्था की सपुष्टि की।
4. **अमरावती लघु स्तम्भ०** का यहा भी उल्लेख करे, यद्यपि उसकी बड़ी खण्डित अवस्था है[2]। सम्भवत स्तूप के लिए अर्पण-लेख है। उसके कुछ ही शब्द पहचाने जा सकते है। हम देखेगे कि पुल-इ-दरुन्त का अरामी शिलाफलक लेख भी खण्डित दुर्दशा मे पाया गया। पर असबद्ध वाक्याशो से भी उद्यमी शोधी निराश न हो।

अशोकीय अभिलेखो की अगली श्रृखला तक हमे पाच वर्षो तक प्रतीक्षा करनी है। उस मौन अन्तराल मे साम्राज्य के सुराज्य मे शायद कोई गभीर समस्या नही उठी। सघ के अनुशासन हेतु "पचवर्ष" की ऐसी ही व्यवस्था थी । फिर भी लघमान के दोनो अरामी अभिलेख उस अवधि मे रखे जा सकते है, क्योकि उनमे अब तक पूर्ण रूप से मत्स्य-ग्रहण और आखेट का निषेद नही किया गया है। सख्त नियम केवल बाद मे , मुख्य स्तम्भलेखो के प्रकाशन से लागू होगा[3]।

(29 - 34) प्रथम छह मुख्य स्तम्भलेख

मुख्य स्तम्भलेखो का विज्ञापन-काल निश्चित है प्रथम छह स्तम्भलेख 27वे चालू राज्यवर्ष (सा०स०पू० 239-238) मे विज्ञापित हुए। अत मुख्य शिलालेखो की श्रृखला(ओ) के समापन के दस वर्ष बाद,ये लेख एक अनुभवी राजा की सन्तुलित प्रौढ दृष्टि दर्शाते है । फिर भी , उनमे जो धर्म का प्रवर्तन हुआ , वह सूक्ष्म अधिनियमो का विधिक "धर्म" है । वृद्धावस्था के कारण भविष्य की चिन्ता है[4]।
1. **प्रथम मुख्य स्तम्भ०** उग्र धर्मपालन के लिए एक गभीर अनुरोध है । राजकर्मचारी और विशेषकर सीमान्त प्रदेशो के महामात्र प्रशासन की चतुरग विधि अपनाए धर्म के द्वारा सम्भरण, धर्म के द्वारा सयमन, धर्म के द्वारा सुख-सवर्द्धन, धर्म के द्वारा सरक्षण ।
2. **द्वितीय मुख्य स्तम्भ०** "धर्म" की वयावहारिक व्याख्या है। इसमे सर्वव्यापक आदर्श आचार-सहिता प्रस्तुत की गई है अप-आस्रव (अनासक्ति), बहु-कल्याण, दया, (भिक्षा-)दान, सत्य(-वादिता), शुचिता, (ज्ञान-)चक्षु का दान और पशु-पक्षियो को प्राण-दान। यदि लोग उस अष्टागिक कृत्य का अपनी सुकृतियो द्वारा पालन करते

---

(1) अर्थात् "चारु-वाकी" , उसका पुत्र था तीवर ("तीन वर"= बुद्ध, धर्म और सघ ?) । फिर भी D C AHIR (Asoka the Great p 131) कहते है " In our view, Karuvaki was the personal name of Devi, mother of Mahinda and Sanghamita She was known as Devi because of her religious outlook" एक और नाम मालूम है कुनाल की मा "पद्मावती" ।

(2) दे० D C SIRCAR, Asokan Studies, pp 118-122 "the first pillar inscription of Asoka so far discovered in South India"

(3) दे० B N MUKHERJEE. Studies in the Aramaic Edicts of Asoka p 15

(4) प्रथम मुख्य स्तम्भ० मे " **चपल** " (चचल) लोगो के व्यवहार से राजा नाखुश है , दे० A.WARDER, Indian Buddhism , p 268 " here and there an added note of urgency or impatience even anxiety about his administrative machinery following perhaps , experiments in gentleness which failed to produce the desired results"

रहेगे, तो धर्मलिपि के अक्षर यदि मिट भी जाए तोभी वह जनजीवन मे चिरस्थायी रहेगी।

3. **तृतीय मुख्य स्तम्भ०** मे द्वितीय लेख मे उद्धृत "आस्रव" (आसक्ति) का स्पष्टीकरण मिलता है । आत्म-निरीक्षण करनेवाले जानते है कि पाच पाप-द्वार है उद्वेग, निष्ठुरता, क्रोध, अभिमान और ईर्ष्या।

प्रथम तीन स्तम्भलेख के विषय एक-दूसरे के पूरक है धर्म किसी शुभविचार का मत नही, बल्कि शुद्धाचार का पथ है। वास्तव मे, देहली-टोपरा सस्करण मे उन तीनो को एक ही स्तम्भ-मुख पर अकित किया गया है।

4. **चतुर्थ मुख्य स्तम्भ०** मे प्रियदर्शी राजा उच्चाधिकारियो को निर्देश देते है कि वे धर्मपरायणता से अपना-अपना कर्त्तव्य निभाए। यद्यपि परलोक ही परमलक्ष्य है, उन्हे सब समय प्रजा के हित-सुख के लिए कार्य करना चाहिए। जनता मे विविध धर्माचरण को, विशेषकर दान-वितरण को प्रोत्साहित करे ।

5. **पंचम मुख्य स्तम्भ०** मे उन जीव-प्राणियो की विस्तृत सूची दी गई है, जिनका वध करना वर्जित है। विशेष स्थिति मे एव विशेष तिथि पर और व्यापक जीवन-दान **का प्रबंध हो** और पशुओ को बधिया करने अथवा दागने की भी मनाही हो। राजा ने स्वय प्राणोद्धार का उदाहरण दिया राज्याभिषेक का 26वा वार्षिकोत्सव बीत चुका है और पच्चीस बार उत्सव के अवसर पर बन्दियो को कारागार से मुक्त कराया गया है [1]।

6. **षष्ठ मुख्य स्तम्भ०** इस श्रृखला का अन्तिम लेख है जो सभी सस्करणो मे उपलब्ध है। प्रियदर्शी राजा याद दिलाते है कि उन्होने 14 वर्ष पहले भी धर्मवृद्धि हेतु धर्मलिपिया लिखवायी थी । उनकी एक ही कामना थी कि सर्वहित हो ; चाहे निकट सबधी हो अथवा दूर प्रान्त-वासी, किसी भी "निकाय" (जन- समुदाय) अथवा "पाषण्ड" के सदस्य क्यो न हो, उन सब के लिए हितकार्य किया जाए । राजा स्वय नमूना देते है, जब वह "प्रत्युपगमन" करते है, अर्थात् जनता के पास आकर सब से मिलने की कृपा करते है।

सम्भवत उसी 27वे राज्यवर्ष के अन्त मे पुल-इ-दरुन्त का अरामी शिलाफलक लेख उत्कीर्ण हुआ इसमे अनेक ऐसे प्राकृत वाक्याशो का अरामी लिप्यन्तरण मे उल्लेख किया गया है, जो मुख्य शिलालेखो और मुख्य स्तम्भलेखो की और सकेत करते है। एक वाक्याश को "देखितविये" पढे, तो उसका उसी रूप मे किसी भी ज्ञात अशोकीय लेख मे प्रयोग नही हुआ, लेकिन उसके साथ सलग्न अरामी अनुवाद से अनुमान लगाया जा सकता है कि यहा भी किसी मुख्य स्तम्भलेख को उद्धृत किया गया है। (आगे इसका विवेचन करेगे)

(35) सप्तम मुख्य स्तम्भलेख

यह आखिरी मुख्य स्तम्भलेख केवल देहली-टोपरा सस्करण मे उपलब्ध है। इसे 28वे चालू राज्यवर्ष (सा० स०पू० 238-237) मे दस चरणे मे विज्ञापित किया गया, क्योकि दस बार आरम्भिक औपचारिक वाक्य " **हेवं आहा** " (राजा ऐसा कहते है) प्रयुक्त हुआ। ये दस वचन पिछले धर्मश्रम द्वारा सचित धरोहर के सबध मे मानो अशोक का वसीयतनामा है [2]। राजा को सतोष है कि उन्होने अपने शासनकाल मे हमेशा धर्माचरण की वृद्धि को प्राथमिकता दी थी। इसके लिए धर्ममहामात्र नियुक्त हुए, धर्मोपदेश सुनाये गये, धर्मस्तम्भ लिखवाये गये। फिर वृक्ष लगाना, कुए खुदवाना, धर्मपथ-सम्प्रदायो मे समन्वय बढाना, समयबद्ध निरीक्षण करवाना, राज-परिवार के धर्मोपकारो की देखभाल करना ये सब छोटी-बडी योजनाए उसी उद्देश्य के लिए बनी थी कि धर्मानुसार आचरण मे प्रगति हो। उन छह गुणो मे धर्मोन्नत्ति की जान और उसकी पहचान है

दया दाने सचे सोचये च मदवे साधये च (दया, दान, सत्य और शुचिता, मृदुता और साधुता)। और वे गुण सद्व्यवहार के उन छह क्षेत्रो मे दिखाई देते है

माता-पिता एव गुरु की सुश्रूषा, वयोवृद्ध का आदर, ब्राह्मण-श्रमण, दीन-दु खी एव दास-भृतक के प्रति सुचाल।

---

(1) कालनिर्धारण दे० पृष्ठ 162 पर। (2) दे० A SEN, Aśoka's Edicts, p 142 " Pillar Edict 7 is the longest of the extant Aśokan records and in its review of his lifelong activities , it reads almost like his last will and testament "

वास्तव मे, धर्मोन्नति केवल अमुक नियम की अमुक धारा का पालन करने से नही होता ; आन्तरिक प्रबोधन की आवश्यकता है, जिससे पालनकर्ता स्वय अपनी धारणा के अनुरूप आचरण करे। प्रियदर्शी राजा अपने स्तम्भ-लेख को इस आशा से अन्त कर देते है कि उनके सारे धर्मलेख केवल मृत पत्थर पर अकित होने के कारण चिरस्थायी न हो, बल्कि चिरजीवी इसलिए हो कि धर्म के अनुसार आचरण करनेवाले पीढी-दर-पीढी के लोग इहलोक व परलोक मे अपार सुख प्राप्त करते रहेगे ।

यह अन्तिम सु-वचन लेख-श्रृखला के शुभान्त के लिए अच्छा ही है , लेकिन अब तक उपलब्ध अभिलेखो के अन्तिम अभिलेखन का गौरव एक द्विभाषीय अभिलेख को प्राप्त है,क्योकि कन्दहार के अरामी शिलाखण्ड-लेख मे स्पष्टत सप्तम मुख्य स्तम्भ० के उस अति-व्यावहारिक वचन का अनुवाद मिलता है जिसमे धर्मगुण के छह आचार-क्षेत्रो का वर्णन हुआ। अत उसका अभिलेखन बाद मे किया गया होगा ।

अभिलेखन-क्राल के क्रम से अशोकीय अभिलेखो का प्रस्तुत "अभिलेख-सार" भी समाप्त हुआ । लेकिन उसके अन्त मे हम फिर एक बार उन द्विभाषीय अभिलेखों का स्थान दर्शाए , जिनके सबध मे केवल परिचय देना पर्याप्त नही है क्योकि उनके सबध मे आगे हमारी परिचर्चा जारी रहेगी

अर्थात् (1) लगभग सा०सा०पू० 254-253 मे शर-इ-कुन का यूनानी-अरामी शिलालेख
(2) ,, ,, 253-252 ,, तक्षशिला का अरामी स्तम्भलेख
(3) ,, ,, 251-250 ,, कन्दहार का यूनानी शिलाखण्डलेख
(4-5) ,, ,, 244-243 ,, लघमान का प्रथम और द्वितीय अरामी शिलालेख
(6) ,, ,, 239-238 ,, पुल-इ-दरुन्त का अरामी शिलाफलकलेख
(7) ,, ,, 238-237 ,, कन्दहार का अरामी शिलाखण्डलेख

क्या आखिरी अभिलेख के बाद सचमुच अशोक महान् का देहावसान हुआ ? क्या उदारशील राजा शैन - शैन सर्वधर्मपथ-समभाव की भावना छोडकर बौद्ध-समर्थक धर्मनीति की ओर बढने लगे , जिससे राज्य मे असतोष फैलने लगा ? साहित्यिक स्रोतो के अनुसार तक्षशिला मे विद्रोह हुआ , जिसके कारण राजकुमार कुनाल को वहा भेजना पडा [1) । रानी तिष्यरक्षिता ने बोधवृक्ष को विनष्ट करने का प्रयास किया । ऐसी बातो

(1) दे० P EGGERMONT ""Purānic list of Maurya kings"" Persica 2 1965-66 pp 34-35 और ""The emperor Aśoka and the Tisyaraksitā legend" Orientalia Lovaniensia Periodica 11 1980 p 174 " It is true the Purānas generally assign 36 years to Aśoka and the Pāli tradition 37 years, but the so-called 36 years arose from a mistake I surmise that a copyist singled out the 8 years of Kunāla's rule which actually ran parallel with the last years of Aśoka and put him on the list of Maurya kings after the 28 years' rule of Aśoka Afterwards another copyist remembered that Kunāla did not reign as an independent king...He assigned to Aśoka a 36 years' rule I "

से विद्वान यह निष्कर्ष निकालते है कि अपने शासन के अन्तिम वर्षो मे अशोक वास्तविक सत्ता से वचित हुए। सभी मानते है कि उनके उत्तराधिकारियो के समय मौर्य शासन कमजोर होता गया । जहा तक अशोकीय अभिलेखो का प्रश्न है, "मौर्य प्रभाव-क्षेत्र" का तात्पर्य यहा अशोक के जीवन-काल तक सीमित है। लेकिन सूर्य के अस्त हो जाने पर भी सूर्य लुप्त नही हो जाता !

174 सामाजिक - सांस्कृतिक आदान - प्रदान का संगम - क्षेत्र
CONFLUENCE AREA OF SOCIAL AND CULTURAL EXCHANGE

पश्चिमोत्तर भारत-उपमहाद्वीप पर विभिन्न प्रभावो का सर्वेक्षण करने के बाद इसमे कोई सदेह नही रह जाता है कि "मौर्य प्रभाव" सर्वाधिक रहा और द्विभाषीय अभिलेखो मे अशोक मौर्य ने ही अपने को अभि-व्यक्त किया। इसलिए, यदि अन्य प्रभाव भी दिखाई देते है (जिनका स्पष्टतम सकेत अन्य-भाषाभाषियो के लिए उनकी अपनी भाषा-लिपि मे अभिलेख लिखवाना ही है) , तो वे किसी कमजोर विपक्षी को पछाड़ कर नही उभड़े। मौर्य साम्राज्य स्वेच्छा से उन प्रभावो को अपने आप मे समा लेने के लिए सक्षम था । इसी अर्थ मे नीलकठ शास्त्री जैसे उत्कृष्ट इतिहासकार स्वीकार करते है कि मौर्य शासन-प्रशासन मे भारतीय, [अरामी-]ईरानी एव यूनानी पद्धतियो का समावेश था [1]।

त्रिवेणी-सगम पर यमुना अपने सम्पूर्ण यामुन प्रवाह से गगा-मैया मे समा जाती है ; वह गगामय बन जाती है, न कि नामधारिणी गगा विलीन हो जाए। त्रिविध अरामी-ईरानी-यूनानी प्रभावो को धारण करने से प्रमुख धारा और प्रभावशाली हो गई , बाह्य प्रभाव ग्रहण करने से भीतरी प्रभा और तेज हो गई। द्विभाषीय अभिलेख उसका उदाहरण एव प्रमाण है कि बहुसस्कृति के प्रसग मे स्वसस्कृति का स्वभावत विकास और विस्तार सम्भव है [2]।

---

(1) " The imperialism of the Maurya monarchs, especially of Aśoka, was a synthesis of Indian,Achaemenian and Hellenistic ideals" (Age of the Nandas and Mauryas p 391) , " Mauryan imperialism as revealed in the inscriptions of Aśoka was largely influenced by the imperial ideology of the Hellenistic and Achaemenian monarchs" (ibid ,p 359)

(2) सन् 1923 (Carmichael Lectures] मे वरिष्ठ इतिहासज्ञ डी०आर० भडारकर ने उपनिवेशी श्रोताओ के समक्ष एक प्रौढ मौर्य अशोक को प्रस्तुत किया और पाश्चात्य सस्कृतियो पर उनके व्यक्तित्व [और अभिलेखन-कर्तृत्व] का प्रभाव दर्शाया।

जिस क्षेत्र मे द्विभाषीय अशोकीय अभिलेख प्रकाशित हुए , वहा फारसी साम्राज्य के अधीन और फिर यूनानी सार्माज्य के अधीन होने के पश्चात् मौर्य साम्राज्य मे स्वाधीन होने से सास्कृतिक अन्तर्सम्बध समाप्त नही हुए। नवोदित मौर्य स्वराज्य का पश्चिमोत्तरी सीमान्त क्षेत्र बनने से उस स्थान पर सास्कृतिक आदान-प्रदान को और बल मिला । जब प्रियदर्शी राजा के द्वारा आदेशित सदेश , प्राकृत प्रारूप के आधार पर , यूनानी-अरामी रूपान्तर मे उतारा गया, तब वहा के विभिन्न मूलवासी और प्रवासी समुदायो ने उस उदार सद्भावना के प्रदर्शन से स्वायत्ता एव अपनत्व का अनुभव किया। द्विभाषीय अभिलेख केवल औपचारिक राजकीय अनुवाद नही है ; स्थानीय आवश्यकताओ को देखते हुए मूल प्रारूप को अनुकूल बनाया गया और भाषाई सम्प्रेषण की प्रक्रिया मे किसी हद तक उसका अरामीकरण अथवा यूनानीकरण किया गया । अत अशोकीय सदेश के भाषान्तर की शब्दावली मे भी अन्त सास्कृतिक आदान-प्रदान के निशान है (इस द्विभाषीय शब्दावली का अन्त सास्कृतिक दृष्टि से विस्तृत विश्लेषण शोधप्रबध के पाचवे खण्ड मे देखे)।

अशोकीय अभिलेखो की विषय-वस्तु के कारण उसकी व्यापकता और अधिक बढी-चढी, क्योकि उनमे भारतीय धर्म-दर्शन से प्रादुर्भूत सर्वग्राह्य नैतिक मूल्यो को अरामी तथा यूनानी वेश मे प्रस्तुत किया गया है। अशोक ने लोकधर्म-मानवधर्म की व्यावहारिक शिक्षाओ को न केवल तक्षशिला से लेकर कन्दहार के सीमा-क्षेत्र मे पहुचाया, वरन् सीमा-पार के पड़ोसी राज्यो मे भी सुनाना चाहा [1]। यदि कोई ग्रहणशील हृदय से सुने, तो वह अशोक के क्रातिकारी समाज-दर्शन से अछूटा नही रह सकता। उदाहरणार्थ युद्ध से नही, परन्तु नेकचलन से धर्मविजय प्राप्त होती है ; माता-पिता और गुरुजनो की आदर-सहित सेवा अवश्य करे, परन्तु सेवको और श्रमिको के साथ भी उचित प्रेमपूर्ण व्यवहार करे ; जो दूसरे धर्मपथ-सम्प्रदाय की बुरी आलोचना करता, वह अपने ही धर्मपथ-सम्प्रदाय की बुराई करता है ; किसी प्राणी, किसी जीव को कष्ट

---

(1) दे०G FUSSMAN, Enc Iranica , 1987, p 781 "The Greek community in Kandahar played an important role in the relations between Hellenistic Iran and Maurya India From this community Aśoka recruited his envoys to the Hellenistic world, or those who guided them and served them as interpreters "

न दे, यहा तक कि अपार प्रकृति-प्रेम से उस भूसी को न जलाए जिसके भूसे मे जीवित कीटाणु हो ; यात्रियो के लिए छायादार विश्रामस्थल बनाए ; राज्याधिकारी सब के साथ मृदुल व्यवहार करे, मानो वे दाय हो जिन्हे शिशु का पालन-पोषण करने का दायित्व सौपा गया है ; विशेषकर गरीबो की सहायता करे और विचारे कि क्षुद्र व्यक्ति भी धर्म का उतना ही पालन कर सकता है कि वह परलोक मे पहले प्रवेश करेगा! पश्चिमोत्तरी क्षेत्र के निवासियो के लिए ऐसी धर्मनीति की घोषणा एक नयी आवाज थी । नस्सिन्देह, वे उसके विषय मे आपस मे चर्चा कर रहे थे। पत्थर पर अकित धर्मलिपि उनके मन पर अकित हुई। क्या लिपिक (उदाहरणार्थ, पटेरपत्र पर लिखकर) इसकी प्रतिलिपि नही बना सकते थे और क्या ऐसी प्रतिलिपि पश्चिम के किसी यवन-राज के हाथ मे कभी पहुच पाई ?

उस व्यापकता के विरुद्ध कोई आपत्ति उठा सकता है कि अशोक अपने ही बौद्ध धर्म का प्रचार कर रहे थे । परन्तु श्रीरामगोयल ने प्रभावी ढग से दिखाया कि यद्यपि अशोक ने बौद्ध धर्म को व्यक्तिगत धर्म के रूप मे स्वीकारा और बौद्ध के रूप मे ही अनेक हितकार्य किये , फिर भी ''धम्म'' के सबध मे अशोक की अवधारणा सैद्धातिक बौद्ध धर्म नही, अपितु बुद्ध-वचनो से प्रेरित व्यावहारिक मानवधर्म है। उसने बौद्ध धर्म के उस विश्व-जनीय रूप को सामने रखा जो गृहस्थ उपासको के लिए ठहराया गया था[1]। उसका उज्ज्वल उदाहरण, या प्रमाण ही कहे, शर-इ-कुन के द्विभाषीय अभिलेख मे अनूदित **धमं** शब्द ही है यूनानी खण्ड मे धमं के लिए **अ̍व्-से̍बॅय** शब्द का प्रयोग हुआ, जो किसी विशेष धर्म-निष्ठा (अ० रिलिजॅन्) का बोध नही करता, वरन् व्यापक अर्थ मे श्रद्धा-भक्ति ; अरामी खण्ड मे **क़श्शीटा̍** प्रयुक्त हुआ , जिसका और व्यापक अर्थ मे सत्य , सदाचरण का बोध होता है । प्राकृत धमं , यूनानी अ̍व्-से̍बॅय और अरामी क़श्शीटा̍ (और ईरानी अश-[2]) की तुलना करने से गभीर अन्त सास्कृतिक आदान-प्रदान की गहराई मालूम हो जाती ।

---

(1) **प्रियदर्शी-अशोक** , अध्या० 5-6 । (2) उद० यस्न 46 मे सर्वोच्च प्रभु को सत्यवान् माना गया है और उसकी इच्छा है कि मानव भी सत्यकर्म करे , दे०S INSLER The Gāthās of Zarathustra 1975 p 83 "the truthful Lord through whose actions one has nourished the truth the truth for the truth (ftn· 'the enactment of truth for the knowledge of truth')" ; J.DUCHESNE-GUILLEMIN Religion of Ancient Iran 1973 (1962) p 137· "I have translated Asa as 'Righteousness' "

यद्यपि धर्माशोक ने विशिष्ट बौद्ध धर्म-निष्ठा के एकातिक प्रचार के लिए प्रशासन-तन्त्र का प्रयोग नही किया. फिर भी उनके प्रशासन-काल मे मोग्गलिपुत्त तिस्स ने प्रचारक-मण्डल भेजे है। महावस का उल्लेख करते हुए श्रीराम गोयल इस बौद्ध प्रेषण (मिशन्) का वर्णन करते है " स्थविर महारक्खित ' योन-विसय ' (यवन देश) मे गया। वहा उसने जनता को ' कालकाराम सुत्तन्त ' का उपदेश दिया। एक लाख सत्तर हजार मनुष्यो ने बुद्ध मार्ग के फल को प्राप्त किया और दस हजार ने प्रव्रज्या ग्रहण की "[1]। परन्तु अनुश्रुतियो के ये आकड़े परवर्ती काल के लिए उपयुक्त हो सकते है। जी० फुस्मन् के अनुसार कन्दहार और आसपास के क्षेत्र मे बौद्ध धर्म का इतनी जल्दी से फैलाव नही हुआ [2]। इसलिए किसी माने मे फैलते हुए बौद्ध धर्म ने ही अशोक के लोकधर्म-मानवधर्म का प्रचार किया।

श्रीराम गोयल ने आगे अपने वर्णन मे पश्चिमी जगत् की ओर बौद्ध धर्मप्रचार के परिणाम का यह उदाहरण दिया " ईसा के जन्म के समय पश्चिमी एशिया के प्रदेशो मे ईसीन और थेराथून [=थेरापूत ?] नाम के विरक्त लोग रहते थे। ईसा स्वयं भी इनके ससर्ग मे रहे थे। ये साधु शायद स्थविर महारक्खित के ही उत्तराधिकारी थे।" इस प्रकार का वक्तव्य अन्य विद्वानो ने भी किया [3]। यद्यपि यह विषय सम्राट अशोक के उत्तर-काल से सबधित है. फिर भी इसे अशोकीय धर्मपथसमन्वय और अन्त सास्कृतिक सामन्जस्य का उत्तराधिकार समझ सकते हैं । लेकिन इतिहासकार नये सुझाव को कभी सम्भावना की अपेक्षा एक "तथ्यक साध्या" ही मानने लगते है। इस प्रश्न को लेकर एक विशिष्ट टिप्पणी जोड़ने की आवश्यकता है ।

---

(1) तत्रैव , पृ० 78 । (2) G FUSSMAN op cit p 781 "The only *stupa* and Buddhist monastery ever found in Kandahar cannot in their present state be attributed to so early a date"

(3) दे० V W DESHPANDE. The Impact of Ancient Indian Thought on Christianity New Delhi 1996, p 31ff "Essenes Therapeutae and Jesus Christ ", A.LILLIE, Buddhism in Christendom or Jesus the Essene , New Delhi, 1984 , E GRUBER & H KERSTEN, The Original Jesus , the Buddhist Sources of Christianity , Shaftesbury, 1996 , p 64ff " Asoka's mission the Buddha's teaching conquers the world" , p 171ff "The westward spread of Buddhism", p 176ff "Theravadins and Therapeutae Egyptian Buddhists" , *राधकुमुद मुखर्जी* ,**अशोक** , पृ० 65 अन्य शीर्षक देखो P C ALMOND. " Buddhism in the West 300 B C - A.D 400 ". Journal of Religious History 14 1987 pp 235-245 ; ALAIN CHRISTOL " Les noms des bouddhistes en grec" Lalies 3 1981 37-43

175 विशिष्ट टिप्पणी : बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियां और कुमरान-मठ के एस्सेनी

SPECIAL NOTE BUDDHIST MONKS AND THE ESSENES OF QUMRAN

द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखो मे बहु-भाषा और बहु-सस्कृति के आदान-प्रदान की अभिव्यक्ति हुई । क्या उसका दूरगामी प्रभाव यूनानीकृत मिस्त्रियो के यहा अथवा अरामी-भाषाभाषी इस्राएलियो के यहा प्रतिध्वनित हुआ ? सुझाव आकर्षक है, लेकिन सार्थक तभी है यदि हम प्रतिध्वनि मे मूल ध्वनि को पहचान पाएगे, अथवा, दूसरे शब्दो मे, यदि लता-प्रतान (tendrils) मे मुख्य तने का ही रस पाएगे ।

175 ~ (1) : **एस्सेनी कौन ?**

सर्वप्रथम स्पष्ट करे कि किन त्यागी साधको के सबध मे प्राक्काल्पनिक सुझाव दिया जा रहा है। उन्हे एस्सेनी (Essenes) कहा गया है। किस भाषा मे ? श्रेण्य यूनानी भाषा मे राजा के अर्थ मे "अॅस्सैन्" (बहुवचन मे अॅस्सैनॅस्) शब्द मिलता है , पर आदि-कवि हॉमैरॉस् के द्वारा उसका प्रयोग करने से यहा कोई प्रयोजन नही है । फिर भी एशियाई यूनानियो के अॅफेसॉस् नगर के महामन्दिर के उन पुजारियो को भी "अॅस्सैनॅस्" कहते थे,जो देवी अॅर्तेमिस् को अर्पित एक वर्ष का व्रत धारण कर राज-पुरोहित बनते थे। उस अवधि मे वे ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और भक्तिमय (यू० अॅव्-सेबॉस्) तप और जप मे लीन रहते थे। लेकिन स्थान-विशेष के उन यूनानी साधको से हमारे विषय का सीधे सबध नही है।

जिन एस्सेनी पथियो का वर्णन यहूदी इतिहासकार योसैपॉस् करता है, उन्हे वह यूनानी मे दो रूपो मे, चाहे "अॅस्सैनॉय्" अथवा "अॅस्सॅयॉय्" कहता है। लगता है कि पहला रूप (ऊपर दिये गए राज-साधको की समानता मे) यूनानी रूपातर है और द्वितीय रूप अधिक मौलिक है। वास्तव मे, मिस्री सिकन्दरिया का यहूदी दार्शनिक फ़िलोन् केवल उसी द्वितीय रूप का प्रयोग करता है , जब कि यूनानी विचारक दिंओन् ख़्रुसॉस्तॉमॉस् स्वभावत यूनानीकृत रूप "अॅस्सैनॉय्" अपनाता है (जिसका लातीनी रूपान्तर "अॅस्सेनी" प्लिनिउस् सेकुन्दुस् के विवरण मे प्रयुक्त हुआ)। वे सभी लेखक प्राय प्रथम सदी सा०स० के है [1] ।

द्वितीय यूनानी रूप "अॅस्सॅयॉय्" सम्भवत अरामी भाषा के निश्चायक बहुवचन शब्द "ख़ॅन्साय्या" से बना , जिसका अर्थ है "(वे) भक्त / पवित्र (जन)" । यह अर्थ हमारे सदर्भ के लिए उपयुक्त ही है।

---

(1) एस्सेनी पथ के सबध मे प्राचीनतम यूनानी स्रोत इस प्रकार है (परम्परागत शीर्षक लातीनी मे मिलते है)

1 FLAVIUS JOSEPHUS De Bello Judaico (यहूदी सग्राम) 1 78-80, 2 112-113 119-161 566-568,3 9-12,5 142-145 , Antiquitates Judaicae (यहूदी पुरावृत्त) 13 171-172 298 311-313, 15 371-379, 17 345-348, 18 11 18-22 , De vita sua (आत्मकथा) par 10-12 (HIPPOLYTUS, Philosophoumena 9 18-30 के उल्लेख योसैपॉस् पर आधारित है)

2 PHILO ALEXANDRINUS Quod omnis probus liber sit (सुजन/पराक्रमी व्यक्ति स्वाधीन है) par 72-91 ; Pro Judaeis defensio(यहूदियो हेतु मंडनिका) = EUSEBIUS CAESARIENSIS Praeparatio Evangelica 8 11 1-18 , De vita contemplativa (ध्यानपरायण जीवन) = EUSEBIUS CAESARIENSIS Historia Ecclesiastica 2 17

3 DIO CHRYSOSTOMUS Rhetorica (अलकृत भाषण) 3 2

+ लातीनी मे PLINIUS SECUNDUS Naturalis Historia (नैसर्गिक इतिहास) 5 73

सयोग की बात कि यही शब्द अनिश्चयात्मक बहुवचन " ख़्‌सीन् " के रूप मे अशोक के आरामी अभिलेख श०अ० 7 मे मिलता है, जहा उसका अनुवाद "सयमी" किया जा सकता है – चाहे भिक्षु हो अथवा सामान्य गृहस्थ। यदि दूसरी अरामी (प्राचीन सुमेरी ?) उत्पत्ति खोजे, तो निश्चायक बहुवचन शब्द " अ-सय्या " भी उपलब्ध है, जिसका अर्थ है "(वे) उपचारक / चमत्कारक (जन)" । तेज तर्क करनेवाले तुरन्त परोपकारी राजा अशोक के द्वितीय मुख्य शिलालेख का उल्लेख करते है कि यवन राज्यो मे मनुष्यो तथा पशुओ की चिकित्सा हेतु उपचारक भेजे गये है । इसलिए, उनका तर्क है कि मिस्र मे भारतीय औषधियो से चमत्कारिक उपचार करनेवाले धर्मदूत पहुच गए होगे , जिन्हे (अरामी मे क्यो ?) एस्सेनी कहने लगे । ठीक, परन्तु क्या सम्पूर्ण एस्सेनी पथ उपचारको के सघ के रूप मे पहचाना जा सकता था ? देखे , फ़िलोन् क्या कहता है ।

एक ओर (अपनी रचना 'मण्डिका' मे) फ़िलोन् समझाता है कि कुछ ऐसे त्यागी पथी है, जो सद्‌गुण की प्राप्ति हेतु उत्साही साधक है ; वे "अ॑स्सय॑ोय्" (एस्सेनी) इसलिए कहलाते है क्योकि उनमे पवित्र भक्ति है (यूनानी मे पवित्र भक्त को " हॉसिऑय्" बोलते है !) । दूसरी ओर (अपनी रचना 'ध्यानपरायण जीवन' मे) वह ऐसे त्यागियो को (जिन्हे यहा एस्सेनी नाम नही देता) " थेरपॅव्‌तय् " (पु०) और " थेरपॅव्‌त्रिदॅस् " (स्त्री०) होने की रहस्यमय बात करता है। रहस्यमय इसलिए क्योकि उस शब्द के दो प्रमुख अर्थ है सेवक/आराधक अथवा उपचारक। फ़िलोन् दोनो अर्थ लागू करता है " वे शुद्ध एव सच्चे मन से सेवा और ईश-आराधना करते है साथ-ही-साथ चिकित्सको के सदृश वे दुर्वासनाओ को हटाकर सत्सगियो का उपचार करते है और उनके मनोविचारो को स्वस्थ कर देते है " । इससे स्पष्ट है कि " थेरपॅव्‌तय् – थेरपॅव्‌त्रिदॅस् " एक मूल यूनानी द्वि-अर्थक नामकरण है , और यह भी स्पष्ट है कि द्वितीय अर्थ " चिकित्सक/उपचारक " का प्रयोग शारीरिक उपचार के लिए नही वरन् आत्मिक उपचार के लिए हुआ। यदि फ़िलोन् की एक अन्य रचना (सुजन स्वाधीन है) मे पढे, तो कोई सदेह नही रह जाता है " उनका नाम ' अ॑स्सय॑ोय् ' का कारण समोच्चरित उपनाम 'पवित्र भक्ति' है , क्योकि वे सर्वाधिक 'ईश-आराधक' (यु० थेरपॅव्‌तय् थेऑव्) है "[1]।

क्या हम फ़िलोन् के स्पष्टीकरण और यूनानी भाषा की अवहेलना कर " थेरपॅव्‌तय् " शब्द को सीधे बौद्ध थेरा-वादी "थेरा-पुत्तो" (स्थविर-पुत्र) से जोड़ सकते है[2]? इतना ही नही क्या हम यूनानीकृत अरामी शब्द " अ॑स्सय॑ोय् " को बिना हिचकिचाहट प्राकृत "इसयो " का रूप बता सकते है , अर्थात् ऋषि (इसि का बहुवचन)[3] ? शोधकर्ता इन कृत्रिम कोशिशो से सहमत नही है[4]। इसका तात्पर्य नही कि यूनानवाद के मिस्र मे कभी कोई बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी नही आये। इसके पर्याप्त सकेत है कि सिकन्दरिया मे भारतीय मूल के लोग भी थे (दूसरे खण्ड मे कुछ पुरालेखीय प्रमाण भी दिये जाएगे) ।

---

(1) तुलना करे निर्ग्रन्थ ज्ञानियो के सबध मे ARRIAN Anabasis of Alexander 7 2 कलनॉस् ने सिकन्दर का निमन्त्रण स्वीकार किया क्योकि वह आत्मसयमी नही था , अपने साथियो को छोड़कर " वह ईश्वर से अधिक अन्य स्वामी की **सेवा करने लगा** (यू० ॲथेरपॅवे) " । (2) दे० E GRUBER & H KERSTEN, op cit ,p 183 " The Alexandrian Therapeutae are the Theravadi Buddhists Aśoka sent on a mission to Ptolemy II Philadelphos, and they really were dispatched with the express task of working as healers of people and animals". (3) ibid ,p 194 , वी०देशपाण्डे निस्सकोच इज्राएली नबी यशायाह को (अग्रेजी उच्चारण Isaiah के कारण !) ईशोपनिषद् का प्रवर्तक "ईश" बताते है और उसे एस्सेनियो के गुरु बनाते है " Essenes were preaching Vedopnishadic philosophy whereas Therapeutae were preaching Buddhist philosophy"(V DESHPANDE,op cit p 31) (4) उद० गुरु सुमुकुन्द को भी मिस्री थेरावादियो से प्रभावित माना गया "After his return from the Therapeutae in Egypt, Jesus perhaps spent some time with the Essenes It is possible that he even travelled to India Jesus proclaimed the Dharma when he returned to Palestine" (E GRUBER & H>KERSTEN,op cit ,p 218 192 243) यदि शोधकर्ता से पूछा जाए कि अशोक के धर्मदूतो के शुभ कार्य के परिणामस्वरूप सुगुरु-पथ के प्रवर्तक का इस प्रकार बौद्धीकरण करना कहा तक उचित है, तो उसका उत्तर है कि गभीर अनुसधान मे किसी भी वैज्ञानिक सम्भावना को अनुमान के रूप मे स्वीकार करना ही चाहिए (जैसे राधाकुमुद मुखर्जी ने यूनानी देशो मे बौद्ध शान्तिदूतो के प्रचारकार्यों के सबध में लिखा - **अशोक**, पृ०64)। (अगले पृष्ठ पर टिप्पणी जारी)

ऐतिहासिक स्रोत भी एस्सेनी पथ को अरामी-भाषाभाषी इस्राएलियो से जोड़ देते है। सा०स०पू० 200 मे यहूदा-प्रदेश पर मिस्र का प्तोलेमी शासन समाप्त हुआ था और यहूदा-वासी[1] सीरिया के सेल्यूकी अधिकार के अधीन हो गये थे। तब उनमे यूनानीकरण के विरुद्ध एक भक्ति-आन्दोलन उमड़ पड़ा, जिसे "हसीदी आन्दोलन" कहते है । इब्रानी-अरामी भाषा मे "ख़ासीधि़्" का अर्थ है भक्त विश्वासी। आरम्भ मे उन हसीदी भक्तो का राजनीतिक उद्देश्य नही था। वे युगात मे प्रकाशनात्मक दिव्य हस्तक्षेप की आशा करते थे [2]। परन्तु जब राजा अन्तिओख़ोस्-चतुर्थ, उपनाम ऍपिफ़नैस्, ने तीव्र यूनानीकरण की नीति अपनायी, यहा तक कि उसने सा०स०पू० 167 मे यरूशलेम के मन्दिर को यहूदियो के लिए अशुद्ध किया, तब धर्म-निष्ठ भक्तो ने विद्रोह किया। उग्र मक्काबी भाइयो ने उसे स्वतन्त्रता-सग्राम का रूप दिया। वे हस्मोनी वश के थे। सफलता की उमग मे उन वीर भाइयो ने महापुरोहित पद और बाद मे राजपद को भी अपनाया। हसीदी भक्त धर्मभीरु और शान्तिप्रिय थे[3]। वे हस्मोनियो द्वारा किये गये अधिकार के अतिचार से असहमत थे । कुछ हसीदी भक्तो ने अपना अलग दल बनाया और यही है शुद्ध धर्मनियमपालन करनेवाले एस्सेनी पथ का आरम्भ !

लगभग सा०स०पू० 140 से लेकर एस्सेनी विचारधारा के त्यागी भक्त मृतकसागर के पश्चिमी तट पर स्थित कुमरान-स्थल पर रहने लगे। उन्होने मठवासियो का-सा जीवन अपनाया। अन्य परमभक्त एस्सेनी

(पिछले पृष्ठ की बाकी टिप्पणी) हर्ष की बात होती यदि गुरु सुमुकुन्द का सम्पर्क पश्चिमोत्तर-भारत से हुआ हो और उनपर वेद-उपनिषद् एव अशोकीय धर्म का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा हो। लेकिन उस अनुमानित अवधारणा को अन्य सम्भावित तथ्यो से पोषित किया जा सकता। वास्तव मे,"भारत से सम्पर्क" क्या है ? मानवता मे सभी मानव-मानवी का एक ही वैश्विक सम्पर्क है । नृविज्ञान के अनुसन्धान के अनुसार मानवोत्पत्ति कही अफ्रिका मे हुई और हम साथ-के-साथ अफ्रिका के मूल निवासी है। अस्तु , सुगुरु के भारत-सम्पर्क का पहला आधार है कि वह उन ब्रह्मविद् अब्राहम के वशज है , जो इस्राएल की प्रस्तुति के अनुसार सिन्धु-सूमेर सम्पर्क-क्षेत्र से भ्रमण कर आए । इसके बाद वह उन राजा दाऊद के वशज है , जिन्होने हित्ती जाति की विधवा से सुलेमान को उत्पन्न किया हित्ती लोग आर्य-पुत्र माने जाते है और भारत महादेश से सुलेमान का व्यापारिक सम्पर्क विदित है (दे० पृ० 83)। फिर, गुरुमाता मरियम के कारण सुमुकुन्द यरूशलेम के अतिप्राचीन यबूसी राजपुरोहितो से सबध रखते है , वे भी आर्य-वशी थे जैसे वेदी-स्थल के अधिकारी अरौनाह के नाम से पता चलता है, जिसे भाषाविद् "वरुण" से जोड़ते है । इसके अतिरिक्त, इस छोटी-सी सम्भावना को माने कि बाल-सुमुकुन्द की जन्म-कथा मे प्रस्तुत किये गए ज्योतिषी "पूर्व से" इसलिए आए, क्योकि वे भारत-वासी थे। अन्य छोटी-सी सम्भावना है कि नासरत-वासी बाल-गुरुनेकुछ समय तक काश्मीर ज्ञानियो के यहा रहकर अपने ज्ञान-भण्डार मे भारतीय अनुभूति को भी सम्मिलित किया।

भारत के बौद्ध सघ से सुगुरु के सम्भावित सम्पर्क की प्राक्कल्पना उपर्युक्त विद्वानो ने ही सुनायी, जिसके कारण शोध-विषय की इस टिप्पणी की टिप्पणी लिखनी पड़ी। इस शोध मे पहले भी (दे० पृ० 84, 100) श्रीगुरु की जीवनी मे प्रयुक्त शब्दावली के आधार पर बताया गया कि जिस सुगधित तेल से एक भक्तिन-शिष्या ने गुरु-पाद का अभिषेक-विलेपन किया, वह भारतीय इत्र था और जिस कफन मे गुरु के प्रेमोत्सर्ग के पश्चात् उनकी देह को लपेटा गया, वह भारतीय वस्त्र था । अन्तत केवल एक निश्चित बात है, जो द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखो से सुगुरु का सबध स्थापित करती है, और वह है द्विभाषा का प्रयोग गुरु की वाणिया अरामी मे घोषित हुई और उनका सुसदेश यूनानी मे सुरक्षित रहा , योन-कबोज के लिए अशोक ने उन्ही दो भाषाओ मे अपनी धर्मलिपिया प्रसारित की थी। अन्त सास्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप तुलनात्मक भाषाई सामग्री उपलब्ध है। सुगुरु के जीवन-दर्शन को भी भारतीय रूपान्तर मे प्रस्तुत करने के गभीर प्रयास हुए , उद० K ALEAZ. Jesus in Neo-Vedanta Delhi. 1995 (उस मे 187सदर्भ-ग्रथो और 136 लेखो की सूची है ।) ।

(1) उनमे बेबीलोन के निष्कासन से लौटे हुए देशभक्त अधिक थे - दे० J MURPHY-O'CONNOR,"The Essenes and their history"",Revue Biblique,81,1974,pp 215-244

(2) दे० F MARTINEZ Qumran and Apocalyptic Studies on the Aramaic Texts from Qumran Leiden 1994

(3) दे० यूनानी बाइबिल-अनुवाद का प्रथम मक्काबी-ग्रथ 7 13 - यूनानी मे हसीदी का रूप " असिदॅयॉय् है , जो अरामी के उच्चारण " ख़ॅसीधाय्या " के अनुसार है।

पूरे देश मे और सम्भवत मिस्र के इस्राएली प्रवासियो के मध्य मे भी फैले हुए थे । कुमरान-मठ उनका समागम-केन्द्र बना। परन्तु सघ-भेद जैसी स्थिति तब आई, जब हस्मोनी राजा हुरकानुस-प्रथम के शासन-काल (सा०स०पू० 134-104) मे कुछ कठोर एस्सेनी पथियो ने यरुशलेम के मन्दिर की पुरोहितीय व्यवस्था को भ्रष्ट ठहराया। अपने प्रभावशाली धर्मगुरु[1] के नेतृत्व मे उन्होने कुमरान की ओर पलायन किया और उसे अपना आध्यात्मिक गढ बनाया। इस प्रकार हसीदी भक्तो मे परमभक्त एस्सेनी बने और एस्सेनियो मे विशिष्ट भक्त कुमरानी। कुमरानी एस्सेनियो के गुरु ने अपने ढग से इब्रानी-अरामी शास्त्रो की व्याख्या की, जिससे विशाल कुमरानी साहित्य का विकास हुआ (इसके सबध मे, विशेषकर अरामी हस्तलेखो के सबध मे पुरालेखीय खण्ड मे देखे) [2]।

एस्सेनी लोग शुद्ध, सयमित और प्रार्थनामय धर्माचरण करते थे। कुमरानी एस्सेनियो ने सैन्य अनुशासन मे रहकर और कठोर जीवन-शैली अपनायी। व्यापक अन्त सास्कृतिक सदर्भ मे देखे तो कह सकते है कि उन पथियो ने यूनान के नव-पिथगोरी साधको से कुछ साधना-पद्धतिया ग्रहण की, ईरानी ज्ञानियो-दर्शियो से कुछ द्वैतात्मक सिद्धात सीख लिये , और भारतीय ब्राह्मण-श्रमणो के योगाचार का कुछ अनुकरण-अनुकूलन किया । ऐसा बहु-सास्कृतिक सदर्भ पर फ़िलोन् की ही दृष्टि है, जब वह एस्सेनी साधक की तुलना ईरानी तत्त्वज्ञ (यू० मगोस्) और भारतीय निर्ग्रन्थ-ज्ञानी (यू० गुम्नो-सोफ़िस्तैस्) से करता है "उन तीनो ने बड़ी लगन से भौतिक तत्त्वो के अनुशीलन के अतिरिक्त नैतिक ज्ञान-दर्शन की खोज की और जीवन-भर आत्मिक गुण का प्रदर्शन (यू० ओपि-दैयक्सिन्) किया।[3] "

175 ~ (2) : **एस्सेनी जीवन-दर्शन में यूनानी प्रभाव**

एस्सेनी पथ[4] की जीवन-शैली का वर्णन करने के लिए योसैपोस् ने यूनानी सस्कृति मे तुलनीय सामग्री खोज कर लिखा "एस्सेनियो ने उस जीवन-शैली को अपनाया, जिसे पुथगोरस् ने यूनानी समाज मे प्रवर्तित किया था"। वह यूनानी गुरु कौन थे ? पुथगोरस् (अ० पाइथैगरस्) उन विशिष्ट सदात्माओ मे से एक है, जो अपने सुकर्म-सुवचन के कारण मानवधर्म की किसी भी अभिव्यक्ति के लिए सहायक है। क्योकि सदाचरण की किसी भी सु-कृति से सम्पूर्ण मानवता के उदयन हेतु सम्-कृति का अदृश्य परासरण (osmosis) होता रहता है । उस आध्यात्मिक परासरण के अतिरिक्त सांस्कृतिक प्रभाव भी पड़ सकता है।

---

(1) दे० G BUCHANAN," The priestly Teacher of Righteousness", Revue de Qumran 8 1989 pp 553-558 । यह "दीन भक्तो के समाज (क़ुहल्) " के लिए "धार्मिकता का गुरु (मुयरह्) " था (4 Q Pesher on Psalm 37)।

(2) दे० F MARTINEZ & J BARRERA . The People of the Dead Sea Scrolls Leiden 1995,p 11

(3) PHILO, Quod omnis probus liber sit , par 74 ध्यान दे कि अशोक के यूनानी अभिलेख श०यू० 2 मे धर्म-पराक्रम प्रदर्शन के अर्थ में उसी शब्द का क्रिया-रूप "ऐदैयक्सैन् " प्रयुक्त हुआ, जो उपयुक्त शब्द ही है।

(4) वास्तव मे, योसैपोस् एस्सेनी "पथ " के लिए अनेक यूनानी शब्दो का प्रयोग करता है : फ़िलोसोफ़िअ = ज्ञान-दर्शन ; हयरेसिस् = विशिष्ट मत-विचार ; गेनोस् = वर्ग, जाति ; होमिलोस् = सगठन ; तग्म = नियमबद्ध दल ; परन्तु वह "दिअत्रिबे " (= धर्म-दर्शन की शाखा , सम्प्रदाय) का प्रयोग क्यो नही करता ? - जब कि यह शब्द अशोक के यूनानी अभिलेख मे प्राकृत "पाषंड " का अनुवाद है । योसैपोस् के अनुसार यहूदियो मे तीन ज्ञान-दर्शन है : पहला सदूकी , दूसरा फरीसी – जो "अति धर्मनिष्ठ" है (यू० ऐय्-सेबेस्तेरोन्) , तीसरा एस्सेनी -- जो एक-दूसरे को बहुत अधिक प्यार करनेवाले है । इस बार योसैपोस् ने एक शब्द का प्रयोग किया जो अशोकीय यूनानी मे महत्त्वपूर्ण है, अर्थात् "ऐय्-सेबेय" (धर्मनिष्ठा , ईश-भक्ति -- क्या उसे राजभक्ति का राजनीतिक अर्थ भी दिया जा सकता है ?), दे० Antiquitates 18 11, SWAMI ANANDA, Hindu View of Judaism ,pp 227-237 ." Pharisees, Sadducees and Essenes"

आश्चर्य नही कि पुथगोरस् की यूनानी उक्तियो का प्रभाव अशोक के यूनानी अभिलेखो के शब्द-चयन मे दिखाई दे (दे० ऊपर पृ० 155) । किसी भी तप-भूमि के एकान्तवासी अथवा मठवासी तपस्वियो की साधना मे पुथगोरीय जीवन-शैली प्रतिबिम्बित होती है ; इसलिए कुमरानी और पुथगोरीय साधको मे कुछ समानताए होती है, परन्तु यह आवश्यक नही है कि दोनो मे प्रत्यक्ष सबध स्थापित हुए हो ।

गुरु पुथगोरस् का जन्म अिओनिअ के समुद्रतट के सामने समोस् द्वीप पर लगभग सा०स०पू० 570 मे हुआ, लेकिन उनका जीवन दक्षिण इटली के यूनानी उपनिवेशियो के बीच मे बीता। अपनी प्रखर बुद्धि से वह कुछ-न-कुछ नये प्रयोगो की छानबीन करते रहे और गणित के क्षेत्र मे उन्होने कुछ मौलिक सिद्धात खोज निकाले। पर अध्यात्म के क्षेत्र मे उन्होने नई परीक्षा की और क्रोतोन् नगर मे एक साधु समाज की स्थापना की[1]। समाज का नाम "हेतय्रॅय" था , अर्थात् मैत्री-सघ । बाद मे मित्र-सदस्यो के बिखर जाने से पुथगोरस् के समाज-सुधारक प्रयास दूर पूर्व तक ज्ञात हुए , यद्यपि गुरु के सबध मे तरह-तरह की दन्तकथाए भी फैल गई ।

गुरु ने स्वय अपनी शिक्षा लिपिबद्ध नही की थी , पर शिष्यपरम्परा मे उनकी उक्तियो का सकलन किया गया। तृतीय सदी सा०स० मे लअॅर्तै-निवासी दिओगेनैस् ने[2] "प्रसिद्ध दार्शनिको की जीवनिया" नामक अपनी विशाल कृति मे उन उक्तियो का विश्वसनीय सग्रह प्रस्तुत किया । इसका पाठ[3] करना अनिवार्य है, क्योकि अशोकीय यूनानी की शब्दावली के लिए ये नीति-कथन एक मुख्य स्रोत है, क्योकि यह असभव है कि अशोक के यूनानी लिपिकार उनसे बिलकुल अनभिज्ञ थे !

" कहा जाता है कि पुथगोरस् हर समय अपने शिष्यो को (यू० मथैतैस्) ये परामर्श देते थे घर मे प्रवेश करते समय इस प्रकार आत्मजाच करना - ' किस बात मे मैने आज्ञा-उल्लघन किया ? क्या मैने ऐसा कुछ किया जो मुझे नही करना चाहिए था ? अथवा क्या मैने वह कार्य पूर्ण नही किया जो मुझे करना चाहिए था ? ' देवी-देवताओ को पशु-बलि मत चढाना ; केवल ऐसी वेदी पर आराधना करना जो रक्त-रजित न हो। किसी ईश्वर के नाम से शपथ मत खाना, बल्कि ऐसा आत्माभ्यास करना (यू० अस्कैन्)कि विश्वासयोग्य ठहरो। वयोवृद्धो का आदर करना (यू० प्रॅस्बुतॅरोस् तिमान्) , अर्थात् जो उम्र मे श्रेष्ठ है उन्हे अधिक आदरणीय समझना, क्योकि जैसे विश्व की गति मे सूर्योदय सूर्यास्त से पहले आता है, वैसे ही जीवन का आरम्भ जीवनान्त से पहले है एव प्राणी की उत्पत्ति उसके नाश के पूर्व ही है। भूतात्माओ से अधिक देवो को पूजना, सामान्य मनुष्यो से अधिक महात्माओ को और मनुष्यो मे विशेषकर अपने माता-पिता को पूजना (यू० गोनॅअस् प्रो-तिमान्)। दूसरो के साथ ऐसा व्यवहार करना मानो वे मित्र हो ; किसी को अपना शत्रु न बनाना, अपितु शत्रुओ को अपने मित्र बनाना। किसी वस्तु को 'अपना' न समझना (यू० हैगेय्स्थय्) । न्यायव्यवस्था मे (यू० नोमो) सहयोग देना, परन्तु अन्याय से (अ-नोमिअ) सघर्ष करना। जो रोपा गया और उगा हुआ पेड़-पौधा है, उसे नष्ट न करना और न उसे क्षति पहुचाना। हा, किसी भी जीव-जन्तु (यू० ज़ोओन्) का अहित न करना जो मनुष्यो की कोई हानि नही करता (मै ब्लप्तॅय्)। श्रद्धा (यू० अय्दो) और सद्भावना (अॅव्-लॅबॅयन्) रखना। न हसते-हसते रहना और न उदास-निराश दीखना। दैहिक बातो की व्यस्तता से सयम रखना। अपनी जीवन-यात्रा मे दोनो विश्राम (यू० अन्-ऐसिन्) और परिश्रम (ऐपि-तसिन्) करते रहना। अपनी स्मरण-शक्ति का अभ्यास करना। क्रोध मे न कुछ बोलना न

---

(1) दे० *रासबिहारी दत्त* , **यूनान मे दर्शनशास्त्र** , (अनु०सुशीला डोभाल) , नई-दिल्ली , 1992 , पृ० 21-22

(2) DIOGENES LAERTIUS (3) मूल यूनानी स्रोत A WIKGREN Hellenistic Greek Texts Chicago 1958 (1947) pp 157-159

न कोई कार्य करना। प्रत्येक दिव्य-वाणी का (यू० मन्तिकैन् पासन्) आदर करना ; सितार-वादन के साथ भक्ति-गीतो का प्रयोग करना (ख़ुरैस्थय्) ; देवी-देवो के स्तुतिगीतो मे और महात्माओ के स्तुतिवचनो मे बड़ी रुचि रखना।" (*दिओगेनैस्* , **प्रसिद्ध दार्शनिको की जीवनियां** . 8:22-24=पुथगोरस् के कथन)

गुरु-कथनो के इस सकलन मे अनेक सु-वचन न केवल अशोक के अभिलेखो के उद्‌गारो से मिलते-जुलते है, वरन् उनके यूनानी रूपान्तर से शाब्दिक समानता भी रखते है (उद० वयोवृद्ध, हानि पहुचाना, अभ्यास करना, उल्लघन करना, समझना ...)। स्त्रबोन् ने अपने "भूगोल" (7:3:5) मे पुथगोरस् की शिष्य-परम्परा (यू० तों पर-दोर्थन्) के उस सिद्धात का उल्लेख किया कि " प्राण-धारियो [के आहार] से परहेज करे " (तोन् ऐम्-प्सुख़ोन् अप्-ऐख़ैस्थय्) । निस्सदेह, इसकी पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग शर-इ-कुन शिलालेख के यूनानी खण्ड श०यू० 5-6 मे हुआ (= अप्-ऐख़ेतय् तोन् ऐम्-प्सुख़ोन्) ।

मकिदूनिया के पूर्व मे गेतय् / दाकोय्[1] नामक जनजाति रहती थी , जिसके मुखिया अमरत्व मे विश्वास करने के कारण ब्रह्मचर्य का पालन करते थे । हैरोदोतोस् ने अपने "इतिहास" (4 93-96) मे बताया कि उस जनजाति का एक गुलाम गुरु पुथगोरस् का अनुयायी बन गया था ; अपने प्रदेश मे लौटकर उसने स्वजातियो को अपने गुरु की अमरत्व-सबधी शिक्षा सुनायी थी। लेकिन स्त्रबोन् ने अपने "भूगोल" (7 3.3) मे यह टिप्पणी लिखी कि ब्रह्मचर्य धर्मभक्ति (यू० ऐव्-सेबैय) का मापदंड नही है धर्मभक्त वह है जो पुथगोरस् की शिक्षा के अनुसार उत्कृष्ट नैतिक जीवन बिताता है । अमरत्व का प्रसग लेकर योसैपोस् ने समझाया कि उन दाकोय्[2] साधको के विश्वास और एस्सेनी साधको के विश्वास मे अधिक समानता है । जब कि यहूदियो मे सद्दूकी मतानुयायी मृत्योपरान्त अमरता नही मानते है और फरीसी मतानुयायी धार्मिको का शाश्वत पुनरुज्जीवन मानते है, एस्सेनी पथी सब कुछ ईश्वरीय विधाता पर छोड़ देते है और वर्तमान सत्सगति को स्वर्ग के परम सौभाग्य का पूर्वाभास मानते है ।

सच पूछा जाए, तो पुथगोरस् "प्सुख़ै" (देहात्मा) को अमरत्व-गुण प्रदान करते थे और "पलिङ्-गेनेसिअ" (पुन.-जन्म) को इसलिए अनिवार्य मानते थे कि आवागमन मे जीवात्मा का "कथर्सिस्" (शुद्धीकरण) होता जाए; क्योकि ईश्वर का नाम अपोल्लोन् है, अर्थात् "अपो-लोवोन्" (शुद्ध करनेवाला) और "अपो-लुओन्" (उद्धार करनेवाला)। अत सासारिक जीवन मे हमारी यह "सोम" (देह) कोई " सैम " (बधन-गृह) नही है , बल्कि "सोज़ोन्" (मुक्ति-साधन) है, जब तक हमे ईश्वर की तुल्यता प्राप्त न हो[3]। इसलिए मृत्योपरान्त लक्ष्य के लिए

---

(1) प्लिनिउस् , **नैसर्गिक इतिहास** 4 80 । (2) "दाकोय्" के बदले मे "साकय्" पढ़ने की कोशिश की गई है, अर्थात् शक , शाक्यमुनि के अनुयायी , दे० R BERGMEIER Die Essener-Berichte des Flavius Josephus Kampen 1993 p 82

(3) योसैपोस् ने पुथगोरस् के इहलोक-केन्द्रित व्यावहारिक दृष्टिकोण से हटकर एस्सेनियो के जीवन-लक्ष्य को यूनानी दर्शन के अनुकूल बनाया "एस्सेनी लोगो की यह दृढ़ धारणा है कि देह नाशवान है और उसके भौतिक तत्व का स्थायित्व नही है ; परन्तु प्राणात्मा (यू० प्सुख़ै) अमर है और सदा बनी रहती है। प्राणात्मा तो सूक्ष्मतम वायु से मडलाती हुई आई और किसी प्राकृतिक माया (यू० इंउङ्क्स्) के द्वारा खिचकर कारागाह-रूपी देह मे उलझ गई। फिर भी जब प्राणात्मा इस शरीर के बन्धनो से विमुक्त हो जाती, तब वह मानो दीर्घ दासत्व से छूट निकलकर आनन्दित होती है और वह आकाशचारी बन जाती है। तब, जैसे यूनानी बच्चे सोचते है, पुण्यात्मा का निवास महासमुद्र के ऊपर है, जहा न वृष्टि न हिमपात न ताप का कोई कष्ट है, वरन् हमेशा बहनेवाली हल्की-सी हवा से नवजीवन प्राप्त होता रहता है। परन्तु दुष्टात्मा के लिए अनन्त यन्त्रणाओ से भरी हुई अधेरी एव ठण्डी गुफा निश्चित की गई है । अत एस्सेनी पथी प्राणात्मा के विषय मे ऐसे ही ईश-मीमासक विचार व्यक्त करते है (यू० थेओ-लोगोस्सिन्) और इस प्रकार वे उन श्रोताओ को अत्यन्त सम्मोहक रुचि से आकर्षित करते है, जिन्होने पहली बार उनकी प्रज्ञा (यू० सोफिअ) का स्वाद चखा है।" (De Bello Judaico 2.154-158)

मृत्युपर्यन्त साधना करनी चाहिए। परमगति की परम आशा को वर्तमान जीवन मे ही धर्माचरण के पराक्रम द्वारा कार्यान्वित करना चाहिए। पुथर्गोरस् की मौखिक शिक्षा, अशोक की अभिलिखित धर्मनीति की तरह, अत्यन्त व्यावहारिक थी और उनके शिष्य गुरु की सुनी हुई श्रुतिया (यू० अकौस्मत) अपने दैनिक अभ्यास का विषय बनाते थे [1]। अपनी इस्राएली पृष्ठभूमि मे कुमरान के भक्त एस्सेनी भी अपने "धार्मिकता के गुरु" के अनुशासन मे सत्याचरण की साधना कर रहे थे [2]।

175 ~ (3) : एस्सेनी जीवन-दर्शन में ईरानी प्रभाव

एस्सेनी (इस्राएली) और पुथर्गोरीय (यूनानी) साधको मे "समानता" को शायद प्रत्यक्ष "प्रभाव" नही मान सकते है ; लेकिन व्यापक रूप से एस्सेनी (इस्राएली) धर्मदृष्टि पर ईरानी प्रभाव निर्विवाद है [3]। कुमरानी एस्सेनियो के साहित्य मे, अर्थात् मृतसागर-तटीय गुफाओ से प्राप्त कुण्डलपत्रो मे, सब-से अधिक उल्लेखनीय प्रसग दो परस्परविरोधी "आत्माओ" का द्वन्द्वात्मक विवरण है

> " प्रज्ञा के परमेश्वर से सब कुछ उत्पन्न होता है जो है और जो होनेवाला है। उसने हर मानव मे दो आत्माओ को रखा, जो जीवनपर्यन्त उसके साथ रहती है, अर्थात् सत्य की आत्मा और छल की आत्मा । ज्योति के प्रधान-दूत का अधिकार-क्षेत्र धर्म की मानव-सतान है , जो ज्योति के पथ पर विचरती है। अधकार के अपदूत का पूर्ण अधिकार छल की सतान पर है, जो अधकार के पथ पर चलती है । " [4]

इस पाठ मे आगे उन दो आत्माओ की प्रेरणा से विपरीत प्रतिफल बताये गये है धर्माचार और दुराचार। धार्मिकता का मार्ग (सत्य, शान्ति, प्रेम, करुणा) महिमामय-प्रकाशमय जीवन की ओर ले जाता है, जब कि अधर्मी व्यक्ति अनन्त विनाश की ओर अग्रसर है। सम्पूर्ण मानव-इतिहास मे वे दो विभक्त प्रेरणाए सघर्ष कर रही है, लेकिन परमेश्वर की पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार सत्य की विजय होगी। अभी से, कुमरानी सघ मे सम्मिलित होनेवाले सत्सगियो पर पवित्रता और सत्य की आत्मा के जल-अभिषेक (या छिड़काव) द्वारा मानव का शुद्धीकरण सम्भव है। प्रो० दिपो-सौमेर् [5] दृढ निश्चय के साथ कहते है कि कुमरान के ऊपर-उद्धृत पाठ पर पारसी धर्म के यस्न 45:2 की इस उक्ति का सीधा प्रभाव है "मै अस्तित्व की दो मूलभूत

---

(1) पुथर्गोरीय आचार-सहिता के विषय मे तृतीय सदी सा०स० के अन्त मे अिअम्ब्लिखौस् के द्वारा रचित जीवनी भी देखो IAMBLICHUS Onthe Pythagorean Way of Life, (Text tr & notes by J DILLON & J HERSHBELL) Atlanta 1991 , समकालीन लेखक पौरफुरिऔस् की कृतियो मे भी (उद० PORPHYRIUS ,De Abstinentia) अलग ढग से पुथर्गोरीय उक्तिया मिलती है।

(2) आजकल यहूदी विचारधारा पर यूनानी प्रभाव को भी महत्व दिया जा रहा है , दे० T FRANCIS GLASSON Greek Influence in Jewish Eschatology ,London,1961, p 84 " Contacts with other cultures encouraged and stimulated Jews to develop and extend their teaching in their own characteristic ways, under the control and inspiration of their central faith" अन्य अध्ययन TODD S BEAL Josephus' Description of the Essenes illustrated by the Dead Sea Scrolls Cambridge , 1988 , JOHN KAMPEN, The Hasideans and the Origin of Pharisaism ,Atlanta,1988 लेखक हसीदी भक्तो को "शास्त्री-दल" (a scribal group) मानते है, जिनसे दोनो एस्सेनी और फरीसी निकले। एस्सेनी शब्द की अरामी व्युत्पत्ति मानते हुए भी,वह उसे यूनानीकृत रूप मानते है, जैसे ऊपर (पृ० 182 पर) बताया गया है " inscription of those in service of Artemis at Ephesus " (p 162)

(3) दे० J DUCHESNE5-GUILLEMIN op cit . ""Iran and Israel".pp 178-181 , S SHAKED "Iranian influence on Judaism" The Cambridge History of Judaism 1984, vol I Introduction , The Persian Period , RICHARD FRYE , " Qumran and Iran the state of studies" , in J NEUNER, ed , Christianity, Judaism and other Greco-Roman Cults , Leiden, 1975 pp 167-173

(4) सघ की नियमावली = The Rule of the Community / Manual of Discipline 1 Q S III , 15-20 , दे० F G MARTÍNEZ, The Dead Sea Scrolls Translated , Leiden, 1994

(5) ANDRÉ DUPONT-SOMMER," Das Problem der Fremdeinflüsse auf die jüdische Qumransekte " in K GRÖZINGER Qumran Darmstadt 1981 pp 201-224

आत्माओ के सबध मे बोलूगा एक है गुणात्मा और दूसरी है दुष्टात्मा "। यस्न 30·3 से भी तुलना करे "शुरू मे दो स्थितिया थी मन, वचन और कर्म से सत् को ग्रहण करना अथवा मन, वचन और कर्म से असत् को ग्रहण करना "।

देवदूतो और अपदूतो के सबध मे भी एस्सेनियो ने बहुत कुछ ईरानी मान्यताओ को अपनाया । शैतानी दूतगण "ज्योति की सतान" को गिराने की कोशिश करते है, परन्तु परमेश्वर के दूत भक्तो को उस शाश्वत सगति की ओर पहुचाते है, जहा स्वर्गिक मण्डली ईश-स्तुति करती रहती है [1]। प्रभु जरथुस्त्र की गाथाओ के अनुसार स्वर्गिक सुख-धाम मे स्तुतिगीत सुनाई देते है [2]।

इस्राएल देश दो सदियो तक फारसी साम्राज्य के अधीन रहा। इसलिए धर्मविधियो एव प्रथाओ मे ईरानी प्रभाव के संकेत है। योसैर्पोस् ने एस्सेनियो की प्रात कालीन आराधना का यह वर्णन किया

> " वे ईश्वरत्व के प्रति विशेष प्रकार से श्रद्धा-भक्ति दिखानेवाले (यू० अेव्-सेबॅऍस्) होते है। सूर्योदय से पहले वे बातचीत नही करते, सासारिक बातो की कोई चर्चा नही करते। परन्तु सूर्य की ओर अभिमुख होकर वे प्राचीनकाल से सीखी हुई प्रार्थनाए उच्चारते है, मानो वे उसके उदित हो जाने की याचना करते हों ।" [3]

नव-प्रकाश की ओर प्रभाती वन्दना करना सामान्य धर्मप्रतीक-विधि है [4], लेकिन उन नियमनिष्ठ यहूदियो के लिए असाधारण बात है। परवर्ती काल मे सकलित यहूदी धर्मपरम्पराओ के विशाल मिश्ना-ग्रथ, सुक्का 5 4 मे यह आदेश मिलता है कि जब यरूशलेम के मन्दिर के महापुरोहित पूर्व फाटक पर आता है, तब उसे पश्चिम की ओर मुड़कर प्रार्थना करनी चाहिए , क्योकि " हमारे पूर्वजो ने इस स्थान पर अधर्म किया था, जब उन्होने पूर्व की ओर सूर्य की आराधना की। हमे अपनी दृष्टि केवल परमेश्वर की ओर लगानी चाहिए" । मन्दिर मे एक रहस्यमय कोने का नाम "पर्‌बार्" था, जहा पहले अनधिकृत ढग से सूर्यनमन हुआ करता था [5]। ईरानी भाषा के आधार पर "पर्‌बार्" का अर्थ मण्डप बताया गया है[6], लेकिन पहलवी मे "परवर-" का पर-वाला, पखधारी अर्थ भी हो सकता है। क्या यह सूर्य-प्रतीक अहुर-मज्द के सरक्षण का शुभ चिह्न हो सकता है ?[7]

---

(1) कुमरानी "स्तोत्र" , 1 Q Hymns XI 22-23 (2) दे०T GASTER art " Angel " Interpreters' Dictionary of the Bible vol I,p 134 "The assertion that the angels constitute a celestial choir which the pious are destined eventually to join, at once recalls the Mazdean doctrine that the righteous will be given a place in the heavenly ' mansion of songs' "

(3) De Bello Judaico 2 128 (4) यूनानी लोग उठते ही सूर्यदेव हैलिओस् को याद करते थे, "जो सब कुछ देखता है और सब कुछ सुनता है "(ओदुस्सेय 11 109)। गुरु पुथगोरस् की शिक्षा थी कि सूर्योदय के समय क्षितिज की ओर देखो और सूर्य के प्रकाश में कभी मूत्रत्याग न करें। योसैर्पोस् एस्सेनियो के सबध मे स्पष्ट शब्दो मे कहता है "जब ये सबेरे नित्यक्रिया हेतु खेत को जाते है, तो सूर्य की ओर शौच नही करते, ताकि ये ईश्वर की किरणो का अनादर न करें"। फ़िलोन् के अनुसार ये ही साधक, जिन्हे वह आत्म-उपचारक "थेरपेव्ताय्" कहता है, सूर्य के अस्त हो जाने तक दिनभर शास्त्र का अध्ययन करते थे , क्योकि प्रकाश के समय अध्यात्म की बातो मे मन लगाना चाहिए। भोजन और अन्य शारीरिक आवश्यकताओ के लिए रात का समय पर्याप्त है। (5) दे० इब्रानी-अरामी तॅनख् का प्रथम इतिहास-ग्रथ 26 18 और यहेजकेल-नबीग्रथ 8 16 , G BOX, Judaism in the Greek Period ,Oxford, 1946 (1932) p 228 , J TAILOR Yahweh and the Sun (Biblical and archaeological evidence for sun worship in ancient Israel Sheffield 1993 (6) A CHOURAQUI L' Univers de la Bible vol IV p 338

(7) " The winged disc , undoubtedly a solar symbol" (J DUCHESNE-GUILLEMIN, op cit ,p 118) भारत-ईरान मे सूर्यदेव मित्र / मिथ्र- के प्रात कालीन आह्वान का दूरगामी प्रभाव पश्चिम की रहस्यवादी उपासना-पद्धति (Mitra cult) मे भी दीखता है। एशिया-माइनर के कप्पदोकिअ प्रदेश मे सा०सा०पू० प्रथम सदी का एक अभिलिखित प्रमाण मिला है (दे० फरसा नामक स्थान का द्विभाषीय यूनानी-अरामी अभिलेख , जिसका वर्णन शोध के दूसरे खण्ड मे करेंगे) ।

175 ~ (4) : एस्सेनी जीवन-दर्शन में भारतीय प्रभाव

बोद्ध थेरावाद के शुभ प्रचार-कार्य के सबध मे ऊपर चर्चा हो चुकी है। ब्राह्मण-श्रमण की जीवन-शैली का अभिज्ञान यूनानी शिक्षाकेन्द्रो एव भोज-गोष्ठियो मे पहले से भी होने लगा था। पुथर्गोरीय शिष्यमण्डलो मे ऐसी ही साधनामय जीवन-शैली को अपनाने का प्रयास किया जा रहा था। अत एस्सेनी पथ पर भारत का अप्रत्यक्ष प्रभाव क्यो असम्भव हो ? माननीय फ्रासीसी विद्वान दिुपो सोमेर् कुमरानी एस्सेनिये से सबधित साहित्य के अध्ययन के पश्चात् उस निष्कर्ष पर पहुचे थे कि पुथर्गोरीय प्रभाव और ईरानी प्रभाव साफ दृष्टिगोचर होते है। परन्तु जब उन्होने द्विभाषीय अशोकीय अभिलेखो का अध्ययन किया, तब बौद्ध प्रभाव को भी स्वीकारा [1]। एक अन्य फ्रासीसी विद्वान लेवि ने एस्सेनी पथ की सघीय पद्धति मे कुछ गैर-यहूदी प्रसगो के स्रोत ढूढ निकालने की कोशिश की। सघ की नियमावली 7 15 के अनुसार धर्मसभा मे थूकने-वाले को तीस दिन की सजा दी जाती है और मनुस्मृति 4:132 मे मुह से खखार निकालने का निषेध है[2]।

यवनाचार्य पुथर्गोरस् ने निर्देश दिया था कि रक्त-रजित वेदी पर अपनी भेट न चढाए, क्योकि आत्म-त्याग का सत्याचरण-रूपी बलिदान पशु-बलि से श्रेष्ठ है। देवानाप्रिय अशोक ने प्रथम मुख्य शिलालेख मे ही आदेश लिखवाया कि "कोई भी जीव बलि के लिए न मारा जाए", क्योकि बलि-अर्पण मात्र से परलोक प्राप्त नहीं किया जा सकता ; धर्म का पालन करने से जीवन सफल हो जाता है। जैसे धम्मपद 8:9 का बुद्ध-वचन है, " यदि पुण्य को चाहनेवाला वर्ष-भर यज्ञ या हवन करे, तोभी उसका सारा कर्मकाड किसी सज्जन को किया गये विनम्र अभिवादन के एक-चौथाई फल के बराबर भी नही होता ! " एस्सेनी साधक यरूशलेम की बलि-व्यवस्था को अशुद्ध मानते थे, किन्तु अपने शुद्ध आचरण से वे मन-मन्दिर की वेदी पर शास्त्रादेशित बलि पूर्ण करते थे ; जीव-प्राणियो (यू० जोंअ) को बलि करने के बदले वे अपने आचार-विचार को सुग्राह्य बनाते थे [3]।

मिस्र में एस्सेनी पथियो अथवा ईश-आराधको / आत्म-उपचारको (थेरपेंव्तय्-थेरपेंव्त्रिदेंस्) की साधना का वर्णन करते हुए फ़िलोन् ने बौद्ध सघियो से स्वय अपने सम्पर्क या उनके सम्पर्क के कारण कुछ नये तथ्य मिला दिये , जो भिक्षु-भिक्षुणी के प्रभावी उद्धाहरण से प्राप्त हुए। सारांश मे वर्णन इस प्रकार है

> " वे अपनी सम्पत्ति त्याग देते है और ब्रह्मचर्य का पालन करते है । वे एकात स्थानो की खोज करते हैं (प्लिनिउस् के अनुसार वन-प्रसथो के सदृश ' वे ताड़-वृक्षो के नीचे वास करते है ')। पर निश्चित समय पर वे इकट्ठे होते है (प्लिनिउस् के शब्दो मे ' भ्रमण करनेवालो का मेला बन जाता है ') । यद्यपि वे बहुत उपवास करते , कभी दाखरस नही पीते और केवल शाखाहारी भोजन करते है, फिर भी उनकी दृष्टि मे आत्मसयम (यू० ऍङ्क्-क्रतेंय) अधिक महत्वपूर्ण है । वे सर्वप्रथम धर्म-भक्ति (यू० ऍव्-सेंबेय) का आभ्यास करते है, जो न केवल व्यक्तिगत पवित्रता एव शुद्धता मे, वरन् न्यायप्रियता, घरेलू सुव्यवस्था (यू० ऑय्कों-नोमिअ) और आदर्श नागरिकता (पोलितेंय) जैसे सामाजिक गुणो मे भी दिखाई देती है। वास्तव मे, वे तीन प्रकार के मापदड (कनोंन्) से उत्तम जीवन का मूल्याकन करते : सर्वोच्च के प्रति 'ईश-प्रेमी '(फ़िलों-थेओंस्) होना चाहिए, स्वय के प्रति 'गुण-प्रेमी ' (फ़िल्-अरेतोंस्)

---

(1) दे० A DUPONT-SOMMER , "Essénisme et Bouddhisme" Comptes Rendus de l'Académie des Inscriptions et Belles Lettres , 1980 pp 698-715 (2) I LÉVY, Recherches esséniennes et pythagoriciennes , PCRHP Paris 1965 " Brahmanes et esséniens " pp 31-35 (3) दे० JOSEPHUS Antiquitates Judaicae 18 19 & PHILO Quod omnis probus ,75 , S KIMBROUGH, " The ethic of the Qumran community", Revue de Qumran, 6, 1969, p 486

ओर दूसरो के प्रति 'मानव-प्रेमी ' (फिल्-अन्थ्रोपोस्) [1]। इस प्रकार वे साधक-साधिकाए एक सर्वांगीण नैतिकता के उपार्जन हेतु प्रण करते है। उनके सिद्धि-सघ मे कोई दास अथवा सेवक नही है, क्योकि सब स्वतन्त्रतापूर्वक एक-दूसरे की सहायता करते है। अपनी जीविका के लिए स्वावलम्बी होकर वे सेवाभाव से दूसरो के लिए श्रम करते हे। उनमे पूर्ण सहभागिता और साझेदारी (यू० कोय्नोनिअ) है, मानो वे सब भाई-बन्धु हो। किसी के पास कम नही, किसी के पास अधिक नही। फिर भी इस समानता मे धर्मवृद्धो (प्रेस्बुतेरोय्) के प्रति आदर-युक्त आज्ञाकारिता दिखाते है। विशेषकर विश्रामवार , अर्थात् शनिवार , के सामूहिक भोजन के पहले वे शुद्धिस्नान करते है और श्वेत वस्त्र धारण करते है ; वे मौन रहकर क्रमबद्ध बैठ जाते है [2]। "

आश्चर्य नही कि एस्सेनी-थेरपेवती पथियो की जीवन-शैली मे थेरावादी भिक्षु-सघ का प्रभाव देखा गया। लेकिन किसी को जितनी समानताए दीखती है, उतनी ही असमानताए किसी दूसरे को भी दिखाई देती । फिर भी एक व्यापक सामान्य पृष्ठभूमि स्वीकारने मे किसी को आपत्ति नही है। सम्राट अशोक ने बहुविध अन्त सास्कृतिक आदान-प्रदान के वातावरण मे ऐसी धर्मनीति को उत्प्रेरणा दी थी , जिसकी प्रतिध्वनि दो-तीन सदियो के बाद अन्य परम्परा से उद्भूत उच्च नैतिक आदर्शों की शब्दावली मे भी सुनाई दे सकती है । रग मुद्रण की प्रक्रिया से तुलना करे · विभिन्न रगो के अलग-अलग परत अन्त मे सुन्दर एकीकृत रगीन चित्र मे मिल जाते है। एस्सेनी पथ के जीवन-दर्शन मे विभिन्न प्रभाव काम कर रहे होगे, लेकिन अन्त मे हम यह नही पहचान सकते है कि किन-किन प्रभावो से यह परिणाम निकला है !

ऊपर के विवेचन का निष्कर्ष है कि सम्राट अशोक अपने अन्य-भाषीय अभिलेखो के माध्यम से एक महा-धर्मसवाद के उदारचित सह-सवादी बन गए थे। एस्सेनियो का त्यागी पथ प्रधानत इस्राएली उपज है, परन्तु यूनानी-ईरानी-भारतीय स्रोतो ने उसे पोषित किया। ऐसे ही स्वरो का एक आरम्भिक सम-स्वर बहुभाषीय अशोकीय अभिलेखो मे सुनाई दिया था। एस्सेनी पथी हो अथवा अन्य-पथी , जीवन-दर्शन एव मानवीय मूल्यों के निरूपण-कार्यान्वयन हेतु हम सब सह-पंथी है[3] ।

---

(1) R BERGMEIER (op cit ,pp 36-37 & 77) ने फिलोन् के वर्णन मे नैतिक शिक्षा का प्रतिमान (जर्मन मे " Paränese-Schema ") पहचाना है , जो विभिन्न उद्बोधक प्रस्तुतियो की समानान्तर शब्दावली मे दिखाई देता है उद० कुमरानी पाठ 'सघ की नियमावली ' मे (1 Q S 1 1-5 "to seek God with all one's heart to keep oneself at a distance from all evil.. to bring about truth, justice and uprightness on earth") अथवा आरम्भिक मसीही लेखो मे (1 पतरस 2 16 "परमेश्वर के सेवको की तरह स्वतन्त्र व्यक्तियो की तरह सब मनुष्यो का सम्मान करे) ।

(2) दे० E.GRUBER & H KERSTEN op cit , p 182 " The seventh day when the Therapeutae sat down together in accordance with their length of membership of the order is an adoption of the ' Buddhist sabbath ' (*uposatha*) with a day of religious observance and ceremonies for lay followers and bhikshus four times a month On those days the laity wore white garments "

(3) इस यात्रा में मसीही सुगुरु-पथी भी सह-यात्री बने। आरम्भिक शिष्य इस्राएली ही थे और वे भी विस्तृत बहु-सास्कृतिक प्रभाव के ग्राहक थे। गुरु सुमुकुन्द को कुमरानी-एस्सेनी सदर्भ मे समझाने का प्रयास किया जा रहा है , उद० BARBARA THIERING, Jesus the Man A new Interpretation from the Dead Sea Scrolls ,Moorebank-Australia,1993(1992) , भारत से उनका सम्पर्क दिखाने के प्रयास के सबध मे ऊपर देखो पृ० 183 की टिप्पणी और उनके शिष्य थोमस के सम्भावित भारत-आगमन पर पृ० 101-2 देखो । अरामी-भाषाभाषी शिष्यो को गुरु के गृहनगर नासरथ् के नाम के कारण "नासरायै" कहते थे (दे० प्रेरितो के कार्य 24 5 नासरी) अथवा उनकी गरीबी के कारण उन्हे "एब्योनाये" का नाम भी देते थे, अर्थात् दीन-हीन जन (दे० रोमियो के नाम पत्र 15 26) । कुमरानी साहित्य मे "दीन-हीन लोगो के सघ" का उल्लेख है (उद० 4 Q Psalms Pesher , Commentary on Psalm 37 the congregation of the poor) । अरामी विशेषज्ञ प्रो० फ़ित्स्मायर् ने हीन एब्योनी पथ का गभीर तुलनात्मक अध्ययन किया और सावधानी से अपना यह मत व्यक्त किया

---

* It seems that the most we can say is that the sect of Qumran influenced the Ebionites in many ways, Essene tenets and practices were undoubtedly adopted or adapted into the Ebionite way of life " (JOSEPH FITZMYER, 'The Qumran Scrolls the Ebionites and their literature", Theological Studies, 16, 1955, p 371) एब्योनी पंथ सुगुरु सुमुकुन्द को "सत्य का गुरु" कहते थे, जब कि कुमरानी पंथ का महान् शिक्षक "धार्मिकता का गुरु" कहलाता था। सत्याचरण "धर्म" ही है (ध्यान दें कि अशोक के अरामी अभिलेखों में "धम्म" का अरामी अनुवाद "सत्य" किया गया है) । इसलिए फित्स्मायर् लिखते हैं "We could well speak of the 'Teacher of Truth' as a revealer of Truth, then the Teacher of Righteousness and the True Prophet can be favourably compared" एब्योनी दृष्टि में सत्य-गुरु में सत्य-आत्मा विद्यमान है, जिसकी वाणी सभी संस्कृतियों के सत्य-महर्षियों के महावाक्यों में ध्वनित होती है " was ever present with the pious though secretly through all their generations, especially with those who waited for Him to whom He frequently appeared" (PSEUDO-CLEMENT. Recognitions 1 52 KP) कुमरानी पंथ शुद्धिस्नान को महत्व देता था · " धोनेवाले जल के छिड़काव से शरीर शुद्ध हो जाता है, परन्तु पश्चात्ताप के जल से मनुष्य पवित्र हो जाता है " (संघ की नियमावली 3 9) । एब्योनी विश्वास करते थे कि सुगुरु-पंथ में दीक्षित होने के लिए पापशुद्धि का जलाभिषेक आवश्यक है ।

आरम्भिक सुगुरु-पंथ की अनेकों शाखाओं में एक ज्ञानवादी सम्प्रदाय भी उभड़ आया। उसका एक केन्द्र दक्षिण मिश्र के "नाग हम्मादी" नामक स्थल पर था, जहां सन् 1945 में प्राय 150 ग्रंथों का भण्डार प्राप्त हुआ। ये ग्रंथ चौथी सदी की कॉप्टिक् भाषा में अनूदित(इससे प्राचीन मूल अरामी-यूनानी)रचनाएं हैं। उनमें प्रमुख है "सत्य का शुभसमाचार" और "सत थोमस के अनुसार शुभसमाचार" (जिसमें सुगुरु के 114 मौलिक वचन संकलित हैं) । लेकिन उन ज्ञानवादी साधकों की दृष्टि में "सत्य" केवल ज्ञान का विषय है, उद० "सत्य को जानो" (The Gospel of Thomas, saying No 78), जब कि सुगुरु-पंथ की प्रमुख धारा में सत्य वह प्रेमाज्ञा है जिसका यथार्थ जीवन में पालन करना चाहिए (दे० 1 योहन 1 6, शब्दश "सत्य को करो")। एस्सेनी पंथ भी सत्याचरण पर जोर देता था "हमें सदा सत्य से प्रेम करना (यू० तैन् अलैथैयन् अगपॉन्) चाहिए" (योसैपोस्, De Bello Judaico 2 141), "साधक अनुभव के साथ जान लेते हैं कि सत्य हेतु अच्छे कर्म कौन होते हैं "(फ़िलोन्, Quod omnis probus 83), "[प्रभु,] तूने प्रज्ञान की आत्मा का वरदान दिया है, जिससे मैं सत्य और न्यायधर्म से प्रेम करूं" (कुमरानी कुण्डलपत्र, Hymns 1 Q H VI 25)। वास्तव में, अशोक ने भी धर्म को सत्य-धर्म कहकर (भाब्रु शिलाफलक-लेख में सधंम) उसे इस लोक में लोगों का सत्याचरण माना है। बुद्ध-वचन के अनुसार, जब श्रावक "धर्म में अचल प्रसन्नता प्राप्त कर सद्धर्म में आता है" (सुत्त पिटक के मज्झिम-निकाय का सम्मादिट्ठिसुत्त), तब वह चार आर्य सत्य को अष्टांगिक मार्ग में कार्य-रूप देता है, क्योंकि " इस संसार में वैर से वैर शान्त नहीं होता, वैर केवल अ-वैर, अर्थात् मैत्री, से शान्त होता है — यही सनातन धर्म है।" (धम्मपद 1 5) ।

लेकिन ज्ञानवादी "सम्बोधि" को एक ज्ञान-बुद्धि समझते हैं। प्रख्यात इतिहासकार हेमचन्द्र रायचौधरी ने भी "पॉलिटिकॅल् हिस्टॅरी ऑफ़् एन्शण्ट् इण्डिय" में ज्ञानवादी "तेरेबिन्थुस्" का उल्लेख किया (दे० Appendix A "The results of Aśoka's propaganda in Western Asia" p 542) । वह मिश्री सिकन्दरिया का निवासी था, यूनानी में "तेरेबिन्थॉस्" वृक्ष का नाम है, लेकिन क्या इसे "थेरा-वाद" (पूज्य स्थविर) माना जाए ? उसने "स्किथिअनुस" (= यू० स्कुथैस् = शक, शाक्य ?) से ज्ञान प्राप्त किया, जो भारत का एक व्यापारी था। लातीनी आचार्य हिएरोनिमुस् ने लिखा " तेरेबिन्थुस् ने दावा किया कि वह मिश्र के समस्त ज्ञान-दर्शन में प्रज्ञाशील है। इसने सूचित किया कि मेरा नाम अब 'तेरेबिन्थुस्' न रहा, क्योंकि मैं नया 'बुद्ध' (ला० buddas) हूं। यही नाम धारण कर इसने जताया कि एक कुआरी से मेरा जन्म हुआ और एक देवदूत ने मुझे पर्वत के ऊपर तक उठा लिया " (HIERONYMUS / Jerome Contra Iovinianum 2 26 "Archelai et Manetis Disputatio") । सन् 278 सा०स० में मेसोपोतामिया के धर्माध्यक्ष अरखेलॉस् ने नव-ज्ञानवाद के प्रवर्तक मनैस् (Manes /Mani) से उसी तेरेबिन्थुस् के विषय में वाद-विवाद किया। यरूशलेम के धर्माध्यक्ष कुरिल्लॉस् (Cyril of Jerusalem) ने साक्ष्य दिया कि मनैस् ने तेरेबिन्थुस् की बहुत-सी भ्रांत शिक्षाओं को अपनाया और अपने "मानीवाद" (Manichaeism) में प्रभु जरथुस्त्र, बुद्ध-देव और गुरु सुमुकुन्द को मिला दिया (दे० B N PURI. Buddhism in Central Asia Delhi 1987 "Manichaeism Nestorian Christianity and Buddhism" p 136ff) ।